श्री अभय जैन ग्रन्थमाला पुष्प ३०

शासनप्रभावक आचार्य जिनप्रभ और उनका साहित्य

लेखक
महोपाध्याय विनयसागर

प्रकाशक
जयपुर निवासी श्री छुट्टनलाल वैराठी एव श्री राजरूप जी टांक
प्रदत्त आर्थिक सहायता से
श्री अगरचन्द नाहटा
सचालक, अभय जैन ग्रन्थमाला
नाहटो की गवाड, बोकानेर

भ० महावीर निर्वाण
महोत्सव वर्ष (स० २५०१)

मूल्य ५.००

पुस्तक मिलने का स्थान

१. श्री अभय जैन ग्रन्थालय
नाहटों की गवाड
बीकानेर (राजस्थान)

२ नाहटा ब्रदर्स,
४ जगमोहन मल्लिक लेन
कलकत्ता–७

३ जौहरी श्री राजरूप जी टाक
जौहरी बाजार, टाक भवन,
जयपुर–३ (राजस्थान)

४ श्री छुट्टनलाल जी वैराठी
जौहरी बाजार
जयपुर–३ (राजस्थान)

महावीर निर्वाण स० २५०१
विक्रम स० २०३२

ईस्वी सन १९७५

मुद्रक
महावीर प्रेस,
भेलूपुर, वाराणसी ।



शासन प्रभावक श्री जिनप्रभ सूरि मूर्ति
(शत्रुंजय महातीर्थ खरतर बसही)

प्रकाशकीय

जैन-शासन को प्रभावना करने वाले महान् आचार्यों ने समय-समय पर शासन की रक्षा, प्रभावना और जैन-धर्म का प्रचार करके शासन का गौरव बढाया है। भगवान् महावीर का शासन ढाई हजार वर्षो तक अविच्छिन्न रूप से सुचारु रूप में जो चला आ रहा है, यह उन्ही आचार्यों की महान् देन है। जैन-धर्म में उन शासन-प्रभावक आचार्यों की बडी भक्ति-भाव से प्रशंसा और पूजा की जाती रही है, उनमें खरतर-गच्छ के महान् आचार्यों का विशिष्ट एव उल्लेखनीय स्थान है। खरतर-गच्छ के आचार्यों मे युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरि जी, उनके शिष्य मणिधारी जिनचंद्रसूरि जो और उनकी परम्परा मे प्रगट-प्रभावी श्री जिनकुशलसूरिजी और सम्राट् अकबर प्रदत्त युगप्रधान पद-धारक श्री जिनचन्द्रसूरि जी—ये चार तो दादा साहब के नाम से प्रसिद्ध और पूज्यमान है। उनकी प्रतिमाएँ, चरण दादावाडियो और जिनालयो मे सैकड़ो हजारो को सख्या मे भारत के कोने-कोने मे विद्यमान-पूज्यमान है। उनको जोवनो और स्तवना सम्बन्धी सैकड़ो रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। उससे भी अधिक अप्रकाशित स्तवनादि साहित्य ज्ञान-भडारो मे पड़ा है। इन चारो दादा गुरुओ के जीवन-चरित्र हम बहुत वर्ष पूर्व प्रकाशित कर चुके है और उनके सस्कृत व गुजराती अनुवाद भी छप चुके है, कुछ छपने वाले है।

युगप्रधान चारो दादा साहब की ही भाँति खरतर-गच्छ मे एक पाँचवें दादाजी महान् शासन-प्रभावक और हो चुके हैं जिनके सम्बन्ध मे जनसाधारण को बहुत ही कम जानकारी है। कई वर्ष पूर्व पं० लालचंद भगवान गाधी के लिखित "जिनप्रभसूरि अने सुलतान मुहम्मद" नामक गुजराती भाषा व देवनागरी लिपि मे ग्रन्थ प्रकाशित हुआ था, उसके बाद हमने विधिमार्ग-प्रपा के प्रारम्भ में श्रीजिनप्रभकी जीवनी संक्षेप मे प्रकाशित की थी। आव-

श्यकता थी ऐसे महान् विद्वान् और शासन-प्रभावक आचार्य के व्यक्तित्व एव कृतित्व पर स्वतत्र ग्रन्थ प्रकाशन की । महोपाध्याय विनयसागरजी के प्रस्तुत ग्रन्थ द्वारा उस आवश्यकता की पूर्ति बहुत अच्छे रूप में हो रही है । हमारी प्रेरणा व सहयोग से उन्होने यह ग्रंथ कई वर्ष पूर्व तैयार कर दिया था पर अभी तक प्रकाशन-सुयाग नही मिल सका था ।

जययुर के श्रीमालवंश-विभूषण छुट्टनलालजी वैराठी एवं श्री राजरूपजी टाक ने प्रकाशन के लिए आर्थिक सहयोग देकर हमें प्रकाशन का सुअवसर दिया अतः हम उनके आभारी है । भ० महावीर के २५०० वें निर्वाण महोत्सव के मंगलमय प्रसग में उन्ही के शासन के एक महान् आचार्य का जीवन-चरित्र प्रकाशित करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है ।

प्रस्तुत ग्रन्थ में श्री विनयसागर जी ने प्राप्त समस्त साघनो और सूरि जी द्वारा रचित साहित्य का भली-भाँति उपयोग करते हुए उनके अप्रकाशित स्तोत्रो के साथ पुस्तक तैयार करके गच्छ और गुरुभक्ति का जो आदर्श उपस्थित किया है, उसके लिए हम उनके सविशेष आभारी हैं । इस ग्रन्थ में जिनप्रभसूरि जी के समस्त स्तोत्रों को प्रकाशित करने के लिए प्रेसकापी तैयार की गई थी, पर वैसा करने पर व्यय व समय अधिक लगता इसलिए प्रकाशित स्तोत्रो की केवल सूची देकर सन्तोष करना पड़ा है और अप्रकाशित स्तोत्र ही प्रस्तुत ग्रन्थ में दिए जा सके है ।

श्रीमालवश-विभूषण श्री जिनप्रभसूरिजी चौदहवी शताब्दी के महान् विद्वान् और तत्कालीन सम्राट् मुहम्मद तुगलक को जैन-धर्म का बोध देकर जैन-शासन का गौरव बढाने वाले महापुरुष हो गए है । उनमें सम्राट् से मिलने और विशिष्ट सम्मान प्राप्त करने के विश्वस्त उल्लेख तत्कालीन प्रामाणिक ग्रन्थों मे पाये जाते हैं । सूरिजी के विविध-तीर्थकल्प नामक ग्रन्थ में कन्यानयनीय महावीर-तीर्थकल्प और कल्प परिशेष में उन घटनाओ का समावेश होने के कारण उनकी प्रामाणिकता एवं महत्त्व निर्विवाद है । आपके

सम्बन्ध में रचित समकालीन गीतो को हमने बहुत वर्ष पूर्व उन्ही की परम्परा की प्राचीन सग्रह-प्रति से लेकर अपने सम्पादित 'ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह मे प्रकाशित कर दिये थे। इसके बाद समकालीन परवर्ती खरतर-गच्छीय सामग्री के अतिरिक्त सूरिजी के सम्बन्ध मे तपागच्छीय दो विद्वानो ने चामत्कारिक प्रवादो का अपने ग्रन्थो में सग्रह किया है, वह भी बहुत ही उल्लेखनीय एवं महत्त्वपूर्ण है।

आचार्यश्री के कई ग्रन्थ तो भारतीय व जैन-साहित्य की अमूल्य निधि हैं। उनमे से विविध-तीर्थकल्प तो अपने ढग का एक ही ग्रन्थ है जिसमे उस समय के प्रसिद्ध जैन-तीर्थों सम्बन्धी पौराणिक और ऐतिहासिक जानकारी प्राकृत और सस्कृत, गद्य एवं पद्य उभय रूप मे दी गई है। इसी तरह 'विधिप्रपा' में जैन विधि-विधानो सम्बन्धी जितनी अच्छी जानकारी प्राप्त होता है वैसी अन्य ग्रन्थो में उस रूप में किसी एक ही ग्रन्थ मे अन्यत्र दुर्लभ है। ये दोनों ग्रन्थ सुसम्पादित रूप में प्रकाशित है। श्रेणिक द्वयाश्रय महाकाव्य आदि भी आपकी विशिष्ट रचनाएँ हैं। उक्त द्वाश्रय बहुत वर्षो पहले गुजराती अनुवाद सहित अपूर्ण ही छपा इसका सुसम्पादित पूर्ण सस्करण सानुवाद और साहित्यिक अध्ययन सहित प्रकाशित किया जाना अपेक्षित है।

स्तोत्रो के क्षेत्र मे तो जिनप्रभसूरिजी का सर्वोच्च स्थान है। विविध प्रकार के इतने अधिक व उच्चस्तर के स्तोत्र आपके ही प्राप्त है। खेद है कि ७०० स्तोत्रो मे से अब केवल १०० के भीतर ही आपके रचित स्तोत्र उपलब्ध है। आपकी अप्रकाशित रचनाएँ अभी भी बहुत-सी मिलनी चाहिए पर खरतर-गच्छ की जिस लघु आचार्य-शाखीय श्रीजिन-सिहसूरि जी के आप पट्टधर थे, उस शाखा का अस्तित्व न रहने से रचनाएँ सुरक्षित नही रह सकी।

महान् श्वेताम्बर तीर्थ शत्रुञ्जय की खरतर-वसही मे आपकी एक प्रतिमा स्थापित है जिसका ब्लाक प्रस्तुत ग्रन्थ मे प्रकाशित किया जा रहा है।

आपकी परम्परा की एक विशिष्ट संग्रह-प्रति बीकानेर के वृहद्-ज्ञान भंडार मे हमे प्राप्त हुई और एक उल्लेखनीय विशिष्ट संग्रह गुटका हमारे अभय जैन ग्रन्थालय के कला-भवन मे प्रदर्शित है। आपकी परम्परा मे कई आचार्य और मुनिगण अच्छे विद्वान् हुए है जिनका कुछ परिचय प्रस्तुत ग्रन्थ में दिया गया है। अठारहवी शताब्दी तक तो आप की परम्परा चलती रही पर आचार्य-परम्परा १७ वी शती मे समाप्त हो गई थी। महान् टीकाकार चारित्रवर्द्धन आपकी परम्परा के उल्लेखनीय विद्वान् है।

परिशिष्ट मे जिनप्रभसूरि गुण-वर्णन एवं छप्पय त्रय दिये गये है। वैसे पट्टावलियो आदि मे और भी कई उल्लेख और पद्य पाये जाते है। प्राप्त सामग्री से यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि मारे जैन-शासन मे आप जैसे आचार्य विरले ही हुए है। ऐसी महान् विभूति के सम्बन्ध मे यह ग्रन्थ प्रकाशित करते हुए हमे असीम हर्ष का अनुभव होना स्वाभाविक ह। इससे भारतीय इतिहास का एक नया पृष्ठ खुलेगा। ऐसे महान् आचार्य का हमारे ऐतिहासिक एव साहित्यिक ग्रन्थो मे उल्लेख होना ही चाहिए।

—अगरचन्द नाहटा

दो शब्द

विद्वच्छिरोमणि महाप्रभाविक आचार्य श्रीजिनप्रभसूरिजी रचित अनेक विधाओं, अनेक भाषाओं एवं यमक-श्लेष परिपूर्ण स्तोत्र-साहित्य की ओर मैं बचपन से ही आकृष्ट रहा। वर्षों पूर्व मेरी अभिलाषा थी कि आचार्य-श्री के प्राप्त समग्र स्तोत्रों का सकलन प्रकाशित हो तो भक्तजन एवं विद्वद्गण अधिक लाभ ले सकेंगे। इसी अन्त:प्रेरणा से प्रेरित होकर मैंने सन् १९६० तक प्राप्त समग्र स्तोत्रों का सकलन करना प्रारम्भ किया था। विजयधर्म-लक्ष्मी-ज्ञान मन्दिर आगरा के सग्रहस्थ स्वाध्याय पुस्तिका के ४ स्तोत्रों को छोड़कर, प्रकाशित एव अप्रकाशित समग्र स्तोत्रों की मैंने पाण्डु-लिपि तैयार कर ली और उक्त संग्रह के परिचय स्वरूप भूमिका भी ३१ जनवरी १९६१ को लिखकर पूर्ण कर दी थी। संयोगवश आज तक यह संग्रह प्रकाशित न हो सका। किन्तु मुझे प्रसन्नता है कि केवल वही 'भूमिका' आज बारह वर्ष पश्चात् पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो रही है।

आचार्यश्री के जीवन-चरित्र आलेखन में मैंने मुख्यत. 'वृद्धाचार्य प्रबन्धावली', उपाध्याय जयचन्द्र गणि भण्डारस्थ 'पट्टावली', विजयधर्मलक्ष्मी ज्ञानभण्डारस्थ १ पत्रात्मक अपूर्ण 'पट्टावली', श्री सोमधर्म गणि रचित 'उपदेशसप्ततिका', श्री शुभशील गणि रचित 'पंचशती कथा-प्रबन्ध', प०लालचन्द भगवान् गाधी लिखित 'श्रीजिनप्रभसूरि अने सुलतान मुहम्मद' पुस्तक, श्री अगरचन्द्र जी भवरलाल जी नाहटा लिखित 'शासन प्रभावक श्रीजिनप्रभसूरि' नामक लेख एव स्वयं जिनप्रभसूरि रचित 'कन्यानयन-तीर्थकल्प' आदि अन्तःसाक्ष्य ग्रन्थों का उपयोग किया है।

आचार्यश्री की चामत्कारिक घटनाओं का उल्लेख १६ वी शताब्दी मे तपागच्छीय सोमधर्म गणि एव शुभशील गणि ने किया है। वर्तमान समय में भी पुरातत्त्वज्ञ डॉ. जी.ब्युहलर ने 'विविधतीर्थकल्प' गत

'मथुराकल्प' पर स्वतन्त्र निबन्ध लिखा, तब से ही जैन-विद्वानो का ध्यान इस ओर गया। खरतरगच्छीय स्व० श्रीजिनहरिसागरसूरिजी, उपाध्यायश्री सुखसागरजी म के प्रयत्नो से और पुरातत्त्वाचार्य मुनि जिनविजयजी के सम्पादित ग्रन्थो, प० लालचन्द भ. गाधी, श्री अगरचन्दजा नाहटा के लिखित जीवन-चरित्र एव लेखो तथा स्व० चतुरविजयजी आदि विद्वानो द्वारा सम्पादित कतिपय स्तोत्र-सग्रहो मे प्रकाशित स्तोत्रो से आचार्य जिनप्रभ के व्यक्तित्व और कृतित्व की कुछ झलक विद्वानो के सम्मुख आई। किन्तु आज भी जिनप्रभसूरि का अधिकांश साहित्य अप्रकाशित ही है। अत विद्वानो और साहित्य-प्रकाशिनी सस्थाओ से मेरा अनुरोध है कि जिनप्रभसूरि रचित न केवल स्तोत्र-साहित्य ही अपितु श्रेणिकचरित (द्वयाश्रयकाव्य), कल्पसूत्र-सदेहविषौषधि टीका, अनेकार्थ-सग्रह टीका एवं विदग्धमुखमण्डन टीका आदि ग्रन्थो का सुसम्पादित सस्करण अवश्य प्रकाशित करे, जिससे आचार्यश्री के कृतित्व का विद्वज्जगत् पूर्णरूपेण मूल्याकन कर सके।

जिनप्रभसूरि उल्लिखित कविदर्पण—

श्री जिनप्रभसूरि ने वि० स० १३६५ मे 'अजितशान्तिस्तव' पर टीका की रचना की है। टीका की प्रान्तपुष्पिका में लिखा है—इस स्तोत्र में छन्दो के लक्षण मैने प्राय करके 'कविदर्पण' के आधार से स्व-परोपकार हेतु प्रदान किये है। अत मै 'कविदर्पण' का 'उपजीव्य' हूँ।

कविदर्पणमुपजीव्य प्रायेण च्छन्दसामिह स्तोत्रे।
स्वपरोपकारहेतोरभिदधिरे लक्षणानि मया॥

'उपजीव्य' शब्द पर विचार करने के पूर्व कविदर्पणकार एवं उसके रचनाकाल के सम्बन्ध मे विचार करना अपेक्षित है।

कविदर्पण टीका के साथ प्रोफेसर हरि दामोदर (एच० डी०) वेलणकर, सह-संचालक भारतीय विद्या भवन, बम्बई द्वारा सुसम्पादित होकर, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर से सन् १९६२ मे प्रकाशित हो

चुका है। उसकी प्रस्तावना मे पृष्ठ ४ पर सम्पादक ने लिखा है कि कविदर्पण का प्रणेता कोई खरतरगच्छीय विद्वान् ही है।

कविदर्पण की टीका में टीकाकार ने छन्द-लक्षणो के उदाहरणो मे कई उदाहरण ऐसे दिये हैं जिनमें धर्मसूरि (पृ० २१), समुद्रसूरि (पृ० २८), तिलकसूरि (पृ० ४६), यशोघोषसूरि (पृ० ३७), सूरप्रभसूरि (पृ० ४६), लक्ष्मीसूरि (पृ० ३९), आदि जैनाचार्यों के स्तुति एवं प्रशंसापरक पद्य है, तो कतिपय उदाहरण पादलिप्तसूरि (पृ० ८), हेमसूरि (पृ० ४३), जिनसिंहसूरि (पृ० २४), सूरप्रभसूरि (पृ० ४४), तिलकसूरि (पृ० ३४) आदि आचार्यों द्वारा प्रणोत है।

पूर्वोक्त आचार्यों मे से सूरप्रभसूरि, तिलकसूरि और जिनसिंहसूरि खरतरगच्छ के आचार्य एवं श्रेष्ठ विद्वानो मे से है। इन तीनो आचार्यों का समय वि० सं० १२५० से १३४० के मध्य का है। जिनसिंहसूरि तो अजितशान्तिस्तव टीका के टीकाकार जिनप्रभसूरि के गुरु ही है। अत यह तो नि.सदेह कहा जा सकता है कि यह कृति किसी खरतरगच्छीय जैनाचार्य द्वारा ही प्रणीत है।

कविदर्पण की टीका मे पृ० ८ पर 'शूर (सूर) परिभाषेयं पूज्यप्रयुक्ता' वाक्य प्राप्त होता है। 'सूर की यह परिभाषा पूज्य द्वारा प्रयुक्त है' इस वाक्य से सूरप्रभाचार्य के लिये कल्पना की जा सकती है कि इन्होने भी छन्द शास्त्र का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ बनाया था, जो उस समय उपलब्ध था।

टीका मे पृ० ३३, ३५, ३६, ३७ पर 'छन्द कन्दली' नामक छन्दोग्रन्थ के उदाहरण भी कतिपय स्थलो पर प्राप्त है। उदाहरणो की भाषा देखते हुये छन्द कन्दलीकार भी जैन-विद्वान् ही प्रतीत होते है।

जिनसिंहसूरि के गुरुभ्राता श्री जिनप्रबोधसूरि रचित 'वृत्तप्रबोध' (उल्लेख-युगप्रधानाचार्य गुर्वावली पृ० ५७) नामक छन्दोग्रन्थ का इसमें कही भी उल्लेख न होने से अधिक सम्भावना यही है कि इस ग्रन्थ का प्रणेता लघु खरतरशाखीय जिनसिंहसूरि का सहाध्यायी या शिष्य हो! किन्तु जब तक कोई पुष्ट प्रमाण प्राप्त न हो जाय तब तक कर्त्ता के सम्बन्ध

मे निश्चित रूप से निर्णय नही किया जा सकता, केवल अनुमान ही किया जा सकता है।

कविदर्पण का सर्वप्रथम उल्लेख वि० सं० १३६५ मे जिनप्रभसूरि ने किया है। अत यह निश्चत है कि कविदर्पण की रचना वि० स० १३६५ के पूर्व हो चुकी थी। खरतरगच्छीय पट्टावलियो के अनुसार जिनसिहसूरि वि० स० १२८० मे आचार्य बने थे। अत पृष्ठ २४ पर प्राप्त 'जिनसिंह-सूरि कृत 'चूडालदोहक' से स्पष्ट है कि वि० सं० १२८० के पश्चात् ही इसका निर्माण हुआ है। इसलिये कविदर्पण का रचना समय १२८० से १३६५ के मध्य मे माना जा सकता है।

जिनप्रभसूरि ने अजितशान्तिस्तव के छन्दो के लक्षण-निर्धारण मे ८, ३२, ३३ वी गाथाओ के लक्षण हेमचन्द्रसूरि कृत 'छन्दोनुशासन', गाथा २४, २५ के लक्षण केदारभट्ट कृत 'वृत्तरत्नाकर', गाथा ३ री सिलोगो (श्लोक) का लक्षण 'नन्दिताढ्य छन्द ग्रन्थ' और गाथा तथा मागधिका छन्द के लक्षण 'कविदर्पण' के आधार मे दिये है। शेष समस्त छन्दो के लक्षण किस छन्दोग्रन्थ के आधार से दिये है, उल्लेख न होने मे स्पष्ट नही है। किन्तु 'कविदर्पणमुपजीव्य प्रायेण च्छन्दसामिह स्तोत्रे' पक्ति से स्पष्ट ध्वनित है कि प्राय. करके समस्त छन्दो के लक्षण कविदर्पण के ही प्रदान किये है। यदि केवल दो छन्दो के लक्षण मात्र कविदर्पण के देने अभीष्ट होते तो 'उपजीव्य' और 'प्रायेण' शब्दो का प्रयोग कदापि सम्भव नही था। ऐसी अवस्था मे प्राय समस्त छन्दो के लक्षण कविदर्पण के ही स्वीकार करने होगे।

अजितशान्तिस्तव टीका मे, प्राकृत भाषा मे उद्धृत छन्दो के लक्षण कविदर्पण के मुद्रित सस्करण मे प्राप्त नही है। अत निश्चित है कि सम्पादक महोदय को प्राप्त आदर्श प्रति पूर्णरूपेण खण्डित एवं अपूर्ण ही थी। अतः शोध-विद्वानोका कर्त्तव्य है कि इसकी पूर्ण प्रति की शोध करें एवं उसके प्राप्त होने पर उसे प्रकाश मे लाने का प्रयत्न करें।

रहस्यकल्पद्रुम

इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में प्रस्तुत पुस्तक के पृष्ठ ११८ पर मैंने लिखा है कि—"रहस्य कल्पद्रुम नामक ग्रन्थ मे जैन समाज मे प्रचलित अनेक मन्त्रो के इष्ट प्रयोगो का अनुकथन है। पूर्ण ग्रन्थ प्राप्त न होकर कुछ प्रयोग मात्र ही प्राप्त हैं।"

श्रीजैनप्रभसूरि के स्वर्गवास के ५-७ वर्ष पश्चात् ही रुद्रपल्ली गच्छीय श्री सोमतिलकसूरि ने सं० १३९७ में रचित त्रिपुराभारती लघुस्तव पद्य ६ की टीका में इस ग्रन्थ का उल्लेख करते हुए निम्न अश उद्धृत किया है।

"यदाहु श्रीजिनपदसूरिपादा रहस्ये—पुसो वश्यार्थं शिवाक्रान्त शक्तिबीज रक्तध्यानेन। स्त्रियास्तु वश्यार्थं शक्त्याक्रान्तं शिवबीज ध्यायेदिति।"

ग्यारह पत्रात्मक इस ग्रन्थ का केवल अन्तिम ग्यारहवाँ पत्र श्रीनाहटा जी को प्राप्त हुआ है। ग्यारहवें पत्र की लेखन प्रशस्ति के अनुसार यह प्रति वि० स० १५४६ श्रावण शुक्ला १३ गुरुवार के दिन मण्डपदुर्ग (माडवगढ) मे खरतरगच्छीय श्रीजिनप्रभसूरि, श्री जिनचन्द्र सूरि के पट्टधर श्रीजिनसमुद्रसूरि के धर्मसाम्राज्य में महोपाध्याय श्री तपोरत्न के शिष्य वाचनाचार्य श्री साधुराज गणि के आदेश से और भक्तिवल्लभ गणि के सानिध्य में शिष्यलेश " ने लिखा था।

इस प्राप्त पत्र मे महात्मातगिनी, रक्तचामुण्डा, प्रत्यंगिरा देवी के उच्चाटन, आकर्षण, कार्मण सम्बन्धी मन्त्र प्राप्त है और अन्त में औषध के प्रयोग भी है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि मान्त्रिक रहस्यों के साथ-साथ औषध के अनुभूत प्रयोग भी इस ग्रन्थ मे सम्मिलित है। भडारो मे इस ग्रन्थ के खोज की आवश्यकता है। पूर्ण ग्रन्थ प्राप्त होने पर मान्त्रिक रहस्यो व अनुभूत प्रयोगो पर विशेष प्रकाश पड सकता है।

आभार

प्रसिद्ध साहित्यसेवी विद्वान् श्री अगरचन्दजी नाहटा की सतत प्रेरणा और सामग्री संकलन मे पूर्ण सहयोग मुझे सदैव ही प्राप्त होता रहा है। अत श्री नाहटाजी का मैं अत्यन्त ही आभारी हूँ।

प्रस्तुत पुस्तक मे प्रूफ-संशोधन में असावधानी अधिक रहने से अशुद्धि-बाहुल्य रहा है, जिसका मुख्य कारण प्रकाशक महोदय का प्रेस वालो पर आधारित रहना ही प्रतीत होता है। अत पाठको के प्रति मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

३३ A, न्यू कॉलोनी गुमानपुरा,
कोटा
दिनाङ्क २२–१०–१९७३

म० विनयसागर

विषयानुक्रम

●

शासन-प्रभावक आचार्य जिनप्रभ
और
उनका—साहित्य

कोई भी शासन हो, चाहे दर्शन हो या समाज, संघ या परंपरा हो वह तब ही स्थायी, दीर्घजीवी और प्रभावशाली हो सकता है जब कि उस शासन-दर्शन-समाज-संघ-परंपरा मे समय-समय पर प्रतिभाशाली साहित्य-कार, वक्तृत्वकलाधारी उपदेशक (प्रावचनिक), सिद्धिधारक चमत्कारी, अत्युग्रतपस्वी और सिद्धान्तज्ञ और वादी हो, अन्यथा वर्षा के अभाव मे जैसे नदियाँ शुष्क और क्षीण हो जाती है वैसे शासन आदि का स्रोत निर्बल होता हुआ समाप्तप्राय हो जाता है। क्योकि व्यक्ति अपने स्व-अर्थ (भौतिक और आध्यात्मिक) साधन मे सलग्न रहता है, और प्रतिभा-युक्त व्यक्तित्वधारी स्व-अर्थ साधन के साथ समाज के उत्कर्ष मे लीन रहता है। यही कारण है कि जैन ग्रन्थो में ऐसे व्यक्तित्वधारियो को 'प्रभावक' शब्द से सबोधित किया है और प्रभावक आठ प्रकार के बत-लाये गए है :—

पावयणी धम्मकही वाई नैमित्तिओ तवस्सी य ।
विज्जा-सिद्धा य कवी अट्ठे य प्रभावगा भणिया ।।

[[1]प्रावचनिक, [2]धर्मकथाप्ररूपक, [3]वादी, [4]नैमित्तिक, [5]तपस्वी, [6]विद्या-धारक, [7]सिद्धिधारक और [8]कवि—ये आठ प्रकार के प्रभावक होते है।]

ऐसे प्रभावक अपने चमत्कारो से रक से लेकर राजा-महाराजाओ को अपने शासन के प्रेमी बनाते है, तो दर्शन और साहित्य द्वारा समस्त दार्शनिको और साहित्कारो को अपना अनुगत और स्वदर्शन तथा साहित्य के रसिक बनाते हैं।

जैन शासन-परपरा मे आचार्य सिद्धसेन दिवाकर (दार्शनिक और चमत्कारी), जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण, आचार्य हरिभद्रसूरि, आचार्य समन्त भद्र, आचार्य अकलंक जैसे दार्शनिक, आचार्य जिनेश्वरसूरि, श्रीबुद्धि-सागरसूरि, आचार्य अभयदेव, आचार्य हेमचन्द्र जैसे असाधारण साहित्य-कार, युगप्रधान जिनदत्तसूरि जैसे चमत्कारी और आचार्य जिनेश्वर तथा जिनपतिसूरि जैसे वादी अनेको प्रभावक हुए है। ऐसे ही प्रभावक पुरुषो मे आचार्य जिनप्रभसूरि एक विशिष्ट प्रभावक हुए है।

आचार्य जिनप्रभ ने न केवल असीम साहित्य रचनाकर अपना नाम उपार्जित किया अपितु तुगलक बादशाह को भी अपने चमत्कारो से अनु-रजित कर, अनेक तीर्थो की रक्षा कर जैन शासन के 'यश' को चतुर्मुखी विस्तृत किया है। हालाँ कि वर्तमान वैज्ञानिक युग मे इन चमत्कारो-प्रदर्शनो का कोई स्थान नही है, किन्तु इनका विशाल साहित्य आज के ऐति-हासिक युग मे भी 'ज्योति' प्रकाश का कार्य कर रहा है। अत ऐसे समाज के साहित्य से जैन समाज का परिचित होना अत्यावश्यक है।

मुहम्मद–तुगलककालीन भारत

आचार्य जिनप्रभसूरि के समय मे दिल्ली मे तुगलक वश के सुल्तान मुहम्मदशाह का शासन था जिसका पूरा नाम मुसलमानी तवारीखकारो ने सुल्तान मुहम्मदशाह इब्ने तुगलुकशाह उल्लिखित किया है। जैन साहित्य तथा स्वय जिनप्रभसूरि के ग्रन्थो के अन्त साक्ष्य से प्रमाणित होता है कि जिनप्रभ कुछ वर्षो तक योगिनीपुर (दिल्ली) मे रहे थे और सुल्तान मुहम्मदशाह पर भी उनका पर्याप्त प्रभाव था। सुल्तान मुहम्मद तुगलक भारतीय इतिहास मे अपने जल्दबाजी व अदूरदर्शितापूर्ण कार्यो के लिए विख्यात है। तो भी सभी इतिहासकार असदिग्ध रूप मे स्वीकार करते है कि वह मध्यकाल के भारतीय शासको मे विद्वता मे सबसे बढा-चढा था। वह हिन्दी व फारसी मे काव्य-रचना करता था। हिन्दी मे उसने अपना उपनाम जोन्हा (ज्योत्स्ना) रक्खा था। दर्शनशास्त्र मे भी उसकी अभि-

रुचि थी। स्वयं विद्वान् होने के साथ-साथ वह विद्वानो का समादर भी करता था।

मुहम्मद तुगलक के समय की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा आर्थिक स्थिति समझने के लिए हमे तत्कालीन मुसलमान इतिहासकारो के ग्रंथो से बडी सहायता मिलती है, परंतु कुछ ऐसे कारण है कि हम सम्पूर्णत उन्ही को आधार नही बना सकते। जियाउद्दीन बरनी मुहम्मद तुगलक का समकालीन प्रसिद्ध इतिहासकार है। एसामी, बद्रेचाच, अमीरखुर्द, शिहाबुद्दीन अल उमरी, यहया बिन अहमद सहरिन्दी, अब्दुल कादिर बदायूनी, मुहम्मद कासिम हिन्दूशाह 'फिरिश्ता' आदि इतिहास व साहित्यकारो के ग्रन्थो से भी तुगलककाल के विषय मे यथेष्ट सामग्री प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त सबसे अधिक प्रामाणिक सामग्री इब्नबतूता नामक प्रसिद्ध अफ्रीकी यात्री के यात्रा-वर्णन मे मिलती है। इन सभी प्रमाणो के आधार पर हम तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक स्थिति का मूल्याकन तटस्थ दृष्टि से इस प्रकार कर सकते है।

राजनीतिक स्थिति

भारत मे राष्ट्रीयता को भिन्नत समझा गया था। यहाँ वैयक्तिक भेदो से ऊपर उठकर विश्वबन्धुत्व की ओर होनेवाले मानसिक विकास के मार्ग के एक स्थितिस्थान (Station) को राष्ट्रीयता माना गया है। जब तक भारतीयो की इस मान्यता पर आघात न होता, तब तक वे बाहर से आनेवाली जातियो से भी युद्ध को तैयार नही होते थे। पूर्व-मध्यकाल मे अनेक जातियाँ मध्य एशिया से आकर भारत मे बस गई। उनके बडे-बडे साम्राज्य भी भारत मे स्थापित हुए और मिट गये। सच्चे भारतीय की तरह ही उन्होने भी भारतीय धर्म और दर्शन की रक्षा के लिए प्रयत्न किए। ७ वी शती के अन्त होते ही अरबो के आक्रमण सिन्ध पर होने लगे। राष्ट्रीय स्तर पर इसका तीव्र विरोध नही हुआ। भारतीयो को वैदान्तिक एकेश्वरवाद और इस्लाम के एकेश्वरवाद में कोई भेद

दृष्टिगत नही हुआ। यही कारण है कि लगभग ४ शताब्दियो तक भारत के इस्लाममत का प्रचार करने मुस्लिम सन्त आते रहे। भारतीयो ने उनका आदर किया और उनके उपदेशो का श्रवण करते रहे, किन्तु १२ वी शताब्दी मे उत्तर-पश्चिमी सीमान्त से उत्तरी भारत पर भिन्न प्रकार के आक्रमण प्रारभ हुए, जिन्हे बडे पैमाने पर सशस्त्र डकैती कहा जा सकता है। आक्रमणकारी महमूद गजनवी और मुहम्मद गोरी यद्यपि मुसलमान थे, परन्तु उनके आक्रमणो का इस्लाम से कोई सम्बन्ध न था। गजनवी तो केवल धन लूटने ही अनेक बार भारत आया था। गोरी ने धन के साथ साम्राज्य स्थापना की ओर भी ध्यान दिया और यो, उत्तरी भारत मे मुसलमानी-साम्राज्य स्थापित हुआ।

गोरी की मृत्यु के बाद भारत मे गुलामवशी व खिलजीवशी शासकों ने राज्य किया। अलाउद्दीन खिल्जी ने तो लगभग सारे भारत को जीत लिया। इन सभी शासको ने इस्लाम के नाम पर स्वार्थी मुसलमानो को अपने वश मे करके तलवार के बल पर शासन किया। बहुसख्यक प्रजा के ऊपर अत्याचार किए गए, धनिको का धन व स्त्रियो का यौवन लूटा गया। सत्ता क्रूरता का पर्याय बन गई। जो जितना सशक्त सुल्तान होता वह उतना ही प्रजा को आतंकित किया करता। अधिकतर सत्ताधारी विलासिता का जीवन बिताते और विलासिता मे ही किसी सामन्त की तलवार के शिकार हो जाते थे। इस प्रकार की राजनीति भारत के लिए नई थी। भारतीयो के मन मे इन शासको से अधिक उनके धर्म से घृणा हो गई थी, क्योंकि उन पर सभी अत्याचार धर्म के नाम पर किए जाते थे। इस्लाम के प्रति इस घृणा ने इस आगन्तुक जाति को सदैव विदेशी बनाए रक्खा, किन्तु तथ्य की बात तो यह है कि इस्लाम का शासको की क्रूरता के साथ स्वार्थ के अतिरिक्त कोई सम्बन्ध न था।

सन् १३२० ई० मे गयासुद्दीन तुगलक ने खिल्जीवश समाप्त करके तुगलक वंश की नीव डाली। इसके चार वर्ष बाद ही मुहम्मद तुगलक

शासक बना जिसने १३५३ ई० तक राज्य किया। इसके राज्य की सीमाएँ सुदूर दक्षिण तक विस्तृत थी। वह विद्वान् होने से अन्य मुसलमान सुल्तानो से कही अधिक उदार था। मुसलमान इतिहासकारों ने उसकी दानशीलता व क्रूरता का समान रूप से उल्लेख किया है, किन्तु मुसलमानी सल्तनत के लब्धप्रतिष्ठित विचारशील-स्तम्भ की उन उपलब्धियो का उल्लेख नही किया, जिनको उसने बहुसंख्यक हिन्दू प्रजाजनो के लिए प्रयुक्त किया होगा। हाँ, अन्य धर्मो के प्रति उसके द्वारा प्रदर्शित उदार दृष्टिकोण की उन्होने जीभरकर निन्दा तक की है। इसीलिए ऐतिहासिक तिथिक्रम की दृष्टि से प्रमाणित तत्कालीन इतिहास भी राष्ट्रीय तत्त्वो की दृष्टि से अप्रामाणिक है।

मुहम्मद तुगलक के समय कई प्रान्तो में विद्रोह हुए। मुहम्मद के जीवन का अधिक समय युद्धो में ही व्यतीत हुआ। मुसलमान इतिहासकारो के उल्लेखो से प्रमाणित होता है कि मुहम्मद तुगलक के समय सभी विद्रोह उसके मुसलमान सामन्तो ने किए थे। ऐसा ज्ञात होता है कि सुल्तान की हिन्दुओ के प्रति उदारनीति ने कदाचित् उन्हे विद्रोह के लिए प्रेरित किया होगा। सुल्तान मुहम्मद ने दूर देशो के अरबी, ईराकी आदि विद्वानो को बुलाकर ऊँची पदवियो पर नियुक्त किया था। इसका कारण भी कदाचित् अपने सामन्तो पर अविश्वास ही रहा होगा। उसने कई विद्रोहियो व विद्रोह के प्रेरक धार्मिक नेताओ को मौत के घाट उतार दिया था। इतिहासकारो ने उसकी इस क्रूरता की बडी निन्दा की है और साथ ही उसके हिन्दू सलाहकारो पर सारा दोषारोपण किया है। परन्तु सत्य बात तो यह है कि वे १५० से अधिक वर्षो तक धर्म के नाम पर अत्याचार करने के आदी हो चुके थे और कदाचित् मुहम्मद की उदार नीति की इसीलिए प्रशसा करने में समर्थ न थे। दूसरी ओर सुल्तान स्वयं विगत काल में की गई सुल्तानो की हत्या से सचेत रहा करता था, और शायद इसीलिए उसने विद्रोहियो का क्रूरतापूर्वक वध कराया हो। कुछ भी हो, मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में साम्राज्य पर्याप्त विस्तृत

हो गया था फिर भी राजनीतिक अवस्था असन्तुलित होने से विद्रोह हुए और विद्रोहियो से युद्ध करते रहने के कारण उसकी मानसिक उदारता के प्रतिफलन के रूप मे साम्राज्य की ऐसी नीति सफलता को प्राप्त करके प्रसिद्धि मे न आ सकी जिसका सभी धर्मों की प्रजा के हित से सम्बन्ध हो। हाँ, मुहम्मद के उत्तराधिकारी फिरोज तुगलक ने सर्वप्रथम प्रजा-हितार्थ कल्याणकारी राज्य की परंपरा को सफलतापूर्वक क्रियान्वित किया।

सामाजिक दशा

राजनीतिक असन्तुलन के युग मे किसी भी प्रकार की सामाजिक प्रगति की योजना की राज्य से आशा नही की जा सकती। मुहम्मद तुगलक निश्चय ही अपने अधीनस्थ सामन्तो की नीति से असन्तुष्ट था, किन्तु वह प्रत्यक्ष रूप से उनका विरोध करके हिन्दू लोगो को उनका स्थान देने का साहस नही करता था। इसलिए उसने अरबी, ईराकी व ईरानी लोगो को बुलाकर योग्यतानुसार कार्य सौंपा था। शासन के अतिरिक्त वह हिन्दू लोगो का अन्य कार्यों मे भरपूर सहयोग प्राप्त करता था। कुकृत्य करनेवाले सामन्तो को वह हिन्दुओ की सहायता से ही दण्ड दिया करता था। उसने इस्लाम के प्रचार के लिए प्रयत्न किया अवश्य, किन्तु कदाचित् उसका ध्यान इससे अधिक ज्ञान की खोज करने मे लगा हुआ था। वह विद्वानो का समादर करता था।

सामान्य हिन्दू मुसलमानो मे आक्रान्ता के रूप मे घृणा करते थे, किन्तु इस्लाम के सिद्धान्तो व मुसलमान फकीरों व पीरो का आदर करते थे। तीव्र घृणा के उपरान्त भी सामान्य लोगो मे सहअस्तित्व की भावना पनप रही थी। हिन्दू लोग पीर-पैगम्बरो मे आस्था रखने लगे थे। वैष्णव सम्प्रदायो का प्रचार बढने लगा था। कदाचित् हिन्दू लोग अपने धर्म का नमनशील संस्करण तैयार करने मे व्यस्त थे। हिन्दुओ मे जाति-भेद चरम अवस्था पर पहुँच रहा था। मुसलमानी शासको के अत्याचारो

ने उन्हे मानव के एक घृणास्पद, बीभत्स रूप से परिचय कराया था, जिसमे एक मनुष्य अपने सहयोगी के प्रति आस्था खो चुकता है। इस अनास्था का परिणाम हम आज तक भोग रहे है। जातिभेद और छुआ-छूत इसी अनास्था की चरमावस्था के परिणाम है जो इस उत्तरमध्य-काल मे सामाजिक कोढ के रूप मे भारत को मिले।

भारतीय-सस्कृति की नमनशीलता का चरम रूप १४हवी से १७ वी शताब्दी के बीच मे मिलता है। इस काल मे भारतीय समाज ने सबसे अधिक सास्कृतिक नेता पैदा किए, किन्तु दुर्भाग्यवश फिर भी भारतीय सस्कृति इस्लाम को आत्मसात् नही कर सकी। इसका कारण कदाचित् जीवन के प्रति इस्लाम का दृष्टिकोण उतना नही है जितना भारत मे उसके प्रचारको का अनुदार व अनुत्तरदायित्वपूर्ण रुख है।

मुहम्मद तुगलक के शासनकाल मे उत्तर भारत मे इस्लाम का प्रचार बढ रहा था। राजस्थान व गुजरात मे जैनधर्म का प्रचार अधिक हो रहा था। बुद्धधर्म मुसलमानो के आक्रमणो से अपना सामान्य जनता पर प्रभाव खोकर भारत से समाप्त हो चुका था। भारतीय जनता अनेक वर्गो मे विभाजित थी फिर भी उसमे सामाजिक व्यवहारो की समानता के कारण सास्कृतिक ऐक्य विद्यमान था, जिसे इस्लाम के प्रचारको ने नही समझा और न शासको ने ही उसकी ओर ध्यान दिया। धनिक वर्ग तो पास साधनो के आधार पर अपना बचाव कर सकते थे, किन्तु सामान्य लोग राजनीतिक व धार्मिक अत्याचारो से पीडित थे। भारत मे अनेक अछूत जातियाँ इस प्रकार के अत्याचारो से पीडितो की ही है जिन्हे उच्च वर्गो ने विवशता के दण्ड के रूप मे पीछे रह जाने को अपने भाग्य पर छोड दिया।

आर्थिक स्थिति

मुसलमान सुल्तान योग्य योद्धा तो अवश्य थे किन्तु व्यावसायिक उन्नति की ओर उनका ध्यान नही था। लूटकर या प्रजा को आतंकित करके धन

प्राप्त कर लेना ही उनके लिए पर्याप्त था। प्रजा के लिए उन्होने विशद व्यापक आर्थिक नीति का निर्धारण नही किया। तुगलककालीन राजनीतिक अवस्था ही असन्तुलित थी अत आर्थिक क्षेत्र मे मुहम्मद तुगलक ने कोई उल्लेखनीय प्रयत्न नही किया। हाँ, उसने प्रतीकमुद्रा चलाने की आयोजना अवश्य निर्धारित की थी, जिससे वाणिज्य-व्यवसाय मे प्रभूत सुविधा होने की सभावना थी, किन्तु ठीक तरह से कार्यान्वित न किए जाने से योजना सफल न हो सकी।

कृषि व वाणिज्य पर अब भी हिन्दूप्रजा का एकाधिकार स्थापित था। अपनी राजनीतिक व आर्थिक आवश्यकताओ के हेतु कुछ सुल्तानो व प्रान्तीय-शासको ने भी वाणिज्य-व्यापार व उद्योगो को प्रोत्साहित किया। अधिकाश जनता तो आज ही की तरह उस समय मे भी कृषिजीवी ही थी। कृषक गाँवो मे रहते थे। वस्त्र-व्यवसाय, मिट्टी लकडी, व धातु की चीजे बनाना आदि ग्रामीण-क्षेत्र के व ईंट-निर्माण, शक्कर व कागज बनाना, रगसाजी, शस्त्र, सुरा, तेल, इत्र आदि बनाना नागरिक-क्षेत्र के प्रमुख व्यवसाय थे। ऊनी, सूती व रेशमी कपडे महीन से महीन बनाए जाते थे।

आन्तरिक व्यापार उन्नत व व्यापक था। कभी-कभी कठोर शासकीय नियन्त्रण के कारण व्यापारियो को हानि भी उठानी पडती थी। मुहम्मद तुगलक के शासनकाल मे आन्तरिक विद्रोहो व निरन्तर युद्धो मे व्यापार को पर्याप्त हानि हुई थी। फिर भी वाह्य व्यापार की दृष्टि से योरोप के दूरस्थ प्रदेश, पूर्वी द्वीपसमूह, चीन व प्रशान्त महासागरीय अन्य देशो मे भारत का व्यापारिक सम्पर्क था। अफगानिस्तान, ईरान, तिब्बत आदि से स्थलमार्ग से व्यापार चलता था। अरब से घोडे बहुत सख्या मे आते थे। भारतीय वस्त्रो की ख्याति इन सभी देशो मे फैली हुई थी।

शासक, सामन्त व उच्चवर्गीय लोग भोग-विलासो मे लिप्त थे। दास-दासियो का व्यापार चलता था। कृषको की दशा बडी दयनीय थी। उन्हे अधिक कर देना पडता था। मुहम्मद तुगलक के शासनकाल मे दुर्भिक्ष

भी पड़ा था। जिसमें सुल्तान ने पर्याप्त अन्न व धन बँटवाया, कर माफ कर दिये गये। तो भी काफी संख्या में निर्धन मर गये। फिर भी तुगलक-कालीन कृषक आधुनिक कृषको से कही अधिक सपन्न थे। उनके गाँव आत्म-निर्भर थे। मुसलमान शासको ने ग्रामों की व्यवस्था मे कोई हस्तक्षेप नही किया। इसका लाभ के साथ दुष्परिणाम यह हुआ कि ग्रामीण जनता शासन व शासको के प्रति अधिक उदासीन होती गई। १६वी शताब्दी की जनता की उदासीनता का परिचय तुलसीदास ने 'कोऊ नृप होउ हमहि का हानी।' शब्दो मे यथातथ्य दिया है। इस उदासीनता का परिणाम यह हुआ कि १९वी शती के उत्तरार्द्ध तक ग्रामीण जनता ने राजनीतिक षड्यन्त्रो-क्रान्तियो में कोई उल्लेखनीय भाग नही लिया। १८५७ का स्वातंत्र्य सग्राम कदाचित् इसी उदासीनता के कारण असफल रहा, यद्यपि इसमे जनता के एक अश का सहयोग अवश्य रहा।

धार्मिक जीवन

सुल्तानो ने धर्म के नाम पर राजनीतिक स्वार्थो की सिद्धि को प्रमुख उद्देश्य बना लिया था। इसलिए अत्याचार पीडित लोगो के मन मे इस्लाम के प्रति घृणा उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक ही था। विगत १००० वर्षों का इतिहास प्रमाणित करता है कि नमनशील धर्म के अनुयायी होने पर भी आर्थिक संकटो से विवश होकर २०वी शती के अतिरिक्त कभी भारतीयो ने धर्मपरिवर्तन नही किया, न अन्याचार ही उन्हे धर्मपरिवर्तन के लिए विवश कर सके थे। फिर भी तुगलक काल मे इस्लाम का प्रचार बढता जा रहा था। वह कदाचित् उसकी मूलभूत अच्छाइयो का परिणाम था और बढती हुई घृणा इसी प्रकार शासको की अत्याचारपूर्ण नीति के परिणाम-स्वरूप उत्पन्न हुई थी।

भारतीय धर्मवेत्ता संकट से जाति को बचाने के लिए विचाररत थे। रामानुजाचार्य ने वैष्णवभक्ति का प्रचार करते हुए विश्वास व विचार का समन्वय उपस्थित किया था, जो इस्लाम से कही अधिक आगे की

वस्तु थी। रामानुज के मतानुसार सभी जातियों के स्त्री-पुरुष ईश्वरोपासना व मुक्ति के समान रूप से अधिकारी थे। भक्ति-संप्रदाय का आन्दोलन स्पष्टत इस्लाम के प्रतिरोध के लिए किया गया भारतीय जनता का सास्कृतिक अभियान था।

राजस्थान, मालवा व गुजरात मे जैनधर्म का प्रचार था। जैनसाहित्य का स्वर्णकाल समाप्तप्राय था, किन्तु अब भी अनेक जैनाचार्य लोकजीवन मे अपना प्रमुख स्थान बनाये हुए थे। आचार्य जिनप्रभ जैनसाहित्य के स्वर्णयुग के प्रमुख साहित्यकार थे। बहुमुखी प्रतिभा के धनी होने से सुल्तान के कानों तक उनकी ख्याति पहुँची थी और उन्होंने सुल्तान से भेट करके उसे अपने विचारो से प्रभावित किया था।

मुहम्मद तुगलक के शासनकाल मे एक ओर तो हिन्दूधर्म पर इस्लाम का प्रभाव पड रहा था, दूसरी ओर इस्लाम पर भी हिन्दुओ के सपर्क मे प्रभाव बढता जा रहा था। सूफी सन्तो पर भारतीय वेदान्त का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा था। एक ओर हिन्दू सास्कृतिक अभियान के लिए अपने को तैयार कर रहे थे। दूसरी ओर मुसलमान हिन्दुओं के धार्मिक व ज्ञान-विज्ञान-सम्बन्धी विचारधाराओ से परिचित होते जा रहे थे।

साहित्यिक विकास

इस समय मे सस्कृत और अपभ्रंश साहित्य का ह्रास होता जा रहा था, साथ ही प्रान्तीय भाषाएँ अधिक प्रभाव ग्रहण करती जा रही थी। फिर भी दार्शनिक व धार्मिक साहित्य अब भी सस्कृत मे ही लिखा जाता था। जैन साहित्यकारो ने उस समय मे अनेक नाटको व काव्यो की रचना भी की थी उनका प्रकाश मे आना अभी शेष है। सस्कृत भाषा मे ग्रन्थरचना इसलिए भी होती थी कि जिससे उनका भारतभर मे प्रचार हो सके, क्योंकि सस्कृत उस समय भी अन्त प्रान्तीय व्यावहारिक भाषा थी। हिन्दी, मराठी, बगला व दक्षिण की तमिल, तेलगू आदि भाषाओ मे प्रौढ साहित्य की रचना प्रारम्भ हो गई थी। हिन्दी का प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो खिल्जी व तुग-

लक सल्तनत का राजकवि था। वह हिन्दी मे मनोरंजन साहित्य का जन्मदाता था। उसे खडी बोली को सर्वप्रथम प्रयोग करने का श्रेय प्राप्त है। इब्नबतूता नामक अफ्रीकी यात्री मुहम्मद तुगलक के समय भारत मे आया था। उसका यात्रावर्णन साहित्य व इतिहास की बहुमूल्य सम्पत्ति है। जियाउद्दीन बर्नी तुगलककाल का सबसे प्रसिद्ध इतिहासकार है जो मुहम्मद का दरबारी था। मुहम्मद तुगलक के दरबार मे एसामी, बद्र-चाच आदि कवियो को भी पर्याप्त सम्मान प्राप्त था। विद्या-व्यसनी होने से मुहम्मद तुगलक साहित्यकारो का पर्याप्त सम्मान करता था और स्वयं भी काव्यरचना करता था।

साम्कृतिक मूल्याकन

महम्मद तुगलक ने अनेक योजनाएँ बनईं और क्रियान्वित न कर पाने के कारण उसे इतिहास में पागल तक कहा गया। किन्तु फिर भी उसका शासनकाल उसकी उदारदृष्टि के परिणाम स्वरूप अत्यन्त महत्त्व पूर्ण रहा। उसके विचारो से प्रभावित होकर ही उसके उत्तराधिकारी फिरोज तुगलक ने अनेक जनहितकारी योजनाओ को क्रियान्वित किया।

हिन्दू सस्कृति के लिए तो यह काल पर्याप्त महत्त्व का था ही। गुजरात, राजस्थान, मालवा आदि पददलित हो चुके थे या निरन्तर आक्रमणो के शिकार बनते जा रहे थे। इस भूखण्ड के जैन-साहित्यकारो ने निश्चय ही इस काल में महत्त्वपूर्ण सास्कृतिक कार्य किया। अनेक राजनैतिक उत्थान-पतनो के उपरान्त भी वैदिक साहित्य को कण्ठस्थ करके सुरक्षित बनाए रखने का गौरव ब्राह्मणो को प्राप्त है। लगभग यही गौरव इस काल के जैन-साहित्यकारो को मिलना चाहिए जिन्होने विनाश के लोमहर्षक दृश्यो के बीच गुजरात व राजस्थान मे पल्लवित व विकसित जैन-साहित्य की स्वर्णकालीन परंपरा की पवित्रता व गुरुता को नष्ट होने मे ही नही बचाया वरन् नवीन साहित्य के सृजन मे भी पर्याप्त योग दिया।

आचार्य जिनप्रभसूरि इस गौरव के अधिकारी साहित्यकारों मे शीर्ष स्थानीय है।

गुरु-परम्परा

श्रमण भगवान् महावीर के शासन में विक्रम की ८ वी शती से पूर्व चैत्यवास नाम से प्रसिद्ध जिस शिथिलाचार परम्परा का उद्भव और ११ वी शती तक जिसका प्रबल वेग से प्रचार हुआ उस चैत्यवास-प्रथा का उन्मूलन कर सिद्धान्तोक्त श्रमण एव श्रावक वर्ग को पुन प्रतिष्ठित करने का श्रेय खरतरगच्छ के आचार्यों को ही प्राप्त है। सुविहित पक्ष और विधिपक्ष इस गच्छ के अपर नाम है। इस गच्छ का जहाँ शास्त्रीय दृष्टि से महत्त्व है वहाँ इसका ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस गच्छ का नामकरण अन्य गच्छो की तरह सामान्य विशेषताओ के कारण नही हुआ है अपितु सैद्धान्तिक आधार पर प्रबल सघर्ष करते हुए क्रान्ति की ज्वाला फैलाने के कारण हुआ है। इस क्रान्ति के प्रमुख सूत्रधार है आचार्य वर्धमान और आचार्य जिनेश्वर।

आचार्य वर्धमान अम्भोहर प्रदेश मे ८४ स्थानो के नायक चैत्यवासी जिनचन्द्राचार्य के शिष्य थे। सिद्धान्त-वाचना ग्रहण करते हुए जिन मन्दिर के विषय मे ८४ आशातनाओ के प्रसग को पढकर और चैत्यवास के व्यावहारिक जीवन को देखकर इन्हे ग्लानि उत्पन्न हुई, फलस्वरूप सारा वैभव त्यागकर सुविहित श्रमण उद्योतनाचार्य के शिष्य बनकर शास्त्रोक्त साधुत्व का अतरग और वहिरंग समान रूप मे प्रतिपादन करने लगे।

आचार्य जिनेश्वर इन्ही वर्धमानाचार्य के सुयोग्य शिष्य एवं पट्टधर है। प्रभावकचरित के अनुसार आचार्य जिनेश्वर दीक्षित होने के पूर्व मध्य देश के निवासी कृष्ण नामक ब्राह्मण के पुत्र थे। इनका पूर्व नाम श्रीधर था तथा इनके अनुज का नाम श्रीपति था। दोनो भाई बडे प्रतिभाशाली और मेधावी थे। इन्होने वेद, वेदाग, इतिहास, पुराण, षड्दर्शन शास्त्र और स्मृतिशास्त्र आदि समग्र साहित्य का बिधिवत् अध्ययन किया

था। अध्ययनोपरान्त देशाटन करते हुए ये दोनों भाई धारानगरी[1] में पहुँचे। धारानगरी के श्रेष्ठि लक्ष्मीपति के संपर्क से दोनों भाइयों का आचार्य वर्धमान से साक्षात्कार हुआ। आचार्य के उपदेश और साधना से प्रभावित होकर दोनो ने वर्धमानाचार्य का शिष्यत्व अंगीकार किया। दीक्षा-ग्रहण के पश्चात् दोनो भाइयो ने जैन-शास्त्रो का अध्ययन बड़ी लगन तथा तत्परता के साथ किया। शास्त्रों के पारंगत होने पर आचार्य वर्धमान ने दोनो भाइयो को आचार्यपद प्रदान किया। इसी समय से ये दोनो जिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागरसूरि के नाम से प्रख्यात हुए।

वर्धमानसूरि को चैत्यवास जोवन का कटु अनुभव होने के कारण इस परम्परा के प्रति क्षोभ एवं वेदना थी कि महावीर के शासन का यह विकृत रूप दूर होना ही चाहिए और इधर जिनेश्वर जैसे दुर्धर्ष विद्वान् शिष्य का सयोग मिल जाने से इन्होंने इस प्रथा का उन्मूलन करने का दृढ निश्चय करके १८ शिष्यो के साथ चैत्यवासियो के गढ अणहिलपुर पत्तन की ओर प्रयाण किया। दिल्ली से विहार करते हुए पाटण पहुँचे। क्रिया-शील साधु होने के कारण इन्हे निवास के लिए स्थान भी प्राप्त नही हुआ, आचार्य जिनेश्वर के वाग्वैदग्ध्य से प्रभावित होकर राज-पुरोहित सोमेश्वर ने अपनी चतु शाल मे रहने का आग्रह किया। जैनेतर समाज मे आचार्य की यशःकीर्त्ति को बढते देखकर चैत्यवासियो ने इन्हे निकालने के लिए अनेक प्रकार के षड्यन्त्र रचे, असफल होने पर पाटण के तत्कालीन महा-

---

१. धारानगरी मे इस समय महाराजा भोज का राज्य था। सं० १०६७ का मोडासा का अभिलेख मिलने से यह निश्चित है कि १०६७ से १११२ तक भोज का राज्यकाल था। राजा भोज के समय मे धारा-नगरी विद्वानो की क्रीडास्थली रही है। संभवत श्रीधर और श्रीपति विद्योपार्जन के पश्चात् अपने पाण्डित्य प्रदर्शन या सम्मान प्राप्त करने हेतु यहां आये हो।—डा० दशरथ शर्मा राजा भोज निबन्ध (पंवार वश दर्पण)।

राजा दुर्लभराज के सम्मुख पहुँचे और उन्हे स्मरण दिलाया कि "आपके पूर्वज चायोत्कट वंशीय महाराज वनराज ने 'वनराज विहार' नाम से पार्श्वनाथ मन्दिर की स्थापना करके यह व्यवस्था दे दी थी कि यहाँ केवल चैत्यवासी यतिजन ही ठहर सकते है।" अत इन क्रियाधारियो को नगर से बाहर निकालने का आदेश प्रदान करे। महाराज दुर्लभराज केवल अन्धानुकरण करनेवाले व्यक्ति नही थे, वे गुणी थे, गुणिजनो के प्रति उनके हृदय मे आदरभाव था अत चैत्यवासियो के दुराग्रह को उन्होने उपेक्षा की दृष्टि से देखा। यहाँ भी अपने प्रयत्नो को असफल होते देखकर उन्होने शास्त्रार्थ का प्रस्ताव रखा। इस प्रस्ताव को महाराजा ने उपयुक्त समझा और पुरोहित सोमेश्वर के द्वारा आचार्य वर्धमान से इसकी स्वीकृति चाही। वर्धमान और जिनेश्वर तो यह चाहते ही थे, भला वे ऐसे स्वर्णावसर को कैसे छोड सकते थे। उन्होने स्वीकृति दे दी और महाराजा दुर्लभराज की अध्यक्षता मे पचासरा पार्श्वनाथ मन्दिर मे शास्त्रार्थ होने का निश्चय हुआ।

निश्चित समय पर सूराचार्य के नेतृत्व में ८४ चैत्यवासी आचार्य खूब सज-धज कर वहाँ उपस्थित हुए। ठीक समय पर दुर्लभराज भी वहाँ पधारे। इनकी अध्यक्षता मे शास्त्रार्थ प्रारभ हुआ। एक ओर से जिनेश्वराचार्य और दूसरी ओर से सूराचार्य थे। शास्त्रार्थ सूराचार्य ने प्रारभ किया। उनका कहना था कि 'जिन गृहवास ही मुनियो के लिए समुचित है और वही पर निरपवाद ब्रह्मव्रत का पालन सभव हो सकता है।' 'वसतिवास अपवाद से रहित नही है इसीलिए त्याज्य है।' सूराचार्य ने अनेक युक्तियो के द्वारा अपने पक्ष का समर्थन किया परन्तु जिनेश्वर ने उन सभी युक्तियो का खण्डन बडी योग्यता के साथ करते हुए वसतिमार्ग का प्रतिपादन किया। उन्होने अत्यन्त स्पष्ट और कटु आलोचना करते हुए चैत्यवास के तत्कालीन अनुचित और अपवादपूर्ण वातावरण को मुनि-जीवन के लिए सर्वथा अनुपयुक्त तथा असगत बतलाया। जिनेश्वर की वाक्पटुता, अकाट्य तर्क-शैली तथा प्रकाण्ड पाडित्य से न केवल उनके प्रतिपक्षी ही पराभूत और पराजित हुए अपितु

वहाँ पर बैठे हुए निष्पक्ष विद्वान् तथा गणमान्य लोग भी प्रभावित हुए।[१] इसी के फलस्वरूप राजा दुर्लभराज ने (सं० १०६६-१०७८ के मध्यकाल मे) करडी हट्टी मे वसतिमार्गियो के लिये एक स्थान प्रदान किया और इस प्रकार गुजरात मे वसतिमार्ग का सर्व प्रथम आविर्भाव हुआ।

खरतरगच्छीय परम्परा एव पट्टावलियो के अनुसार जिनेश्वरसूरि की शास्त्रार्थ मे विजय और उनकी उग्र एवं प्रखर चारित्रिक क्रियाशीलता देखकर राजा दुर्लभराज ने इन्हे खरतर-विरुद से सबोधित किया। यही से इस पक्ष का नाम खरतरगच्छ पडा और यह विरुद व्यवहार मे भी प्रयुक्त होने लगा।

वर्धमानसूरिजी रचित निम्नलिखित कृतियाँ प्राप्त होती है —

१. उपदेशपद टीका र० स० १०५५,
२. उपदेशमाला बृहद्वृत्ति
३. उपमितिभवप्रपञ्च कथासमुच्चय
४. वीरपारणकस्तोत्र गाथा ४६,
५. वर्धमानजिनस्तुति गाथा ४ (पापाधाधानि)।

जिनेश्वरसूरि न केवल वाक्चातुरी और शास्त्र-चर्चा के ही आचार्य थे अपितु लेखिनी के भी प्रौढ आचार्य थे। इनकी प्रणीत निम्न रचनाएँ प्राप्त होती है.—

१. प्रमालक्ष्म स्वोपज्ञटीकासहित
२. अष्टकप्रकरणटीका र० सं० १०८०
३. चैत्यवन्दनकप्रकरण र० स० १०९६
४. कथाकोषप्रकरण स्वोपज्ञटीकासह र० स० ११०८,

---

१ चौलुक्यनृपति दुर्लभराज की सभा मे चैत्यवासी पक्ष के समर्थक अग्रणी सूराचार्य जैसे महाविद्वान् और प्रबल सत्ताशील आचार्य के साथ शास्त्रार्थ कर उसमे विजय प्राप्त किया।—मुनि जिन विजय कथा कोष प्रस्तावना, पृ० ४

५ पञ्चलिङ्गीप्रकरण
६ निर्वाणलीलावतीकथा
७ षट्स्थानप्रकरण
८ सर्वतीर्थमहर्षिकुलक
९ वीरचरित्र।

इनके अनुज एव गुरुभ्राता बुद्धिसागरसूरि भी प्रतिभाशाली विद्वान् थे। इनकी एक ही कृति प्राप्त होती है, 'बुद्धिसागर व्याकरण।'

जिनेश्वरसूरि का शिष्य-समुदाय भी विशाल था। आपने अपने स्व-हस्त मे जिनचन्द्रसूरि, अभयदेवसूरि, धनेश्वरसूरि अपरनाम जिनभद्र-सूरि और हरिभद्रसूरि को आचार्यपद तथा धर्मदेवगणि, सुमतिगणि, सहदेवगणि और विमलगणि को उपाध्यायपद प्रदान किया था। ख्याति-प्राप्त ४ आचार्य और तीन उपाध्याय जहाँ शिष्य हो वहाँ मुनिमण्डल का और पौत्रशिष्यो का अत्यधिक सख्या मे होना स्वाभाविक ही है।

जिनचन्द्रसूरि—जिनेश्वरसूरि के पट्ट पर जिनचन्द्रसूरि हुए। इनके सम्बन्ध मे कोई इतिवृत्त प्राप्त नही है। ये बहुश्रुत गीतार्थ थे। इनकी एक मात्र कृति 'संवेग रंगशाला' नामक प्राकृत भाषा मे गुफित कथाग्रथ प्राप्त है जिसकी रचना ११२५ मे हुई है।

अभयदेवसूरि—जिनचन्द्रसूरि के पट्ट पर अभयदेवसूरि हुए। इनका पूर्व नाम अभयकुमार था। ये धारानगरी के निवासी श्रेष्ठी महीधर के पुत्र थे। इनकी माता का नाम धनदेवी था। जिनेश्वरसूरि के कर-कमलो मे ही इन्होने दीक्षा एवं आचार्यपद प्राप्त किया था।

अभयदेवसूरि समग्र जैन-समाज मे नवागी टीकाकार के रूप मे सिद्धान्तशास्त्रो के प्रामाणिक आप्त आचार्य माने जाते हैं। इन्होने स्थानाग आदि नव अंगो पर टीकाओ की रचना की। इन टीकाओ का सशोधन तत्कालीन चैत्यवासी समाज के प्रमुख एव प्रसिद्ध आचार्य द्रोणाचार्य ने किया है। इनकी सर्जित साहित्य-सम्पत्ति आज भी ६२०० श्लोक परिमाण मे प्राप्त होती है। सर्जित साहित्य इस प्रकार है—

१. स्थानागसूत्र-वृत्ति र० सं० ११२०	१५ नवपदप्रकरणभाष्य
२. समवायांगसूत्र-वृत्ति र० सं० ११२०	१६ पंचनिर्ग्रन्थीप्रकरण
३. भगवतीसूत्र-वृत्ति र० सं० ११२८	१७. आगम-अष्टोत्तरी
४. ज्ञातासूत्र-वृत्ति र० स० ११२०	१८. निगोदषट्त्रिशिका
५. उपासकदशासूत्र-वृत्ति	१९. पुद्गलषट्त्रिशिका
६. अन्तकृद्दशासूत्र-वृत्ति	२०. आराधनाकुलक
७. अनुत्तरौपपातिकदशासूत्र-वृत्ति	२१. आलोचनाविधिप्रकरण
८. प्रश्नव्याकरणसूत्र-वृत्ति	२२. स्वधर्मीवात्सल्यकुलक
९. विपाकसूत्र-वृत्ति	२३. जयतिहुअण-स्तोत्र
१०. औपपातिकसूत्र-वृत्ति	२४. वस्तुपार्श्वस्तव
११. प्रज्ञापनातृतीयपदसंग्रहणी	२५. स्तम्भनपार्श्वस्तव
१२. पंचाशकप्रकरणटीका र० स ११२४	२६. पार्श्वविज्ञप्तिका
१३. सप्ततिकाभाष्य	२७. विज्ञप्तिका।
१४. बृहद्वन्दनकभाष्य	

नवाग टीका रचना के अतिरिक्त इनके जीवन की एक और महत्त्वपूर्ण घटना है, वह है सेठी नदी के किनारे खंखरापलाशवन मे जयतिहुअण-स्तोत्र की रचना करते हुए स्तम्भनपार्श्वनाथ की मूर्ति का प्रकटीकरण।

जिनवल्लभसूरि[१]—नवागी टीकाकार अभयदेवसूरि के पट्टधर जिनवल्लभसूरि हुए। जिनवल्लभ संभवत आशिका निवासी थे और कूर्चपुरीय चैत्यवासी आचार्य जिनेश्वर के शिष्य थे। सभवत जिनवल्लभ ने गुरु जिनेश्वराचार्य के पास ही पाणिनीयादि आठो व्याकरण, काव्य, लक्षण-ग्रन्थ, नाटक, छन्द शास्त्र, नाटच-शास्त्र, काम-सूत्र, न्याय तथा दर्शन-शास्त्रो का अध्ययन किया था। जिनेश्वराचार्य ने ही सिद्धान्तो का पारगत बनाने हेतु वाचनार्थ जिनवल्लभ को वाचनाचार्य बनाकर जिनशेखर के साथ आचार्य अभयदेवसूरि के समीप भेजा। अभयदेवसूरि ने भी जिन-

१. देखे, वल्लभभारती।

वल्लभ की विनयशीलता, ज्ञान-पिपासा और योग्यता का अकनकर बडे आत्मीयभाव से जिनवल्लभ को समस्त आगामो की वाचना प्रदान की। अभयदेवसूरि के भक्त एक दैवज्ञ से समस्त ज्योतिष्शास्त्र का भी जिनवल्लभ ने अध्ययन किया।

वाचनानन्तर जब जिनवल्लभ अपने गुरु के पास वापस जाने लगे तो अभयदेवसूरि ने पीठ थपथपाकर बडे प्रेम से कहा कि 'वत्स ! सिद्धान्त के अनुसार जिस प्रकार साधुओ का आचार-व्रत है उसी प्रकार पालन करने का प्रयत्न करना।' अभयदेवाचार्य के वचनो का इन्होने मार्ग मे ही पालन किया और मरुकोट्ट के देवगृह मे विधिवाक्य के श्लोक उत्कीर्ण करवाये। अपने गुरु जिनेश्वर से मिलकर, चैत्यवास त्याग की आज्ञा प्राप्त कर पुन पत्तन लौटे और आचार्य अभयदेव के कर-कमलो से उपसम्पदा ग्रहण कर अभयदेवसूरि के शिष्य बने।

उपसम्पदा ग्रहण करने के पश्चात् जिनवल्लभगणि चित्तौड आये और वहाँ चैत्यवासियो को निरस्तकर पार्श्वनाथ और महावीरविधि-चैत्यो की स्थापना की। नागपुर तथा नरवरपुर मे भी विधिचैत्यो की स्थापना की। आचार्य जिनेश्वर ने जिस क्रान्ति की चिनगारी पाटन मे लगायी थी उसको मेवाड़ और मारवाड आदि देशो मे ज्वालारूप मे फैलाकर चैत्यवास-परम्परा को भस्मीभूत करनेवाले क्रान्तिकारी जिनवल्लभगणि ही है। इनकी समस्यापूर्त्ति-सबधी पाण्डित्य से धारानगरी के नृपति नरवर्मा भी प्रभावित हुए थे और इनके भक्त हो गये।

आचार्य देवभद्रसूरि ने जिनवल्लभगणि को सं० ११६७ आषाढ शुक्ल ६ को चित्तौड नगरी मे वीरविधिचैत्य मे विधि-विधान महोत्सव के साथ आचार्यपद प्रदानकर अभयदेवसूरिका पट्टधर घोषित किया। आचार्यपदानन्तर कुछ मास के ही पश्चात् अर्थात् ११६७ कार्तिक कृष्णा १२ के दिन जिनवल्लभसूरि का स्वर्गवास हो गया।

जिनवल्लभसूरि जहाँ क्रान्तिकारी और प्रबल सुधारक थे वहाँ समग्र

शास्त्रों के निष्णात आचार्य भी थे। इनकी अनेक रचनाओं पर तत्कालीन अन्य गच्छों के प्रमुख एवं प्रभावशाली आचार्यों ने टीकाएँ रचकर इन्हें आप्तपुरुष स्वीकार किया है। इनकी रचित निम्नलिखित कृतियाँ आज भी उपलब्ध हैं:—

१ सूक्ष्मार्थविचारसारोद्धारप्रकरण
२. आगमिकवस्तुविचारसारप्रकरण
३. पिण्डविशुद्धिप्रकरण
४. सर्वजीवशरीरावगाहनास्तव
५. श्रावकव्रतकुलकम्
६. पौषधविधिप्रकरण
७. प्रतिक्रमणसमाचारी
८. द्वादशकुलक
९. धर्मशिक्षाप्रकरण
१०. सघपट्टक
११. प्रश्नोत्तरैकषष्टिशतकाव्य
१२. शृंगारशतक
*चित्रकूटीयवीरचैत्यप्रशास्त
१३. आदिनाथचरित
१४. शान्तिनाथचरित
१५ नेमिनाथचरित
१६. पार्श्वनाथचरित
१७. महावीरचरित
१८ वीरचरित्र
१९. चतुर्विंशतिजिनस्तोत्राणि
*स्वप्नसवृत्तिका
२०. पञ्चकल्याणकस्तव
२१. सर्वजिनपञ्चकल्याणकस्तव
२२. प्रथमजिनस्तव
२३. ऋषभजिनस्तुति
२४. लघु अजितशान्तिस्तव
२५. स्तम्भनपार्श्वजिनस्तव
२६. क्षुद्रोपद्रवहरपार्श्वस्तोत्र
२७. पार्श्वस्तोत्र (चित्रकाव्य)
२८. पार्श्वनाथाष्टक
२९. महावीरविज्ञप्तिका
३०. सर्वज्ञविप्तितिका
३१. नन्दीश्वरचैत्यस्तव
३२. भवारिवारणस्तोत्र
३३. पञ्चकल्याणकस्तोत्र
३४. कल्याणकस्तव
३५. सर्वजिनस्तोत्र
३६-४०. पार्श्वस्तोत्र
४१. सरस्वतीस्तोत्र
४२. नवकारस्तव।

जिनपालोपाध्याय द्वारा चर्चरी टीका में उल्लिखित आगमोद्धार तथा प्रचुरप्रशस्ति आदि ग्रन्थ आज अनुपलब्ध हैं।

युगप्रधान जिनदत्तसूरि[1]—जिनवल्लभसूरि के पट्टधर जिनदत्तसूरि हुए। ये धवलका (धोलका) निवासी हुम्ब ज्ञातीय श्रेष्ठि वाछिग के पुत्र है। इनकी माता का नाम बाहड देवी था। इनका जन्म ११३२ मे हुआ। सं० ११४१ मे नव वर्ष की अवस्था मे धर्मदेवोपाघ्याय के पास दीक्षा ग्रहण की। इनका दीक्षा-समय का नाम सोमचन्द्र था। इनका प्रारम्भिक अध्ययन सर्वदेवगणि के पास हुआ। न्याय-दर्शन का अध्ययन पाटन मे तथा सिद्धान्तो की वाचना हरिसिंहाचार्य के पास मे हुई। सं० ११६९ वैशाख शुक्ला १ के दिन चित्तौड के महावीर-विधिचैत्य मे बड़े महोत्सव के साथ देवभद्राचार्य ने इनको आचार्यपद प्रदान कर जिनवल्लभसूरि का यह पट्टधर घोषित किया। आचार्यपद के समय आपका सोमचन्द्र नाम परिवर्तित कर जिनदत्तसूरि रखा गया।

आचार्य होने के पश्चात् आपने मरुधरदेश की ओर विहार किया। नागोर होकर अजमेर आये। अजमेर के चौहान नृपति अर्णोराज ने आपके समागम का लाभ उठाया और श्रद्धापूर्वक विधिचैत्य-निर्माण के लिये भूमि भेट रूप मे प्रदान की। यहाँ से बागड देश की ओर गये। क्रमश रुद्रपल्ली, विक्रमपुरा, उच्चानगरी; नवहर, चित्रकूट आदि मरुधर के प्रसिद्ध नगरो मे विहार करते हुए जिनेश्वराचार्य एव जिनवल्लभसूरि प्रतिपादित विधिपक्ष का प्रबलवेग एवं प्रखरता से प्रचार किया तथा अनेको विधिचैत्यो का निर्माण करवा कर स्व करकमलो से प्रतिष्ठाएँ करवाई। यही कारण है कि इनकी शास्त्रसम्मत विशुद्ध चारित्रसम्पदा देखकर अनेको चैत्यवासी आचार्यो ने आपके पास उपसम्पदा ग्रहण की। जिनमे से कतिपय के नाम इस प्रकार है :—जयदेवाचार्य, जिनप्रभाचार्य, विमलचन्द्र, जयदत्तमन्त्रवादी, गुणचन्द्रगणि, ब्रह्मचन्द्रगणि, रामचन्द्रगणि, जीवानन्द, । जहाँ चैत्यवासी

१. विशेष परिचय के लिये देखें, मुनि जिनविजयजी सपादित 'खरतर-गच्छबृहद्गुर्वावली' (सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रथाक ४२), तथा अगरचन्द भंवरलाल नाहटा लिखित 'युगप्रधान जिनदत्तसूरि'।

आचार्य भी चैत्यवास-परम्परा का त्याग कर उपसम्पदा ग्रहण करते हों, वहाँ श्रावक समुदाय का लक्षाधिक मात्रा में सुविहित पक्ष का स्वीकार करना स्वाभाविक ही है।

इसके बाद त्रिभुवनगिरि के नृपति कुमारपाल को प्रतिबोध देकर जैन मुनियों के सम्बन्ध में जो प्रतिबन्ध लगाये गए थे, उन्हें निरस्त करवाये।

आपने स्वहस्त से जिनचन्द्र, जीवदेव, जयसिंह, जयचन्द्र को आचार्य पद, जिनशेखर, जीवानन्द को उपाध्याय पद, जिनरक्षित, शीलभद्र, स्थिरचन्द्र, ब्रह्मचन्द्र, विमलचन्द्र, वरदत्त, भुवनचन्द्र, वरनाग, रामचन्द्र, मणिभद्र को वाचनाचार्यपद तथा श्रीमती, जिनमती, पूर्णश्री, जिनश्री, ज्ञानश्री नामक पाँच साध्वियों को महत्तरापद प्रदान किया। इससे स्पष्ट है कि आपका शिष्य-प्रशिष्य समुदाय सहस्राधिक हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

पट्टावलियों के अनुसार अम्बिका देवी द्वारा नागदेव के हथेली में अंकित पद्य पढ़ने से ये 'युगप्रधान' कहलाये।

स० १२११ आषाढ शुक्ला ११ को इनका अजमेर में स्वर्गवास हुआ। जैसे आप धर्म प्रचार तथा उपदेश देने में सिद्धहस्त थे वैसे ही साहित्य-सर्जन करने में भी सिद्धहस्त थे। इनका प्राकृत, संस्कृत तथा अपभ्रंश भाषा पर पूर्ण आधिपत्य था। रचित साहित्य इस प्रकार है :—

१ गणधरसार्द्धशतक	९ महाप्रभावक-स्तोत्र
२ गणधरसप्ततिका	१० चक्रेश्वरीस्तोत्र
३. सर्वाधिष्ठात्रीस्तोत्र	११ योगिनीस्तोत्र
४ गुरुपारतन्त्र्य-स्तोत्र	१२ सर्वजिनस्तुति
५ सिग्घमवहरउ स्तोत्र	१३. वीरस्तुति
६. श्रुतस्तव	१४. संदेहदोलावलीप्रकरण
७. अजितशान्ति-स्तोत्र	१५. उत्सूत्रपदोद्घाटनकुलक
८. पार्श्वनाथमन्त्रगर्भित-स्तोत्र	१६. चैत्यवन्दनकुलक

१७ उपदेशकुलक	२३. पदव्यवस्था
१८. उपदेशधर्मरसायन	२४. शान्तिपर्वविधि
१९ कालस्वरूपकुलक	२५ वाडीकुलक
२० चर्चरी	२६ आरात्रिकवृत्तानि
२१ अवस्थाकुलक	२७. आध्यात्मगीतानि ।
२२ विंशिका	

परम्परागत जनश्रुतियो एवं पट्टावलियो के अनुसार आपके सम्बन्ध मे अनेको चमत्कारी घटनाओ तथा ओसवाल जाति के ५२ गोत्रो की स्थापना के उल्लेख प्राप्त होते है ।

मणिधारी जिनचन्द्रसूरि[१]—युगप्रधान जिनदत्तसूरि के पट्टधर मणिधारी जिनचन्द्रसूरि हुए । इनका जन्म सं० ११९७ भादो शुक्ला अष्टमी को हुआ था । विक्रमपुर निवासी साह रासल के पुत्र है । इनकी माता का नाम देल्हणदेवी है । सं० १२०३ फाल्गुन शुक्ला ९ को इन्होने दीक्षाग्रहण की । स० १२०५ वैशाख शुक्ला ६ को विक्रमपुर में जिनदत्तसूरि ने अपने करकमलो से इनको आचार्यपद प्रदान कर जिनचन्द्रसूरि नाम रखा । नव वर्ष जैसी लघु अवस्था में युगप्रधान जिनदत्तसूरि जैसे आचार्य की दृष्टि मे परीक्षोत्तीर्ण होकर आचार्य बनना इनके विशिष्ट व्यक्तित्व का द्योतक हैं । स० १२११ आषाढ शुक्ला ११ को जिनदत्तसूरि का स्वर्गवास होनेपर इन्होने गच्छनामक पद प्राप्त किया ।

सं० १२२२ मे रुद्रपल्ली नगर मे पद्मचन्द्राचार्य के साथ आपका 'न्यायकन्दली' पठन के प्रसंग को लेकर 'तम' द्रव्य है या नही है' इस पर चर्चा हुई । इस चर्चा ने शास्त्रार्थ का रूप ले लिया । अन्त मे रुद्रपल्ली की

---

१ विशेष परिचय के लिए देखें, मुनि जिनविजय-संपादित 'खरतर-गच्छबृहद्गुर्वावली' तथा अगरचंद भवरलाल नाहटा द्वारा लिखित 'मणिधारी जिनचन्द्रसूरि' ।

राजसभा में शास्त्रार्थ हुआ और पद्मचन्द्राचार्य पराजित हुए। आपको राजकीय सम्मान के साथ विजयपत्र मिला।

तत्कालीन दिल्ली के महाराजा मदनपाल के अत्याग्रह से अनिच्छा होते हुए भी सं० १२२३ में आपने दिल्ली पधार कर चातुर्मास किया। इसी चातुर्मास में भादो कृष्णा १४ को आप स्वर्गवासी हुए।

आपके मालप्रदेश में मणि होने से आप मणिधारी के नाम से प्रख्यात हुए। मन्त्रीदलीय (महत्तियाण, महता) जाति को प्रतिबोध देकर जैन बनाने वाले आप ही थे।

आपकी प्रणीत केवल 'व्यवस्थाशिक्षाकुलक नामक' एक ही कृति प्राप्त है।

जिनपतिसूरि—मणिधारी जिनचन्द्रसूरि के पट्टधर षट्त्रिंशद्वाद-विजेता जिनपतिसूरि का जन्म वि० सं० १२१० विक्रमपुर में माल्हू गोत्रीय यशोवर्धन की धर्मपत्नी सूहवदेवी की रत्नकुक्षि से हुआ था। सं० १२१७ फाल्गुन शुक्ला १० को जिनचन्द्रसूरि के कर-कमलो मे दीक्षा ग्रहण की। दीक्षानाम नरपति था। स० १२२३ कार्तिक शुक्ला १३ को बडे महोत्सव के साथ युगप्रधान जिनदत्तसूरि के पादोपजीवी जयदेवाचार्य ने इनको आचार्यपद प्रदानकर जिनचन्द्रसूरि के पट्टधर गणनायक घोषित कर, आचार्य अवस्था मे जिनपतिसूरि नाम प्रदान किया। यह महोत्सव जिनपति-सूरि के चाचा मानदेव ने किया था।

स० १२२८ मे विहार करके आशिका पधारे। आशिका के नृपति भीमसिंह भी प्रवेश महोत्सव मे सम्मिलित हुए। आशिका स्थित महा-प्रामाणिक दिगम्बर विद्वान् को इन्होने शास्त्रचर्चा मे पराजित किया था।

स० १२३९ कार्तिक शुक्ला सप्तमी के दिन अजमेर में अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान की अध्यक्षता में फलवर्द्धिका नगरीनिवासी उपकेशगच्छीय पद्मप्रभ के साथ आपका शास्त्रार्थ हुआ। इस समय राज्य-सभा में महामंत्रि मण्डलेश्वर कैमास तथा वागीश्वर, जनार्दन गौड़, विद्यापति

आदि प्रमुख विद्वान् उपस्थित थे। प्रतिवादी पद्मप्रभ मूर्ख, अभिमानी एवं अनर्गल प्रलापी होने से शास्त्रार्थ मे शीघ्र ही पराजित हो गया। निजपतिसूरि की प्रतिमा एव सर्वशास्त्रो मे असाधारण पाण्डित्य को देखकर पृथ्वीराज चौहान बहुत प्रसन्न हुए और विजयपत्र हाथी के ओहदे पर रखकर बडे आडम्बर के साथ स्वय उपाश्रय मे आकर आचार्यश्री को प्रदान किया।[१]

स० १२४४ मे उज्जयन्त-शत्रुञ्जयादि तीर्थों की यात्रार्थ संघ सहित प्रयाण करते हुए आचार्यश्री चन्द्रावती पधारे। यहाँ पर पूर्णिमापक्षीय प्रामाणिक आचार्यश्री अकलङ्कदेवसूरि पाँच आचार्य एवं १५ साधुओ के साथ संघ दर्शनार्थ आये। आचार्यश्री के साथ अकलकदेवसूरि की 'जिनपति' नाम एव 'सघ के साथ साधु-साध्वियो को जाना चाहिये या नही' इन प्रश्नो पर शास्त्र-चर्चा हुई और आचार्य अकलक इस चर्चा मे निरुत्तर हुए।

इसी प्रकार कासह्रद मे पौर्णमासिक तिलकप्रभसूरि के साथ 'संघपति' तथा 'वाक्यशुद्धि' पर चर्चा हुई जिसमे जिनपतिसूरि ने विजय प्राप्त की।

उज्जयन्त-शत्रुञ्जयादि तीर्थों की यात्रा करके वापस लौटते हुए आशापल्ली पधारे। यहाँ वादिदेवाचार्य परम्परीय प्रद्युम्नाचार्य के साथ 'आयतन-अनायतन' पर शास्त्रार्थ हुआ जिसमें प्रद्युम्नाचार्य पराजय को प्राप्त हुए। इस शास्त्रार्थ का अध्ययन करने के लिये प्रद्युम्नाचार्य का 'वादस्थल' तथा जिनपतिसूरि का 'प्रबोधोदयवादस्थल' द्रष्टव्य है।

आशापल्ली से आचार्यश्री अणहिलपुर पाटन पधारे। यहाँ पर स्वगोत्रीय ४० आचार्यों को स्वमण्डली मे समुद्देश करवाकर वस्त्रदानपूर्वक सम्मानित किया।

---

१ इस शास्त्रार्थ का प्रामाणिक सजीव वर्णन के लिये देखें, जिनपालोपाध्याय-रचित खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली, पृ० २५३४ तक।

सं० १२५१ मे लवणखेटक मे राणक केल्हण के आग्रह से दक्षिणावर्त आरात्रिकावतरणोत्सव' बडी धूमधाम से मनाया।

स० १२७३ मे बृहद्वार नगरकोटीय राजाधिराज पृथ्वीचन्द्र की सभा में काश्मीरी प० मनोदानन्द के साथ आचार्यश्री की आज्ञा से जिनपालोपाध्याय ने किया। शास्त्रार्थ का विषय था, 'जैन षड् दर्शनबाह्य हैं।' इस शास्त्रार्थ मे पं० मनोदानन्द बुरी तरह पराजय को प्राप्त हुए। राजा पृथ्वीचन्द्र ने जयपत्र जिनपालोपाध्याय को प्रदान किया।

स० १२७७ आषाढ शुक्ला १० को आचार्यश्री ने गच्छ सुरक्षा की व्यवस्था कर वीरप्रभगणि को गणनायक बनाने का सकेत कर अनशन पूर्वक स्वर्ग को ओर प्रयाण किया।

आचार्य जिनपतिसूरिकृत प्रतिष्ठाएँ, ध्वजदण्डस्थापन, पदस्थापन महोत्सव, शताधिक दीक्षा महोत्सव आदि धर्मकृत्यो का तथा आचार्यश्री के व्यक्तित्व का अध्ययन एव शिष्य-प्रशिष्यो की विशिष्ट प्रतिमा का अंकन करने के लिये द्रष्टव्य है जिनपालोपाध्याय कृत 'खरतरगच्छबृहद् गुर्वावली पृ० २३ से ४८।

जिनपतिसूरि-प्रणीत निम्न कृतियाँ प्राप्त है —

१ सघपट्टकबृहद्वृत्ति	१० अजितशान्तिस्तुति
२ पञ्चलिङ्गीप्रकरणटीका	११ नेमिस्तोत्र
३ प्रबोधोदयवादस्थल	१२ चिन्तामणिपार्श्वनाथ-स्तोत्र
४ खरतरगच्छसमाचारी	१३ ,, ,,
५ तीर्थमाला	१४ पार्श्वस्तव
६ पंचकल्याणक-स्तोत्र	१५. स्तम्भतीर्थ-अजितस्तव
७ चतुर्विंशतिजिनस्तुति	१६. महावीरस्तव
८ विरोधालङ्कारऋषभ-स्तुति	१७. महावीर-स्तोत्र
९ अजितशान्तिस्तोत्र	१८ महावीरस्तुति।

जिनेश्वरसूरि—जिनपतिसूरि के पट्टधर जिनेश्वरसूरि हुए। इनके जन्म-संवत् का पट्टावलियो मे उल्लेख प्राप्त नही है। इनके पिता का नाम नेमिचन्द्र भाण्डागारिक था। इनकी दीक्षा सं० १२५८ चैत्रवदी दो को जिनपतिसूरि के करकमलो से हुई, दीक्षा नाम वीरप्रभा रखा गया और १२६० आषाठ कृष्णा ६ को उपस्थापना (बृहद्दीक्षा) हुई। सं० १२७३ मे बृहद्वारा मे नगरकोटीय राजाधिराज पृथ्वीचन्द्र की राजसभा मे काश्मीरी पंडित मनोदानन्द के साथ जिनपालोपाध्याय का जो शास्त्रार्थ हुआ था उसमे आप भी सम्मिलित थे। इस प्रसंग मे वीरप्रभगणि का उल्लेख होने से यह निश्चित है कि सं० १२७३ के पूर्व ही इनको गणिपद प्राप्त हो गया था। सं० १२७७ माघ शुक्ला ६ को जावालिपुर (जालोर) के महावीरचैत्य मे बडे महोत्सव के साथ सर्वदेवसूरि नामकरण किया गया।

स० १२८९ मे स्तम्भतीर्थ (खभात) मे यमदण्ड नामक दिगम्बर के साथ पण्डितगोष्ठी हुई। यही पर महामात्य श्री वस्तुपाल ने सपरिवार आकर आचार्यश्री की अर्चना की। सं० १३१९ मे आपके राज्यकाल में उज्जैन मे अभयतिलकोपाध्याय ने तपागच्छीय पं० विद्यानन्द को शास्त्रार्थ मे पराजित कर जयपत्र प्राप्त किया। शास्त्रार्थ का विषय था 'प्रासुक शीतल जल यति को ग्राह्य है या नही।'

स० १३२६ मे सघपति अभयचन्द्र ने पालनपुर से आपकी अध्यक्षता मे शत्रुंजय-उज्जयन्त आदि तीर्थों की यात्रार्थ सघ निकाला। आपके शासन मे प्रतिष्ठाओ एवं दीक्षाओ की धूम लगी हुई थी। अनेक प्रकार से शासन-प्रभावना करते हुए स० १३३१ आश्विन कृष्णा ५ को आप स्वर्ग की ओर प्रयाण कर गये।

इनके द्वारा निर्मित-साहित्य निम्नलिखित प्राप्त है —

१ श्रावकधर्मविधिप्रकरण
२ आत्मानुशासन
३ द्वादशभावनाकुलक
४ सर्वतीर्थमहर्षिकुलक
५. चन्द्रप्रभचरित्र
६ यात्रास्तव

७ रुचितरुचिदण्डकस्तुति
८ चतुर्विंशतिजिनस्तोत्र
९ ,, ,,
१० वासुपूज्यस्तोत्र-यमकमय
११ पार्श्वनाथस्तोत्र
१२ ,, ,,
१३ बावरी
१४ वीरजन्माभिषेक
१५ पालनपुरवासुपूज्यबोली
१६. वीसलपुरवासुपूज्यबोली
१७ शान्तिनाथबोली ।

आचार्य जिनेश्वरसूरि के राज्यकाल मे गच्छ में शाखाभेद हुआ जो लघु खरतरशाखा के नाम से प्रसिद्ध है। इस शाखा के प्रथम आचार्य जिनसिंहसूरि हुए जिनका परिचय एवं शाखाभेद का कारण आगे के परिच्छेदो मे लिखा गया है।

•

जन्म-दीक्षा और आचार्यपद

जन्म

प्राकृत भाषा में रचित वृद्धाचार्य प्रबन्धावलि[1] के अनुसार मोहिलवाडी[2] नगरी मे श्रीमालवंशीय ताम्बी गोत्रीय महर्धिक श्रावक महाधर[3]

१ मुनि जिनविजयजी द्वारा सम्पादित खरतरगच्छालंकार युगप्रधानाचार्य गुर्वावली में प्र०।

२ नाहटाजी लिखित सं० चरित में सोहिलवाडी, शुभशीलगणि-रचित पंचशतीकथाप्रबन्ध २९५ मे गलितकोटकपुर खरतरपट्टावली न० ३ के अनुसार झूझणू और उ० जयचन्द्रजी भंडारस्थ पट्टावली मे बागड़ देश के बडौदा ग्राम।

३. पंचशती, जिनदत्त, विजयधर्मसूरि ज्ञानभण्डार आगरा की एक पत्रात्मक अपूर्णपट्टावली के अनुसार दस भाई (दशभ्रातरः) थे।

रहते थे। उनके पुत्र का नाम रत्नपाल था। श्रेष्ठि रत्नपाल की धर्मपत्नी क नाम सेतलदेवी था[१]। इनके कई[२] पुत्र थे जिनमें आप सबसे छोटे थे और आपका नाम सुभटपाल था। एक[३] पट्टावली के आधार पर चरणों की एक अंगुलि कम थी इसलिये चलते समय ऐसा आभास होता था कि किंचित् लगडे हो। सात[४]-आठ वर्ष की अवस्था तक आप माता-पिता के सानिध्य मे रहे। पश्चात् आचार्य जिनसिहसूरि के संपर्क मे आये जिसका कारण निम्न था —

आचार्य जिनसिंहसूरि

खरतरगच्छ[५] अपरनाम सुविहित गण के अधिनायक षट्त्रिशद् वाद-विजेता युगप्रवरागम श्रीजिनपतिसूरि[६] के पट्टधर द्वितीय आचार्य जिनेश्वर-सूरि थे जिनका शासनकाल स० १२७८ से १३३१ तक था। एक समय आचार्य जिनेश्वर पल्हूपुर की एक औषधशाला मे विराजमान थे। उस समय अचानक ही आचार्यश्री का दण्ड तड-तड शब्द करता हुआ टूट गया। आचार्यश्री ने तड-तड शब्द सुनकर शिष्यो से पूछा कि यह शब्द कहाँ हुआ? शिष्यो ने कहा—भगवन् ! आपके हस्त दण्ड के दो टुकडे हो गए। उसी समय आचार्यश्री ने इस आकस्मिक प्रसंग के फल का चिन्तन-विचार किया

---

१ एक प्राचीन पद्य मे भी :—

रमणपाल णिम्मल विसाल कुलकमलदिवायर।
खेतलएवि वरकुक्खिसर रायहस सुदर चरिय।

२ पच० सातपुत्र, स० पट्टावली ३० पाचपुत्र मे तृतीय नबर वि० धर्म० दश भाइयो मे से एक भाई के पुत्र (तत्र एकस्य लघु)।

३ विजयधर्म० पट्टावली।

४ पच भूमिगृह मे आपका लालन-पालन हुआ था (भूमिगृहे वर्धमान)।

५ खरतरगच्छ की उत्पत्ति के सम्बन्ध में देखें लेखककृत 'वल्लभभारती'।

६ आचार्य जिनपतिसूरि और जिनेश्वरसूरि का जीवन चरित देखें, लेखककृत 'खरतरगच्छ का इतिहास', प्रथम भाग।

और हृदय में निश्चित किया कि 'मेरे पश्चात् इस विशाल खरतरसंघ मे विभेद पड जायगा' तो क्यो नही मैं अपने हाथो से ही शाखाभेद कर दूँ।

इसी अवसर पर (संभवतः दिल्ली प्रदेशीय) श्रीमालसंघ ने मिलकर विचार किया कि अपने देश मे कोई गुरु-धर्माचार्य नही आते है तो क्यो नही गच्छनायक से निवेदन कर अपने धर्माचार्य को इस प्रदेश मे लावें। ऐसा विचार कर श्रीसंघ के प्रमुख-प्रमुख श्रेष्ठि आचार्य जिनेश्वर के पास आये और विधिपूर्वक वन्दन कर प्रार्थना की कि भगवन् ! हमारे देश मे कोई भी गुरु नही आते है तो आपही श्रीमुख से फरमाइये कि हम क्या करे। गुरु के बिना धर्म साधन नही हो सकता। स्वामिन् ! आप जानते है कि सुयोग्य चालक (सारथी) के बिना बैल कभी भी सीधे मार्ग पर नही चलते है। अत: हमें धर्मसारथी शीघ्र ही प्रदान कीजिये।

श्रीमालसंघ की प्रार्थना को हृदयंगम और पूर्वनिमित्त फल का विचार करके आचार्य जिनेश्वर ने लाडनू निवासी[1] श्रीमालवंशोत्पन्न जिनसिह गणि[2] को स० १२८० पल्हूपुर[3] मे आचार्य बनाकर जिनसिंहसूरि नामकरण किया और सूरिमन्त्र सहित पद्मावती मन्त्र साधना सहित प्रदान किया

१. प्राकृतप्रबन्ध मे "लाडणुवाउत्तो" प्रयोग किया है। इस पद का क्या अर्थ है ? विद्वद्गण विचार करे।

२ जिनसिंहगणि का जन्म कब हुआ ? उनके माता-पिता का क्या नाम था ? उन्होने कब दीक्षा ग्रहण की ? कब गणि बने ? आदि इतिवृत्त प्राप्त नही है।

३ जिनपालोपाध्याय लि गुर्वावली के अनुसार सं १२८० मे आचार्य जिनेश्वर श्रीमालनगर मे विराजते थे। और इस शाखाभेद तथा जिनसिंहगणि आचार्यपदप्राप्ति आदि का कोई उल्लेख नही है। अतः यह स्थल विचारणीय है। क्योकि जिनपालोपाध्याय ने गणनायक के जीवन मे घटित प्रत्येक घटना का आलेखन किया है, तो क्या यह घटना आलेख्य नही थी।

और आदेश दिया कि 'यह श्रीमालसंघ तुम्हे सौपता हूँ। संघ सहित उस प्रदेश मे जाओ और धर्मपताका फहराओ।' इस आदेश को प्राप्त कर जिनसिंहसूरि श्रीमालसघ सहित उस प्रदेश मे आये।

इस प्रकार यह जिनसिंहसूरि से 'लघु खरतरशाखा' का उद्भव हुआ। आचार्य जिनेश्वरसूरि ने सं० १३३१ मे ओशवंशीय जिनप्रबोधसूरि को अपने पद पर स्थापित किया, जो कि मूलगच्छा परम्परा मे सर्वमान्य थे।

पद्मावती आराधना

एक समय आचार्य जिनचन्द्रसूरि ढिल्ली (दिल्ली) आये। धर्मोपदेश के समय आचार्य ने कहा कि 'मोक्ष का साधन होने के कारण नवीन जिनप्रासादो का निर्माण करना चाहिये।' उपदेश श्रवण कर उपासक वर्ग ने विवेचन किया कि--नूतन प्रासादो के निर्माण का फल क्या ? क्योकि मुसलमान लोग न केवल जैनो के अपितु हिन्दुओ के भी प्राचीनतम तीर्थो, मंदिरो, प्रतिमाओ का नाश करते है और नष्ट करके उत्सव भी मनाते है। उनके इस अधार्मिक कार्य को रोकने की किसी मे शक्ति नही है। अब हम प्राचीन-ऐतिहासिक स्थलो का भी रक्षण नही कर सकते तो नूतन निर्माण का क्या फल है ? यदि आप मे रक्षण की शक्ति है तो पहिले प्राचीनो का रक्षण कीजिये ?

उपासक वर्ग के इस आह्वान को सुनकर आचार्य जिनसिह ने देवाराधन का निश्चय किया और कहा कि—मैं छ मास पर्यन्त पद्मावती का आराधन कर उसे प्रत्यक्ष करूँगा और श्रीसघ के कष्ट का निवारण करूँगा। किन्तु आराधनविधि के अनुसार यह अपेक्षित है कि पद्मिनी स्त्री द्वारा परोसा हुआ भोजन किया जाय और पद्मिनी दिन-रात मेरे समीप रहे। अर्थात् पद्मिनी लक्षणायुक्त नारी के निकटवर्ती रहने पर कठोर मानसिक ब्रह्मचर्य का पालन और एकनिष्ठ ध्यान से पद्मावती प्रत्यक्ष होती है।' उपासक वर्ग ने साधना-विधि के अनुसार समग्र साधन उपलब्ध कर दिये।

आचार्य जिनसिंह ने छः मास पर्यन्त एकनिष्ठ होकर प्रभावती देवी की उपासना की। आचार्य की दृढभक्ति से पद्मावती प्रत्यक्ष हुई। देवी को प्रत्यक्ष देखकर भी आचार्य बोले नही। ऐसी अवस्था में पद्मावती ने कहा—

भगवन्! आप बोलते क्यो नही? विलंब से आने का कारण है। आपकी आराधना का मूलभूत कारण समझकर मैं प्रभु के पास गई थी और उनसे पूछकर आई हूँ किन्तु प्रभु द्वारा प्रदत्त प्रत्युत्तर कहने मे असमर्थ हूँ। मुझे क्षमा करिये।

आचार्य प्रभु द्वारा प्रदत्त क्या उत्तर है? कहो.

देवी (पराधीन होकर) आपकी आयु थोडी है।

आचार्य . अब मेरी आयु कितनी अवशेष है।

देवी (निश्वासपूर्वक) केवल छ मास।

आचार्य देवि! यह ठीक है कि मेरी आयु बढ नही सकती। किन्तु जिस प्रसग को लेकर मैंने यह आराधना की है, सफल होनी चाहिये, निष्फल नही।

देवी अवश्य, आपकी आराधना अवश्य सफल होगी।

आचार्य कैसे?

देवी . आपके शिष्य को मैं प्रत्यक्ष रहूँगी और उसके द्वारा महती शासनसेवा कराऊँगी।*

आचार्य ऐसा कौन-सा भाग्यशाली है जिसको तुम प्रत्यक्ष सहायता करोगी।

देवी आपके गच्छ मे कोई योग्य शिष्य नजर मे नही आ रहा है।

आचार्य . जब गच्छ मे कोई योग्य नही है तो मेरे पट्ट योग्य कोई शिष्य दीजिये।

देवी : मोहिलवाणी निवासी रत्नपाल का पुत्र सुभटपाल आपके पट्ट के योग्य हैं, जिसकी अवस्था अभी सात-आठ वर्ष की है।

आचार्य . देवि ! वह तो अभी निरा-बालक है उसके द्वारा सेवा तो अनागत की कल्पना है—आवश्यकता है तात्कालिक सेवा की।

देवि अनागत की कल्पना होने पर भी निकट भविष्य मे ही वह शासन की महती सेवा करेगा । अत आप उसे प्रतिबोधित कर शीघ्र ही पट्ट शिष्य बनाइये । इतना कहकर पद्मावती देवी अन्तर्धान हो गईं ।[1]

सुभटपाल की दीक्षा और आचार्यपद

पद्मावती देवी के कथनानुसार आचार्य जिनसिहसूरि शीघ्र ही विहार कर मोहिलवाडी आये । उपासक वर्ग ने बडे उत्सव के साथ नगर-प्रवेश करवाया । एक समय आचार्यश्री महाधर के निवास-स्थान पर गये । हर्षोल्लासित हृदय से श्रेष्ठि महाधर ने विधिपूर्वक वन्दन कर कहा—

भगवन् ! मेरे घर पर आकर आपने मुझ पर महा उपकार किया है, इससे मैं कृतकृत्य हुआ हूँ । अब कृपा करके पधारने का कारण कहिये ?

आचार्यश्री महानुभाव ! तुम्हारे घर मैं शिष्य के निमित्त आया हूँ । आप अपना एक पुत्र मुझे प्रदान करिये ।

महाधर जैसी आज्ञा, और सुभटपाल को छोडकर अन्य पुत्रो को वस्त्राभूषणो मे सुसज्जित कर आचार्यश्री के सन्मुख लाया और कहा—पूज्यवर ! इन पुत्रो मे मे जो आपको प्रिय हो उमे ग्रहण कीजिये ।

आचार्य सात-आठ वर्षीय लघु पुत्र को न देखकर कहा–श्रेष्ठि ! दीर्घायुपी ये पुत्र तुम्हारे कुल की शोभा बढावे । परन्तु मुझे सुभटपाल चाहिय ।

श्रेष्ठि महाधर को अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि आचार्यश्री लघु सुभटपाल को ही क्यो चाहते है ? सुभट तो सबके हृदय का हार है, बच्चा है, उसे कैसे दूँ ।

---

१. शुभशील पत्र के आधार पर ।

श्रेष्ठि महाघर की विचारशील मुद्रा को देखकर आचार्य जिनसिंह ने पद्मावती देवी का आदेश सुनाया और कहा कि आपके इसी पुत्र के द्वारा निकट भविष्य मे शासन की महाप्रभावना होगी, यह ज्योतिर्धर शासन-प्रभावक आचार्य होगा।

'शासनप्रभावक होगा' यह सुनकर महाधर ने हर्षाभिभूत हृदय से श्रद्धापूर्वक सुभटपाल को आचार्यश्री के सानिध्य मे समर्पित किया।

स० १३२६ मे आचार्य जिनसिंह ने सुभटपाल को महामहोत्सव के साथ दीक्षा प्रदान की। शिक्षा-दीक्षा-शास्त्राभ्यास और पद्मावती की साधना करते हुए सुभटपाल को गीतार्थ होने पर स० १३४१ मे किढिवाणा नगर मे स्वहस्त से आचार्यगणनायक पद प्रदान कर जिनप्रभसूरि नाम रखा।

जन्म-दीक्षा-आचार्यपद-सम्वत्

प्राकृत वृद्धाचार्यप्रबन्धावली के अनुसार सुभटपाल की दीक्षा सं० १३२६ मे हुई है। उक्त प्रबन्धावली एवं अन्य पट्टावलियो के अनुसार सुभटपाल की दीक्षा के समय आयु बाल्यावस्था या ७-८ वर्ष की है। अत सुभटपाल की उस समय आयु कम से कम ८ वर्ष की मानी जावे तो आ० जिनप्रभ का जन्म-समय वि स १४१८ के आस-पास स्वीकार किया जा सकता है।

पद्मावती-आराधना के प्रसंग पर देवी ने आचार्य जिनसिहसूरि की ६ मास आयु शेष कही है, व दीक्षा १३२६ और आचार्यपद १३४७ मे स्वहस्त से प्रदान करने का कहा है, जो युक्तियुक्त प्रतीत नही होता। सन्दर्भ को देखते हुए 'छ मास आयु शेष' वाला वाक्य परम्परागत किम्वदन्तीमात्र प्रतीत होता है। सत्य नहीं। अत आचार्य जिनप्रभ का दीक्षा-समय १३२६ और आचार्यपद स० १३४१ ही उपयुक्त प्रतीत होता है। आ० जिनसिंह-सूरि का स्वर्गवास भी १३४१ के बाद ही सम्भव है।

सोमधर्मगणि ने सं० १५०३ मे रचित 'उपदेशसप्ततिका', पृ० ४८ पर लिखा है—

दन्तविश्वमिते वर्षे (१३३२) श्री जिनप्रभसूरयः ।
अभूवन् भूभृता मान्याः प्राप्तपद्मावतीवराः ॥

अर्थात् वि० स० १३३२ मे, पद्मावतीवरप्राप्त एवं राजाओ के मान्य श्री जिनप्रभसूरि हुए ।

इसमे सोमधर्मगणि ने १३३२ किस आधार से दिया है ? विचारणीय है। क्या यह सम्वत् जन्म का सूचक है अथवा दीक्षा सम्वत् का सूचक है या आचार्यपद प्राप्ति का विचार करने पर दीक्षा एवं आचार्यपद-सम्वत् 'प्राकृतवृद्धाचार्यप्रबन्धावली' मे प्रदत्त सम्वत् ही उपयुक्त प्रतीत होते है। स० १३३२ की कोई संगति नही बैठती ।

दीक्षा-नाम

अष्टभाषाम आदिजिनस्तोत्र 'निरवधिरुचिर ज्ञानमय' पद्य ४० श्री जिनप्रभसूरि की कृति मानी जाती है। इस स्तोत्र के पद्य ४० वे मे चक्र-बन्धकाव्य मे कर्त्ता ने अपना नाम 'शुभतिलक' दिया है—

नन्दाप्तोरुविशुद्धयोगरसभोन्मीलत्प्रतोषान्वितम्,
शास्तं सौष्ठवभग्नमोहरचनं त्वं क जहस्तच्छविः ।
रुच्या भास्करतिग्मसिद्धिरमणो सक्लृप्तभावः परम्,
दन्ताज्ञानरमा शमास्तरुप मे तन्या. सुविद्या चिरम् ॥ ४० ॥

वि० सं० १५८३ की लिखित प्रति की अवचूरि मे अवचूरिकार ने लिखा है—

'शुभतिलक' इति प्राक्तन नाम । श्री जिनप्रभसूरि-विरचितभाषाष्टक-संयुतस्तवावचूरि. ।'

अर्थात् 'शुभतिलक' यह नाम जिनप्रभ की दीक्षावस्था का है ।

श्री अगरचन्दजी नाहटा के संग्रह की प्रतिलिपि में, 'गायत्रीविवरण' की प्रान्त-प्रशस्ति में लिखा है—

'चक्रे श्रीशुभतिलकोपाध्यायैः स्वमतिशिल्पकल्पात् ।
व्याख्यानं गायत्र्या क्रीडामात्रोपयोगसिद्धम् ॥
इति श्रीजिनप्रभसूरिविरचितं गायत्रीविवरणं समाप्तम् ।''

इन दो आधारों से यह माना जा सकता है कि जिनप्रभसूरि का दीक्षा-नाम शुभतिलक ही था। जिनप्रभ उपाध्याय पदधारी भी बने और सं० १३४१ मे आचार्य बने फिर नाम परिवर्तन होने पर श्रीजिनप्रभसूरि कहलाये।

अध्ययन और अध्यापन

प्राप्त सामग्री के आधार पर जिनप्रभ के सम्बन्ध मे कोई उल्लेख प्राप्त नहीं है कि जिनप्रभ ने किन-किन के पास अध्ययन किया और किन-किन ग्रन्थो का निर्माण किया। हाँ, आचार्य जिनसिंह का जिनप्रभ की दीक्षा के ६ मास पश्चात् स्वर्गारोहण सत्य है और जिनसिंह से लघु खरतरशाखा का विहार-स्थल दिल्ली का निकटवर्ती प्रदेश होने से एवं वृद्ध-खरतर-शाखा के आचार्यों के साथ इस शाखा के सम्पर्क का उल्लेख न होने से दो तथ्य सामने आते है। प्रथम-पद्मावतीप्रत्यक्ष और दूसरा लघु शाखीय गीतार्थों द्वारा शिक्षा-ग्रहण। इसमे तो तनिक भी सन्देह का अवकाश नही है कि पद्मावती देवी आपको प्रत्यक्ष थी। गुरु जिनसिंह की आराधना का पूर्ण फल जिनप्रभ को प्राप्त हुआ जो आगे के परिच्छेदो से स्पष्ट है। किन्तु क्या विद्वत्प्रतिभा का सारा श्रेय भी पद्मावती को ही है? 'अनक्षर भी असाधारण विद्वान् हो सकता है?' इसमे सन्देह ही है, परन्तु यह समीचीन हो सकता है कि स्वशाखीय गीतार्थ-विद्वानो से शिक्षा-अध्ययन विधिवत् किया हो और उसके विकास मे पद्मावती का सान्निध्य हो। यदि ६ मास आयु का वर्णन कल्पना मात्र है तो, स्पष्ट है कि इनका सारा अध्ययन अपने गुरु श्री जिनसिंहसूरि के सान्निध्य मे ही हुआ है।

यह निश्चित है कि व्याकरण, कोश, साहित्य, लक्षण, छन्द, न्याय, षड्दर्शन, मंत्र-तंत्र साहित्य, कथा और स्वदर्शन-शास्त्रों के वे पूर्ण पारगत थे। जैसा कि आगे के परिच्छेदों मे स्पष्ट है। यदि विधिवत् अध्ययन न किया होता तो यह सम्भव नही था कि दूसरे साधुओ को पढाते और उनके रचित ग्रन्थो का संशोधन करते ? क्योकि अध्ययन करने और कराने मे महदंतर है। जब तक स्वयं का किसी भी विषय पर पूर्णाधिपत्य न हो तो अध्ययन कराना सहज नही है। अत इन्होने विधिवत् अध्ययन अवश्य किया है।

आचार्य जिनप्रभ शिक्षा-प्रसार के प्रेमी थे। शिक्षा-प्रसार के सन्मुख उनके लिये गच्छ या सम्प्रदाय, हिन्दू या अहिन्दू का भेद नही था। यही कारण है कि स्वयं खरतर-गच्छ के अग्रणी होते हुये भी अन्य गच्छों के कई आचार्यो-साधुओ को आपने विद्यादान दिया था और उनके रचित-ग्रन्थो के संशोधक और सहायक भी थे, तो कइयो को आचार्य-पद भी प्रदान किया था, जैसा कि तत्तद् आचार्य रचित ग्रन्थो मे स्पष्ट है—

१ राजशेखरसूरि—हर्षपुरगच्छीय मलधारी आचार्य राजशेखर[1] ने न्याय का प्रसिद्ध और उत्कृष्ट ग्रथ श्रीधरकृत न्यायकदली का अध्ययन आचार्य जिनप्रभ से किया और न्यायकंदली पर पंजिका नाम की टीका रची —

---

१ हर्षपुरगच्छीय मलधारी विरुदधारी अभयदेवसूरि सतानीय नरेन्द्रप्रभसूरि, पद्मदेवसूरि श्रीतिलकसूरि के शिष्य राजशेखरसूरि उस समय के नामाकित विद्वानो मे से थे। आपके रचित निम्नग्रन्थ प्राप्त है—

१ प्रबन्धकोष (चतुर्विंशतिप्रबन्ध) र० सं० १४०५ ज्ये० शु० ७ मुहम्मदतुगलक से सम्मानित जगत्सिह के पुत्र महणसिह द्वारा निर्मापित वसति, दिल्ली।

२ प्राकृतद्वयाश्रयवृत्ति स० १३८७, ३ स्याद्वादकलिका, ४ रत्नावतारिका पंजिका, ५ न्यायकदली पंजिका।

श्रीमज्जिनप्रभविभोरधिगत्य न्यायकन्दलीं कञ्चित् ।
तस्या विवृतिलवमहं, करवै स्वपरोपकाराय ॥ ३ ॥

२ सङ्घतिलकसूरि—रुद्रपल्लीयगच्छीय श्रीगुणशेखरसूरि के शिष्य आचार्य संघतिलक[२] ने आचार्य जिनप्रभ के निकट रहकर विद्याभ्यास किया था और आपको योग्य समझ कर आचार्य जिनप्रभ ने आचार्यपद पर अभिषिक्त किया था—

ढिल्ल्यां साहिमहम्मदं शककुलक्ष्मापालचूडामणि
ये न ज्ञान कलाकलापमुदित निर्माय षड्दर्शनी ।
प्राकाश्य गमिता निजेन यशसा साक च सर्वागम-
ग्रन्थज्ञो जयतान् जिनप्रभगुरु**र्विद्यागुरु**र्नः मुदा ॥ ८ ॥
(सम्यक्त्वसप्ततिवृत्तिप्रशस्ति)

---

६ षड्दर्शनसमुच्चय, ७ नेमिनाथ फागु ।

आचार्य राजशेखर के निर्देश से साधुपूर्णिमागच्छीय गुणचन्द्रसूरि के शिष्य प० ज्ञानचंद्र ने रत्नकरावतारिका टिप्पण बनाया और संशोधन राजशेखर ने किया । तथा मुनिभद्रसूरिरचित शान्तिनाथ महाकाव्य (र० १४१०) का सशोधन भी राजशेखर ने ही किया ।

२ सघतिलकसूरिरचित निम्नग्रन्थ प्राप्त है—

१ सम्यक्त्वसप्ततिवृत्ति—र० १४२२ का० कृ० १४ सारस्वतपत्तन (सरसा) देवेन्द्रसूरि की प्रेरणा से, प्रथमादर्शलेखन, यशकुशल, सोमकुशल सहाय से, श्लो० ७७११,

२. **ऋषिमडलस्तव** श्लो० ३७,

३. **वर्द्धमान विद्याकल्प,**

४ **धूर्ताख्यान,**

आचार्यपदप्रदान का उल्लेख संघतिलकसूरि के शिष्य सोमतिलकसूरि[१] अपरनाम विद्यातिलकसूरि ने शीलोपदेशमालावृत्ति मे किया है—

तदीयचरणद्वयी सरसिजैकपुष्पन्धय.
स सङ्घतिलकप्रभुर्जयति साम्प्रत गच्छराट् ।
शकक्षितिपबोधकृत् प्रभुजिनप्रभानुग्रहा,
न्ववाप्तगणभृत्पदप्रमुखतत्त्वविद्यागम ।। ९ ।।

३ मल्लिषेणसूरि—नागेन्द्रगच्छीय महेन्द्रसूरि, आनन्दसूरि,[२] हरिभद्रसूरि,[३] विजयसेनसूरि,[४] उदयप्रभसूरि[५] के शिष्य आचार्य मल्लिषेणसूरि ने

---

१ विद्यातिलक आपका दीक्षावस्था का नाम है और आचार्य बनने पर सोमतिलकसूरि के नाम से आप प्रसिद्ध हुए। आपके रचित निम्नलिखित ग्रन्थ प्राप्त है—

१. कन्यानयनतीर्थकल्प	१३८९	(प्र० विविधतीर्थकल्प)
२ लघुस्तवटीका	१०९७	घृतघटीपुरी काबोजकुलीयढस्याण् अभ्यर्थतया, (प्र० मुनि जिनविजयजी सपादित।
३ षड्दर्शनटीका	१३९२	आदित्यवर्द्धनपुर,
४ शीलोपदेशमालाटीका	१३९३	लालाधाजूप्रेरणया,
५ कुमारपालप्रबन्ध	१४२४	(प्र० सिंघी जैन ग्रन्थमाला),

२ सिद्धराज जयसिंह द्वारा प्रदत्त व्याघ्रशिशुकविरुदधारी,

३ तत्त्वप्रबोधादिकग्रंथकार और कलिकालगौतमविरुदधारी,

४ मन्त्रीश्वर वस्तुपाल तेजपाल के पितृपक्ष के गुरु और तन्निर्मित आबू + लूणिगवसही के प्रतिष्ठापक।

५ मंत्रीश्वर वस्तुपाल ने आपको आचार्यपद प्रदान किया था। आपके रचित धर्मशर्माभ्युदयमहाकाव्य, आरम्भसिद्धि, नेमिनाथ चरित्र, उपदेशमालाकर्णिका, सुकृतकल्लोलिनी, षड्शीति टिप्पणक आदि प्राप्त हैं।

कुमारपालप्रतिबोधक आचार्य हेमचन्द्ररचित 'अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका' पर सं० १३४९ में विस्तृत टीका रची जो 'स्याद्वादमञ्जरी' के नाम से प्रसिद्ध है। इस स्याद्वादमजरी की रचना मे आचार्य जिनप्रभ ने सहयोग दिया था—

श्रीजिनप्रभसूरीणां सहाय्योद्भिन्नसौरभ ।
श्रुतावुत्तसतु सता वृत्ति स्याद्वादमञ्जरी ॥ ३ ॥
(स्याद्वादमंजरी टीका-प्रशस्तिः)

४ मुनि चतुरविजयजी ने जैनस्तोत्रसदोह की प्रस्तावना[1] (पृ० ६९) मे लिखा है कि आचार्य जिनसेन के शिष्य उभयभाषाकविशेखर आचार्य मल्लिषेणसूरि-रचित भैरवपद्मावती कल्प की रचना मे आचार्य जिनप्रभ सहायक थे।

तीर्थयात्रा और विहार

स्वय रचित कन्यानयनीय महावीरप्रतिमाकल्प और विद्यातिलक रचित कन्यानयनीयमहावीरकल्पपरिशेष के अनुसार सम्राट् के साथ शत्रुञ्जय, गिरनार तीर्थ, मथुरा, आगरा की यात्रा, दिल्ली से देवगिरि प्रतिष्ठानपुर, और देवगिरि से अल्लावपुर, सिरोह होकर दिल्ली, हस्तिनापुर की यात्राओ का उल्लेख है। शुभशीलगणि के कथाकोषानुसार जयरालपुर, मरुस्थल-प्रवास का वर्णन है।

स्वय रचित विविधतीर्थकल्प के अवलोकन से ज्ञात होता है कि इतिहास और स्थल भ्रमण से इनको बडा प्रेम था। इन्होने अपने जीवन मे भारत के बहुत से भागो मे परिभ्रमण किया था। गुजरात, राजपूताना, मालवा, मध्यप्रदेश, बराड, दक्षिण, कर्णाटक, तेलग, विहार, कोशल,

---

१ 'श्रीजिनसेनशिष्योभयभाषाकविशेखरश्रीमल्लिषेणसूरिविरचिते भैरवपद्मावतीकल्पेऽप्यस्यैव सहाय्यम् ।'

अवध, युक्तप्रान्त और पजाब आदि के कई पुरातन और प्रसिद्ध स्थानो की उन्होंने यात्रा की थी।[१] × × × × × × यदि इन सब स्थानों को प्रात या प्रदेश की दृष्टि से विभक्त किये जायं तो इनका पृथक्करण कुछ इस प्रकार होगा —

गुजरात और काठियावाड	युक्तप्रान्त और पजाव
शत्रुञ्जयमहातीर्थ	अहिच्छत्रपुर
गिरनारमहातीर्थ	हस्तिनापुर
अश्वावबोधतीर्थ	दिल्ली
स्तम्भनकपुर	मथुरा
अणहिलपुर	वाराणसी
शखपुर	कौशाम्बी
हरिकखीनगर	(आगरा)
(जघरालपुर)	कन्यानयन
(जीरापल्लीपार्श्वनाथ)	
अवध और विहार	राजस्थान और मालवा
वैभारागिरि	अर्बुदाचलतीर्थ
पावापुरी	सत्यपुरतीर्थ
पाटलीपुत्र	शुद्धदन्दनगरी
चम्पापुरी	फलवर्द्धितीर्थ
कोटिशिला	ढिंपुरीतीर्थ
कलिकुंडकुर्कुटेश्वर	कुडुंगेश्वरतीर्थ
मिथिला	अभिनदनदेवतीर्थ
रत्नपुर	दक्षिण और वराड
काम्पिल्यपुर	नासिकपुर

१ विविधतीर्थकल्प, सं० मुनि जिनविजय प्रास्ताविक निवेदन, पृ० १-२।

अयोध्यापुरी	प्रतिष्ठानपत्तन
श्रावस्तीनगरी	(देवगिरि)
कर्णाटक और तैलंग	अंतरीक्षपार्श्वतीर्थ
कुल्यपाक माणिक्यदेव	
अमरकुण्ड पद्मावती	

सं० १३७६ मे दिल्ली के संघपति सा० देवराज ने शत्रुञ्जय, गिरनार आदि तीर्थो का सघ निकाला था। उस संघ मे सूरिजी भी साथ थे। ज्येष्ठ कृष्णा त्रयोदशी को शत्रुजय तीर्थ की ओर ज्येष्ठ शुक्ला १५ को गिरनार तीर्थ की यात्रा की थी।[1] इस प्रसग पर रचित तीर्थयात्रास्तोत्र से सघ ने निम्नलिखित तीर्थो की यात्रा की थी—

शत्रुजय, गिरिनार, शेरीषक, फलवर्द्धि-शखेश्वर-स्तभनकपार्श्वनाथ, पाडलनगर, नारगा, भृगुकच्छ, वायडनगर जीवितस्वामी, हरपट्टण, अहिपुर, जालोर, पाल्हणपुर, भीमपल्ली, श्रीमाल, अणहिलपुर, सिसिखिज्ज, आशापल्ली धोलका और धधुका।

स० १३६९ फलवर्द्धिपार्श्वनाथ की यात्रा[2] की थी और स० १३८६ मे ढिपुरीतीर्थ की यात्रा। स० १३९१ उपकेशगच्छीय कक्कसूरि रचित नाभिनंदनजिनोद्धारप्रबन्ध के अनुसार स० १३७७ के पश्चात् शत्रुञ्जयतीर्थ के उद्धारक सघपति समरसिंह के सघ के साथ सूरिजी ने मथुरा, हस्तिनापुर आदि तीर्थो की यात्रा की थी और समरसिंह को सघपति पद प्रदान किया था—

'पातसाहिस्फुरन्मानाद्धर्मवीर स्मरस्तथा।
मथुराया हस्तिनागपुरे जिनजनिर्क्षितौ ।। ३२८ ।।

---

१ देखे, तीर्थयात्रास्तोत्र और स्तुतित्रोटक।

२ देखे, फलवर्द्धिमण्डनपार्श्वस्तोत्र।

बहुभि सङ्घपुरुषै श्रीजिनप्रभसूरिभि ।
समन्वितस्तीर्थयात्रा चक्रे सङ्घपतिर्भवन् ।। ३२९ ।।
(प्रस्ताव ५, श्लो० ३१८-३२९)

उपदेश से प्रवुद्ध—जैन पुस्तकप्रशस्ति-संग्रह, प्रथम भाग, प्रशस्ति १७ गूर्जरवंशीय साधु महणसिंह लिखित (भावदेवसूरिकृत) पार्श्वनाथचरित्र पुस्तक प्रशस्ति के अनुसार गुर्जरवंशीय सौम्य ने आचार्य जिनप्रभ से सुधर्म ग्रहण किया था—

सौम्योऽजनि प्रवरधीर्विपुलेऽत्रवंशे
य सोमकान्त इव सज्जनदर्शनीय ।
श्रीमज्जिनप्रभविभोर्भवभित्प्रसाद
मासाद्यसद्गुणनिधिर्विदधे सुधर्मम् ।। ३ ।।[1]

× × × ×

जैन पुस्तक प्रशस्तिसग्रह प्रथम भाग, प्रशस्ति ६०, पल्लिवालवंशीय श्राविका कुमरदेवी लिखित औपपातिक-राजप्रश्नीय सूत्रद्वयपुस्तक प्रशस्ति के अनुसार पल्लिवालवंशीय अरिसिंह की पत्नी कुमरदेवी ने आचार्य जिनप्रभ के पास विधिवत् श्राविका धर्म स्वीकार किया—

श्रीमत्सूरिजिनप्रभाङ्घिकमले धर्म प्रपद्यानघ,
या तुर्या प्रतिमामुवाह विधिवत्सुश्रावकाणा मुदा ।
श्रद्धावृद्धित एव वित्तपवन क्षेत्रेषु सप्तस्वधो,
तन्वन्ती तनुजानमून मनुजानीश समाजन्तु ताध ।।४।।

× × × ×

अथापि सुश्राविकया, कुमरदेव्याऽन्यदा मुदा ।
श्रीजिनप्रभसूरीणा, गुरूणा धर्मदेशना ।। १५ ।।

---

१. इसका लेखन-काल १३७९ आश्विन सुदि १४ बुधवार है ।

विचारणीय प्रश्न

जिनप्रभसूरि रचित सिद्धान्तागमस्तव के अवचूरिकार आदिगुप्त ने अवतरणिका मे लिखा है :

"पुराश्रीजिनप्रभसूरिभिः प्रतिदिन नवस्तवनिर्माणपुरस्सरं निरवद्याहार ग्रहणाभिग्रहवद्भिः प्रत्यक्षपद्मावतीदेवीवचसामभ्युदयिनं श्रीतपागच्छं विभाव्य भगवता श्रीसोमतिलकसूरीणा स्वशैक्षशिष्यादिपठनविलोकनाद्यर्थं यमकश्लेष-चित्रछान्दोविशेषादिनवनवभङ्गीसुभगाः सप्तशतीमिता. स्तवा उपदीकृता निजनामाङ्किता ।"

अभिप्राय यह कि पद्मावतीदेवी के वचनो से तपागच्छ का उदय देखकर ७०० स्तोत्र सोमतिलकसूरि को अर्पित किये।

विचारणीय प्रश्न इतना ही है कि आचार्य जिनप्रभ ने तपागच्छ का भविष्य मे उदय देखकर सहज सौहार्द मे स्तोत्र-साहित्य अर्पित किया था ? क्योंकि जहाँ स्वय ने तपोरमतकुट्टनशत मे तपागच्छ को शाकिनीमत तुल्य मानकर भर्त्सना की है, त्याज्य बतलाया है, वहाँ 'उदय' देखकर अर्पण करना युक्ति-सगत प्रतीत नही होता।

इतिहास एव परपरा से भी यह सिद्ध है कि खरतरगच्छ और तपागच्छ आचार्य जिनप्रभ से लेकर २९वी शती पूर्वार्ध तक दोनो गच्छो का विपुल समुदाय, साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका समुदाय समान रूप से ही रहा, न कि खरतरगच्छ का ह्रास और तपागच्छ का उदय। यह विपुल समुदाय पिष्ट मे ही नही अपितु साहित्य-सर्जना शासन-प्रभावना आदि प्रत्येक दृष्टियो से आँका जा सकता है। हाँ, वर्तमान समय मे खरतरगणीय समुदाय का प्रत्येक दृष्टि से ह्रास और तपागच्छ का अभ्युदय अवश्य हुआ है।

दूसरी बात, जहाँ तपागच्छीय शुभशीलगणि ने अपने कथाकोष मे जिनप्रभसूरि के अनेक चमत्कारों के वर्णन मे कई प्रबन्ध लिखे है, वहाँ

इस प्रसग की गंध भी नही है। अन्यथा ऐसी महत्त्वपूर्ण वार्ता का अवश्य उल्लेख करते।

अवचूरिकार के अतिरिक्त इस प्रसंग का किसी भी लेखक ने उल्लेख नही किया है। अत 'तपागच्छ का अभ्युदय' देखकर लिखना गुच्छाग्रह मात्र प्रतीत होता है।

हाँ, इसमे सन्देह नही कि आचार्य जिनप्रभ के हृदय मे गुच्छाग्रह या गच्छवाद नाम की कोई वस्तु नही थी। यही कारण है कि हर्षपुरगच्छीय राजशेखरसूरि, रुद्रपल्लगच्छीय संघतिलकसूरि, विद्यातिलकसूरि, नागेन्द्र-गच्छीय मल्लिषेणसूरि आदि विविधगच्छीय आचार्यों और साधुओं को मुक्तहृदय से अध्ययन कराया था। और शुभशील गणिकृत कथाकोषानुसार तपागच्छीय सोमप्रभसूरि के साध्वाचार की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की थी। अत सभव है कि "सोमतिलकसूरीणा स्वशैक्षशिष्यादिपठनविलोकनार्थं" कहने पर स्वरचित ७०० सख्यात्मक स्तोत्र-साहित्य की प्रतिलिपि उन्हें सहज सौहार्द से उदारमना होकर प्रदान किये हो।

सोमप्रभसूरि से मुलाकात या सोमसुन्दरसूरि से ?

शुभशीलगणि के लेखानुसार सम्राट् के साथ प्रवास करते हुए जघराल नगर मे सोमप्रभसूरि से मुलाकात हुई और दोनो ने दोनो का हार्दिक अभिनन्दन ही नही किया अपितु मुक्तकण्ठो से प्रशंसा भी की, जो वस्तुत. आज के साधु-समाज के लिये मननीय और अनुकरणीय है।

इतिहास से सिद्ध है कि जिनप्रभसूरि का सम्राट् से मिलन सं० १३८५ मे हुआ था जब कि सोमप्रभसूरि का स्वर्गवास स० १३७३ मे हो गया था। अतः सोमतिलकसूरि से जिनप्रभ की भेंट हुई होगी। भ्रम से सोमतिलक के स्थान पर सोमप्रभ का उल्लेख हो गया प्रतीत होता है।[1]

१. देखें, जिनप्रभसूरि अने सुलतानमुहम्मद, पृ० ६६-६७ की टिप्पणी।

मुहम्मद तुगलक-प्रतिरोध और तीर्थरक्षा[1]

वैक्रमीय चौदहवी शती के अन्तिम चरण में दिल्ली के सिंहासन पर तुगलकवंशीय सुलतान मुहम्मद[2] आसीन था, जो कि अपनी न्यायप्रियता, उग्र प्रकृति और अस्थिर स्वभाव के लिये प्रसिद्ध था। एक समय राजसभा मे विद्वानो के साथ विद्वद्गोष्ठी करते हुए मुहम्मद तुगलक ने पण्डितो से पूछा कि 'इस समय विशिष्ट प्रतिभाशाली विद्वान् कौन है ?'

सभासदस्य ज्योतिषी धाराधर ने कहा कि 'सम्राट्! इस समय दिल्ली में ही क्या अपितु भारतवर्ष में अपने विद्या, चमत्कार और अतिशय के कारण आचार्य जिनप्रभसूरि प्रसिद्ध हैं। आचार्य के गुणो की क्या प्रशंसा की जाय, वे तो साक्षात् सरस्वतीपुत्र है।'

सम्राट्—अच्छा ! ऐसे समर्थ विद्वान् है !! तो धाराधर यह बतलाओ कि वे आज कल कहाँ रहते है ?

धाराधर—दिल्ली का परम सौभाग्य है कि वे आज कल दिल्ली के शाहपुरा मे विराजमान हैं।

---

१ यह अध्याय स्वयं आचार्य जिनप्रभसूरि रचित कन्यानयनमहावीर-तीर्थकल्प और विद्यातिलक प्रणीत कन्यानयनमहावीरकल्प परिशिष्ट के आधार पर लिखा गया है।

२ मुहम्मद तुगलक (राज्यकाल १३२५-५१ ई०) के लिये देखें, डा० ईश्वरीप्रसाद लिखित भारत का इतिहास पृ० २२३, से २३२, मुहम्मद तुगलक का पूर्वनाम फखरुद्दीन जूना खा था। इसी के सहयोग से, इसके पिता गाजी मलिक दिल्ली पर अधिकार कर सके। जूना खां ने वारंगल विजय कर सुल्तानपुर नाम रखा था। यह वही तुगलक है जो दौलताबाद को भारत की राजधानी बना रहा था। इसी के समय में तांबे के सिक्के का प्रचार हुआ था।

सम्राट्—धाराधर ! तो क्या ऐसे प्रभावशाली आचार्य के दर्शन हमे नही कराओगे ?

धारा—राजन् । वे तो परम निस्पृही मुनि है । फिर भी आप की विनती है तो वे आप को अवश्य दर्शन देगे ।

सम्राट्—तो धाराधर, यह कार्य तुम्हे सौंपा जाता है । तुम बड़े सन्मान के साथ आचार्य को यहाँ अवश्य लाना ।

बादशाह से मिलन व सत्कार

धाराधर के द्वारा सम्राट् का आमंत्रण पाकर सं० १३८५ पौष शुक्ला द्वितीया की सन्ध्या को आचार्य सम्राट् से मिले । सम्राट् ने अपने समीप ही आचार्य को बैठाकर प्रेमपूर्वक कुशल-प्रश्न किया । प्रत्युत्तर मे आचार्य श्री ने नवीन पद्य रखकर आशीर्वाद प्रदान किया । आशीर्वादात्मक पद्यो का लालित्य और छटा देखकर सम्राट् बहुत प्रसन्न हुआ । लगभग अर्द्ध रात्रि तक आचार्यश्री के साथ सम्राट् की एकान्तगोष्ठी होती रही । रात्रि अधिक व्यतीत हो जाने के कारण सूरिजी ने अवशेष रात्रि वही महलो मे ही पूर्ण की । प्रातःकाल सुलतान ने पुन आचार्यश्री को अपने पास बुलाया और सन्तुष्ट होकर १००० गाय, द्रव्य समूह, मनोहर एवं रमणीय उद्यान, १०० वस्त्र, १०० कम्बल एवं अगर, चंदन, कर्पूरादि सुगन्धि द्रव्य आचार्यश्री को अर्पण करने लगा । परन्तु 'जैन-साधुओ को यह सब ग्रहण करना आचार विरुद्ध है' आदि वाक्यो से सुलतान को समझाते हुये उन सब वस्तुओ को ग्रहण करना अस्वीकार कर दिया । फिर भी सम्राट् का विशेष आग्रह देखकर, सम्राट् को अप्रीति न हो इसलिये राजाभियोग वश उनमें से कुछ कम्बल, वस्त्र आदि ग्रहण किये ।

सम्राट् ने विविधदेशीय विद्वानों के साथ आचार्यश्री की वाद-गोष्ठी करवाकर दो श्रेष्ठ हाथी मँगवाये। उनमे से एक पर आचार्य जिनप्रभसूरि को और दूसरे पर आचार्यश्री के शिष्य आचार्य जिनदेवसूरि को बिठा-

---

१ देखें, 'शिष्य परिवार-परंपरा और साहित्यसर्जन' परिच्छेद ।

कर[1], मदनभेरी, शंख, मृदंग, मर्दल, कंसाल और ढोल आदि अनेक प्रकार के शाही वादित्रों के समारोहपूर्वक, आचार्यश्री को शाहपुरा की पौषधशाला में पहुँचाया। उस समय भट्ट-चारण आदि विरुदावली गा रहे थे, राज्याधिकारी प्रधानवर्ग और चारो वर्णो की प्रजा भी प्रवेशोत्सव में सम्मिलित थी। जैन संघ में आनन्द का पार नहीं था। आचार्यश्री के जय-जयकार से दशों दिशाएँ मुखरित हो रही थी। उपासक वर्ग ने इस सुअवसर मे आडम्बर के साथ प्रवेश महोत्सव किया और याचकों को प्रचुर दान देकर सन्तुष्ट किया।

संघरक्षा और तीर्थरक्षा की फरमान

मुलतान का आचार्यश्री से सम्पर्क बढता गया और आचार्यश्री की साधुता, गम्भीरता, विद्वत्ता आदि की छाप सम्राट् के हृदय पर पडी। उस समय जैन-समाज पर आये दिन अनेक प्रकार के उपद्रव हुआ करते थे। उनका निवारण करने के लिये आचार्यश्री ने सम्राट से एक फरमान-पत्र प्राप्त किया और उसकी नकले प्रत्येक प्रान्तो मे भिजवा दी। इससे श्वे० जैन-संघ उपद्रवरहित हुआ और शासन की विशेष उन्नति हुई। इसी प्रकार एक समय सम्राट् आचार्यश्री पर अत्यन्त प्रसन्न[2] हुआ और आचार्य के कथनानुसार सम्राट् ने तत्काल ही शत्रुंजय, गिरनार,

१ हाथी पर चढ़ना जैन मुनि के आचार के प्रतिकूल है किन्तु सम्राट् का आग्रह और शासन की प्रभावना को ही लक्ष्य मे रखकर यह अपवाद्-मार्ग ग्रहण किया प्रतीत होता है। इसी प्रकार का एक और उल्लेख प्रभावक चरित मे भी सूराचार्य के लिये प्राप्त होता है।

२ स्वयं कवि रचित 'शत्रंजयतीर्थकल्प', जिसका कि कवि ने स्वयं 'राजप्रसादकल्प' अमरनाम रखा है; जिसका कारण यही प्रतीत होता है कि सम्राट् ने प्रसन्न होकर जब तीर्थरक्षा के फरमान दिये तो आचार्य ने सम्राट् का नाम चिरकाल तक रहे—इस दृष्टि से राजप्रसाद यह नाम रखा:—

फलवर्द्धि आदि तीर्थों की रक्षा के लिये फरमान-पत्र लिखवाकर आचार्य को दिये। उन फरमान-पत्रो की नकलें भी तीर्थस्थानों में भेज दी गई। इसी प्रकार एक समय आचार्यश्री के उपदेश से सम्राट् ने बहुत से बंदियो को मुक्त किया।

कन्यानयनीय[1] महावीर प्रतिमा का इतिहास और उद्धार।

विक्रमपुर[2] निवासी (युगप्रवरागम जिनपतिसूरिजी[3] के चाचा[4])

प्रारम्भेप्यस्य राजाधिराज मड्घेप प्रसन्नवान्।
अतो राजप्रसादाख्य कल्पोऽय जयताच्चिरम्॥
श्रीविक्रमाब्दे बाणष्टविश्वदेवमिते शितौ।
सप्तम्या तपस काव्यदिवसेऽय समर्थित॥

(शत्रुञ्जयकल्प)

१-२ कन्यानयन और विक्रमपुर के स्थान निर्णय मे काफी मतभेद है। पं० लालचन्द भगवान् गाँधी दक्षिणदेश में कानानूर और उसी के निकट विक्रमपुर को स्वीकार करते है किन्तु श्री अगरचन्दजी भंवरलालजी नाहटा कन्यानयन को कन्याणा (जिदरियामत और विद्यमधुर जैसलमेर के निकट स्वीकार करते हैं, जो युक्तियुक्त प्रतीत होता हैं। यह देखिये नाहटाजी के प्रमाण—

प० लालचन्द भगवानदास का मत है कि उपरयुक्त कन्नाणय या कन्यानयनक्त मान कालानूर है। पर हमारे विचार से यह ठीक नही है। क्योकि उपर्युक्त वर्णन मे, सं० १२४८ मे उधर तुर्कों का राज्य होना लिखा है, किन्तु समय दक्षिण देश के कानानूर में तुर्को का राज्य होना अप्रमाणित है। 'युगप्रधानाचार्य गुर्वावली' मे (जो कि श्री जिनविजयजी द्वारा सम्पादित होकर 'सिंघि जैन ग्रन्थमाला' मे प्रकाशित होनेवाली है) कन्यानयन का कई स्थलो मे उल्लेख आता है। उससे भी कन्नाणय, आसीनगर (हाँसी के निकट, बागुड देश मे होना सिद्ध है। जिस कन्यानयनीय महावीर प्रतिमा के सम्बन्ध मे ऊपर उल्लेख आया है उसकी प्रतिष्ठा के विषय मे भी

गुर्वावली में लिखा है कि—सं० १२३३ के ज्येष्ठ सुदी ३ को* आशिकामें बहुत से उत्सव समारोह होने के पश्चात्, आसाढ़ महीने में कन्यानयन के जिनालय में श्री जिनपति सूरिजी ने अपने पितृव्य सा० मानदेव कारित महावीर बिंब की प्रतिष्ठा की और व्याघ्रपुर में पार्श्वदेवगणि को दीक्षा दी। कन्यानयन के सम्बन्ध में गुर्वावली के अन्य उल्लेख इस प्रकार है—

सवत् १३३४ में श्रीजिनचन्द्र सूरिजी की अध्यक्षता में कन्यानयन निवासी श्रीमालज्ञातीय सा० कालाने नागोर से श्रीफलोधी पार्श्वनाथजी का संघ निकाला, जिसमें कन्यानयनादि सकल वागड़ देश व सपादलक्ष देश का संघ सम्मिलित हुआ था।

संवत् १३७५ माघ सुदी १२ के दिन नागोर में अनेक उत्सवों के साथ श्रीजिनकुशल सूरिजी के वाचनाचार्य-पद के अवसर पर संघ के एकत्र होने का जहाँ वर्णन आता है वहाँ 'श्रीकन्यानयन, श्रीआशिका, श्रीनरभट प्रमुख नाना नगर-ग्राम वास्तव्य सकल वागड देश समुदाय' लिखा है।

सवत् १३७५ वैशाख वदी ८ को मन्त्रिदलीय ठक्कुर अचलसिंह ने सुलतान कुतुबुद्दीन के फरमान से हस्तिनापुर और मथुरा के लिये नागौर से सघ निकाला। उस समय, श्रीनागपुर, रुणा, कोसवाणा, मेड़ता, कडुयारी नवाहा, झुंझुणु, नरभट, कन्यानयन, आसिकाउर, रोहद, योगिनीपुर, धामइना, जमुनापार आदि स्थानो का संघ सम्मिलित हुआ लिखा है। सबने क्रमशः चलते हुए नरभट मे श्रीजिनदत्तसूरि प्रतिष्ठित श्रीपार्श्वनाथ महातीर्थ की वन्दना की। फिर समस्त वागड़ देश के मनोरथ पूर्ण करते हुए कन्यानयन में श्रीमहावीर भगवान् की यात्रा की।

श्रीजिनचन्द्र सूरिजी ने खण्डासराय (दिल्ली) मे चातुर्मास करके मेड़ता के राणा मालदेव की विनती से विहार कर मार्ग में धामइना, रोहद आदि नाना स्थानों से होकर कन्यानयन पधार कर महावीर पुत्र को नमस्कार किया।

---

*गुर्वावली, पृ० २४ के अनुसार आषाढ मास है।

संवत् १३८० में सुलतान गयासुद्दीन के फरमान लेकर दिल्ली से शत्रुजय का संघ निकाला। वह सर्वप्रथम कन्यानयन आया, वहाँ वीर प्रभु की यात्रा कर फिर आशिका, नरभट, खाटू, नवहा, झुंझणू आदि स्थानो मे होते हुए, फलौधी पार्श्वनाथजी की यात्राकर, शत्रुजय पहुँचा उपर्युक्त इन सारे अवतरणो से कन्यायन का, आशिका के निकट वागड देश मे होना सिद्ध होता है। श्रीजिनप्रभ सूरिजी ने कन्यानयन के पास 'कयंवासस्थल' का जो कि मंडलेश्वर कैमास के नाम से प्रसिद्ध था, उल्लेख किया ह। मडलेश्वर कैमास का सम्बन्ध भी कानानूर से न होकर हाँसी के आस-पास के प्रदेश से ही हो सकता है। गुर्वावली के अवतरणों से नागौर से दिल्ली के रास्ते में नरभट और आशिका के बीच मे कन्यानयन होना प्रमाणित है। अनुसन्धान करने पर इन स्थानो का इस प्रकार पता लगा है—

नरभट—पिलानी से ३ मील।

कन्यानयन—वर्तमान कन्नाणा दादरी से ४ मील जिद रिसायत मे है।

आशिका—सुप्रसिद्ध हांसी।

पं० भगवानदासजी जैन ने ठ० फेरु विरचित 'वस्तुसार' ग्रन्थ की प्रस्तावना मे कन्यानयन को वर्तमान करनाल बतलाया है, परन्तु हमे वह ठीक नही प्रतीत होता है। गुर्वावली के उल्लेखानुसार करनाल कन्यानयन नहीं हो सकता।

इसमे अब एक यह आपत्ति रह जाती है कि श्रीजिनप्रभ सूरिजी ने स्वयं 'कन्यानयनीय-महावीरकल्प' मे कन्यानयन को चोल देश मे लिखा है। हमारे विचार से यह चोल देश, जिस स्थान को हम बतला रहे है, पूर्वकाल मे उसे भी चोल देश कहते हो। इस विषय मे विशेष प्रमाण न मिलने से विशेष रूप से नही कह सकते परन्तु गुर्वावली मे महावीर प्रतिमा की प्रतिष्ठा के सम्बन्ध मे जब यह उल्लेख है कि—स० १२३३ के ज्येष्ठ सुदी ३ को, आशिका मे धार्मिक उत्सव होने के पश्चात् आषाढ मे ही

कन्यानयन में महावीर बिंब की प्रतिष्ठा श्रीजिनपति सूरिजी द्वारा हुई; और वहाँ से फिर व्याघ्रपुर आकर पार्श्वदेव को दीक्षित किया। श्रीजिनप्रभसूरिजी ने भी प्रतिमा को 'सा० मानदेव कारित, सं० १२३३ आषाढ सुदी १० को प्रतिष्ठित, मानदेव को श्रीजिनपति सूरिजी का चाचा होना, और प्रतिष्ठा भी श्रीजिनपति सूरिजी द्वारा होना' लिखा है। उसी प्रकार ये सारी बातें प्राचीन गुर्वावली से भी सिद्ध और समर्थित है। पिछले उल्लेखो मे भी जो कि कन्यानयन के महावीर भगवान् की यात्रा के प्रसङ्ग में है कन्यानयन को वागड देश मे आशिका के पास ही बतलाया है। इन सब बातो पर विचार करते हुए हमारी तो निश्चित राय है कि कन्यानयन कानानूर न होकर वर्त्तमान कन्नाणा ही है। जिम प्रकार वागड़ देश ४ है, इसी प्रकार चोल देश भी दो हो सकते है।

विक्रमपुर स्थल-निर्णय

सा० मानदेव के निवास स्थान विक्रमपुर को पं० लालचंद भगवान दास ने दक्षिण के कानानूर के पास का बतलाया है; पर यह विक्रमपुर तो निश्चितया जेसलमेर के निकटवर्ती वर्तमान विक्रमपुर है। श्रीजिनपति सूरिजी के रासमें 'अत्थिमरुमंडले नयरविक्कमपुरे' शब्दों से विक्रमपुर को मरुस्थल में सूचित किया है। संभव है सा० मानदेव व्यापारादि के प्रसङ्ग सेवागड देश के कन्यानयन में रहते हों और वही श्रीजिनपति सूरिजी के जाने पर महावीर भगवान् की प्रतिष्ठा कराई हो। 'जैन स्तोत्र संदोह' भा० २ की प्रस्तावना, पृ० ४० मे इस विक्रमपुर को बीकानेर बतलाया है, पर वह भूल है। बीकानेर तो उस समय बसा भी नहीं था, उसे तो राव बीकाने, स० १५४५ में बसाया है। पूर्वका विक्रमपुर जेसलमेर निकटवर्ती वर्तमान विक्रमपुर ही है।

३ युगप्रभ सगम जिनपतिसूरि के लिए देखे, लेखककृत खरतरगच्छ का इतिहास, प्रथम खंड।

शाह मानदेव ने २३ अगुल प्रमाण मम्माण प्रस्तर की महावीर स्वामी की प्रतिमा का निर्माण करवाकर सं० १२३३ आषाढ शुक्ला १० गुरुवार को आचार्य जिनपतिसूरिजी के वरदहस्तो से, प्रतिष्ठा करवाकर चोल-देशस्थ कन्यानयन मे स्थापित की।

सं० १२४८ मे पृथ्वीराज चौहान के सुरत्राण शहाबुद्दीन गोरी द्वारा मारे जाने पर, सम्राट पृथ्वीराज चौहान के अंतरंगसखा, राज्यप्रधान सेठ रामदेव ने कन्यानयनीय श्रावक संघ को लिखा—'तुर्कों का राज्य हो गया है अत श्री महावीर स्वामी की प्रतिमा को प्रच्छन्न रूप से रखना आवश्यक है।' इस संदेश को पाकर कन्यानयनीय उपासकों ने दाहिमकुलमंडण

---

४ मुनि जिनविजय संपादित जैन पुस्तक प्रशस्ति सग्रह, प्रशस्ति नं० ५४ के अनुसार शाह मानदेव जिनपतिसूरि के बाबा (पिता के बडे भाई) थे—

प्रगुणगुणमयोऽत्र **पार्श्वनामा** ध्वजकमला कलयांचकार साधु ।
स्म जयति मृगं मृगाकगं, यो मधुरयश कलंकिकिणीप्रगानै ॥ २ ॥
चत्वारो **मानदेवः कुलधर-बहुदेवौ यशोवर्द्धनोऽस्य,**
श्रीभर्तुर्बाहुभूता अजनिषत सुता धर्मकर्मप्रवीणा ।
सत्पुत्रा मानदेवाद् य इह धनदेवस्तथा राजदेवो,
निम्बार्काश्चाविरासन् हिमगिरित इव स्वर्गसिन्धुप्रवाहा ॥ ३ ॥

देवधर–लोहदेवौ जातौ कुलधरागजौ ।
शब्दाभ्या कुंडलाभाभ्या पुण्यश्री समभूष्यत ॥ ४ ॥
बिभ्रेजे मुनिचन्द्रमा **जिनपति.** पुत्रो **यशोवर्धन–**
क्षीराब्धेर्जिनचन्द्रविष्णुपदमाक्रान्तं नितान्तं महत् ।
बाल्येनाऽपि हि येन साधुषु बहुज्योतिष्षु राज्यं दधे
शेषानां शिरसि स्थितं पितृकुलं विश्वं च संप्रीणितं ॥ ५ ॥

मंडलेश्वर कैमास के नाम से बसे हुये 'कयंवासस्थल' में विपुलबालू के नीचे प्रतिमा को गाड दी।

सं० १३११ के अतिदारुण दुर्भिक्ष में जीविकोपार्जन के लिये जोजओ नामक सूत्रधार सकुटुम्ब कन्यानयन से सुभिक्ष देश की ओर चला। *'प्रथम प्रयाण थोडा ही करना चाहिये'* यह विचार कर सूत्रधार ने कयवास स्थल मे ही रात्रिनिवास किया। अर्धरात्रि मे स्वप्न मे अधिष्ठापक ने उससे कहा—'जहाँ तुम शयन कर रहे हो उससे कुछ हाथ नीचे भगवान् महावीर स्वामी की प्रतिमा है। तुम इसे प्रकट करो। तुम्हे भी देशान्तर जाने की जरूरत नही है। तुम्हारा निर्वाह यहो हो जायगा।' सूत्रधार जोजक स्वप्न देखकर ससभ्रम उठा और उस स्थान को अपने पुत्रादि से खुदवाने पर महावीर प्रभु की प्रतिमा प्रकट हुई। अत्यंत प्रमुदित होकर सूत्रधार ने नगर मे जाकर समाज को सूचित किया। उपासकवर्ग ने भी महोत्सव के साथ चैत्य में प्रतिमा को स्थापित की और सूत्रधार की आजीविका बाँध दी।

उस स्थान पर प्रतिमा के परिकर की खूब शोध की, किन्तु परिकर प्राप्त न हुआ। किसी स्थल मे दबा हुआ होगा। उसी परिकर पर प्रशस्ति लेखादि संभव है।

एक समय न्हवण (स्नान) कराने के पश्चात् प्रभु-प्रतिमा पर प्रस्वेद झरने लगा। बारंबार पोछने पर भी पसीना बंद नही हुआ। इससे उपासकवर्ग ने यह निश्चय किया कि यहाँ निश्चय रूप से उपद्रव होनेवाला है। इतने मे ही प्रभात के समय जठ्ठुअ लोगोकी धाड आई और उसने चारों तरफ से नगर को नष्टकर दिया। इस प्रकार प्रकट प्रभावी भगवान् महावीर कयं-वास स्थल मे स० १३८५ तक उपासक वर्ग द्वारा पूजित रहे।

स० १३८५ में आसीनगर (हाँसी) के अल्लवियवश के क्रूर-पुरुषों ने तत्रस्थ उपासक वर्ग और साधुओं को बंदी बनाकर उनकी विडंबना की। इन्हीं क्रूरो ने पार्श्वनाथप्रभु की पाषाण-प्रतिमा खंडित कर दी और महावीरप्रभु की चमत्कारी प्रतिमा को अखंडित रूप से ही बैलगाडी में

रखकर दिल्ली ले आए । उस समय सम्राट मुहम्मद तुगलक देवगिरि मे था। अतः उसके आने पर उसके आदेशानुसार व्यवस्था करने के विचार से उस प्रतिमा को तुगलकाबाद के शाही भंडार मे रखवा दी । इस प्रकार यह प्रतिमा १५ महीनो तक तुर्को के अधिकार मे रही ।

महावीर स्वामी की इस प्रतिमा का यह वृत्तान्त होने पर आचार्य जिनप्रभ सोमवार के दिन राजसभा मे आये । उस समय वृष्टि हो रही थी जिससे आचार्य के चरण-कमल कीचड से भर गये थे । सम्राट मुहम्मद तुगलक ने यह देखकर मल्लिक काफूर द्वारा अच्छे वस्त्र-खंड से आचार्य के चरण पुछवाये । आचार्य ने भावगर्भित काव्य द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया । उस आशीर्वादात्मक काव्य की व्याख्या सुनकर सम्राट अत्यन्त प्रसन्न हुआ । अवसर देखकर आचार्यश्री ने उपर्युक्त महावीर-प्रतिमा का समस्त वृत्तान्त बतलाकर सम्राट से, उसे जैन-संघ को अर्पित कर देने के लिये कहा । सम्राट ने आचार्य की अभिलाषा सहर्ष स्वीकार की और उसी समय तुगुलकाबाद के खजाने से असूअग मल्लिको के कन्धे पर विराजमान करवाकर प्रभु-प्रतिमा को राजसभा मे मँगवाया और दर्शन करके महावीर प्रतिमा आचार्य को समर्पित की । उस चमत्कारी प्रतिमा की प्राप्ति से जैन-संघ को अपार हर्ष हुआ । समस्त संघ ने सम्मिलित होकर बडे समारोह के साथ शिविका (पालकी) मे विराजमान कर 'मलिकताजदीन सराय' के जिन-मन्दिर मे उसे स्थापित की । सूरिजी ने वासक्षेप किया और उपासक-गण प्रतिदिन पूजन करने लगे ।

देवगिरि की आर विहार और प्रतिष्ठानपुर यात्रा

आचार्य जिनप्रभ ने दिल्ली में इस प्रकार धर्म-प्रभावना करके महाराष्ट्र (दक्षिण) प्रान्त की ओर प्रस्थान किया । सम्राट ने आचार्य श्री के प्रवास मे सब प्रकार की सुविधाएँ प्रस्तुत कर दी । सूरिजी ने सम्राट एवं स्थानीय संघ के संतोष के निमित्त स्वशिष्य श्रीजिनदेवसूरि को १४ साधुओं

के साथ दिल्ली में ठहरने की आज्ञा दी। सूरिजी विहार-मार्ग के अनेक नगरों में धर्म एवं शासन-प्रभावना करते हुये देवगिरि (दौलताबाद) पहुँचे। स्थानीय सघ ने प्रवेशोत्सव किया। वहाँ सं संघपति जगसिंह[1], साहण, मल्लदेव आदि संघ-मुख्यो के साथ प्रतिष्ठानपुर पधारे और जीवंत मुनिसुव्रतस्वामी की प्रतिमा के दर्शन किये। यात्रा करके संघ सहित आचार्य श्री पुन देवगिरि पधारे।

देवगिरि के जैन मन्दिरो की रक्षा

एक समय शाह पेथड[2], सहजा[3] और ठ० अचल के निर्मापित जिनमन्दिरो का तुर्क लोग नाश करने लगे, उस समय आचार्य जिनप्रभ शाही फरमान दिखलाकर उन मन्दिरों की रक्षा की। इस प्रकार और भी अनेक तरह से शासन एवं धर्म-प्रभावना करते हुये, शिष्यों को सिद्धातवाचना और तपोद्वहन कराते हुये तीन वर्ष (सं० १३८५-८७) देवगिरि

---

१ जिनप्रभसूरिजी सर्वत्र चैत्य परिपाटी करते हुए पीरोज सुरत्राण (मुलतान महमद) के साथ देवगिरि पहुँचे। उस समय संघपति जगसिंह ने बहुत द्रव्य व्यय कर प्रवेशोत्सव किया। स्थानीय चैत्यों की वन्दना करते हुये सूरिजी जगसिंह के गृह-मन्दिर पर आये। वहाँ वैडूर्यरत्न, स्फटिकरत्न, स्वर्ण, रूप्यमय जिन-प्रतिमाओं को देखकर सूरिजी भावविह्वल होकर सिर घुमाने लगे। सं० जगसिंह के कारण पूछने पर कहा— 'मैंने बहुत स्थानो मे जिन-मन्दिरो और गुरुवो का वन्दन किया, किन्तु एक तो आज तुम्हारे गृह-मन्दिर को स्थावर तीर्थरूप और दूसरे जंगम तीर्थरूप जघरालपुर मे तपागच्छीय सोमतिलकसूरि को देखा है।

—शुभशीलगणि कृत कथाकोष

२-३ देखें, पं० लालचन्द्र भगवान् गांधी लिखित जिनप्रभसूरि अने सुलतान मुहम्मद, पृ० ७८ से १०२.

(दौलताबाद) में ही व्यतीत किये। इसी बीच सूरिजी ने बहुत से उद्भट वादियों को शास्त्रार्थ मे पराजित किया।

सम्राट् का पुनः स्मरण और आमन्त्रण

एक समय सम्राट् मुहम्मद तुगलक दिल्ली की राज्यसभा मे अनेक देशीय विद्वानो के साथ विद्वच्चर्चा कर रहे थे। सम्राट को किसी शास्त्रीय विचार मे सन्देह उत्पन्न हो जाने पर एवं उपस्थित पण्डित-मंडली से संतोषजनक समाधान प्राप्त न होने से एकाएक आचार्य जिनप्रभ का स्मरण आया और सम्राट् ने कहा—'यदि इस समय राजसभा में वे आचार्य विद्यमान होते तो अवश्य ही हमारे संदेह का निराकरण हो जाता। सचमुच मे उनके जैसा पाण्डित विश्व मे अलभ्य है।' इस प्रकार सम्राट् के मुख से आचार्य जिनप्रभ की प्रशसा सुनकर दौलताबाद से आये हुये ताजुलमल्लिक ने सिर झुकाकर निवेदन किया—'स्वामिन्! वे महात्मा अभी दौलताबाद मे है, परन्तु वहाँ का जल-वायु अनुकूल न होने से वे बहुत कृश हो गये है।' यह सुनकर प्रसन्नतापूर्वक सूरिजो के गुणो का स्मरण करते हुये उस मल्लिक को आज्ञा दी कि तुम शीघ्र ही दुबीरखाने जाकर फरमान लिखाकर सामग्री सहित भेजो, जिससे वे आचार्य देवगिरि से यहाँ शीघ्र पहुँच सकें। सम्राट की आज्ञा से ताजुलमल्लिक ने वैसा ही किया। शाही फरमान यथासमय दौलतावाद के दीवान के पास पहुँचा। सूबेदार कुतुहलखान[1] ने सूरिजी को दिल्ली पधारने के लिये सविनय प्रार्थना करते हुये शाही फरमान बतलाया।

देवगिरि से प्रयाण और अल्लावपुर में उपद्रव-निवारण

सम्राट् के आमन्त्रण को महत्त्व देकर आचार्य जी ने सप्ताह भर मे

१. इतिहास मे जिसे क्युत्यलखान मलिक क्यनामुद्दीन कहा जाता है, वह शायद यही है—देखे केम्ब्रीज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, वॉ. ३, पृ० १३० १५४, १५६, १६५.

(१० दिन बाद) तैयार होकर ज्येष्ठ सुदी १२ को राजयोग में संघ के साथ वहाँ से प्रस्थान किया। स्थान-स्थान पर धर्म-प्रभावना करते हुये आचार्य श्री अल्लावदुर्ग पधारे। असहिष्णु म्लेच्छों को एक जैनाचार्य की इस प्रकार की महिमा सह्य नहीं हुई। उन लोगों ने संघ की बहुत-सी वस्तुएँ छीनली और इसी प्रकार अनेक उपद्रव करने प्रारंभ किये। जब इस उपद्रव के संवाद दिल्ली में स्थित आचार्य जिनदेव सूरि को मिले तो वे उसी समय सम्राट् से मिले और सारी विपत्ति की स्थिति बतलाई। सम्राट् ने उसी समय बहुमानपूर्वक फरमान भेजकर वहाँ के मल्लिक द्वारा संघ की सारी वस्तुएँ वापिस दिला दी। इससे उन लोगो पर सूरिजी का अद्भुत प्रभाव पड़ा। सूरिजी ने डेढ मास की अल्लावपुर में स्थिरता की। वहाँ से प्रस्थान कर क्रमश. प्रवास करते हुए जब सूरिजी सिरोह पहुँचे तो सम्राट् ने उन्हे देवदूष्य सदृश सुकोमल १० वस्त्र भेज कर सत्कृत किया। वहाँ से विहार करके सूरिजी दिल्ली पहुँचे।

दिल्ली में सम्राट् से पुनर्मिलन

जैन संघ और सम्राट् उनके दर्शनो के लिये चिरकाल से उत्कण्ठित था ही, पूज्यश्री के शुभागमन से उनका हृदय अत्यन्त प्रफुल्लित हो गया। भाद्रपद शुक्ला २ के दिन मुनिमण्डल एवं श्रावकसंघ के साथ आचार्यश्री राजसभा मे पधारे। सम्राट् ने मृदुवचनो से वन्दन पूर्वक कुशल प्रश्न पूछा और अत्यन्त स्नेहवश सूरिजी के करकमल का चुम्बन कर अपने हृदय पर रखा। आचार्यश्री ने तत्काल ही नूतन पद्यों द्वारा आशीर्वाद दिया, जिसे सुनकर सम्राट् का चित्त अत्यन्त चमत्कृत हुआ। सूरिजी के साथ वार्तालाप होने के अनन्तर विशाल महोत्सवपूर्वक अपने हिन्दुराजाओ, दीनार आदि मल्लिकों और प्रधान पुरुषो के साथ अनेक प्रकार के वादित्रादि बजवाते हुये सन्मानपूर्वक सम्राट् ने सुलतान सराय की पौषधशाला में आचार्यश्री को पहुँचाया। यह प्रवेशोत्सव अपूर्व आनन्ददायक और दर्शनीय था।

पर्युषण में धर्म-प्रभावना

भाद्रपद शुक्ला ४ के दिन सघ ने महोत्सवपूर्वक पर्युषणाकल्प (कल्पसूत्र) सूरिजी से भक्तिपूर्वक श्रवण किया। सूरिजी के आगमन और शासनप्रभावना के पत्र पाकर देशान्तरीय संघ हर्षित हुआ। सूरिजी ने राजबन्दी श्रावको को लाखो रुपयों के दण्ड से मुक्त कराया एव अन्य लोगो को भी करुणावान् आचार्यश्री ने कैद से छुडाया। जो लोग अवकृपा प्राप्त हो गए थे वे भी सूरिजी के प्रभाव से पुन प्रतिष्ठा प्राप्त कर सके। सूरिजी प्रतिदिन राजसभा में जाते थे, उन्होंने अनेक वादियो पर विजय प्राप्त कर शासन की शोभा बढाई थी।

फाल्गुन मास मे, दौलताबाद से सम्राट् की जननी मगदूमईजहाँ के आने पर चतुरंग सेना के साथ बादशाह उसकी अभ्यर्थना मे सन्मुख गया। उस समय आचार्यश्री भी सम्राट् के साथ थे। वडथूण स्थान मे माता से मिलकर सम्राट् ने सबको प्रचुर दान दिया। प्रधानादि अधिकारियो को वस्त्रादि देकर सत्कृत किया। वहाँ से दिल्ली आकर सूरिजी को वस्त्रादि देकर सन्मानित किया।

दीक्षा और बिम्ब प्रतिष्ठादि उत्सव

चैत्र शुक्ला १२ को राजयोग मे सम्राट् की अनुमति से उसके दिये हुए साईवाण की छाया मे नन्दी स्थापना की। सूरिजी ने वहाँ ५ शिष्यो को दीक्षित किया। मालारोपण, सम्यक्त्व ग्रहण आदि धर्मकृत्य हुये। स्थिरदेव के पुत्र ठ० मदन (बभदत्त) ने इस प्रसंग पर बहुत-सा द्रव्य व्यय किया।

आषाढ शुक्ला १० को नवीन निर्मित १३ जिन-प्रतिमाओं की सूरिजी ने महोत्सवपूर्वक प्रतिष्ठा की। बिम्बनिर्माता एवं सा० पहराज के पुत्र अजयदेव ने प्रतिष्ठा महोत्सव मे पुष्कल द्रव्य व्यय किया।

सम्राट् समर्पित भट्टारकसराय मे प्रवेश

सुलतानसराय राजसभा से काफी दूर था, अत सूरिजी को हमेशा

आने में कष्ट होता है ऐसा विचार कर सम्राट् ने अपने महल के निकटवर्ती सुन्दर भवनो से सुशोभित नवीन सराय समर्पण किया। श्रावकसंघ को वहाँ पर रहने की आज्ञा देकर सम्राट् ने उसका नाम भट्टारकसराय प्रसिद्ध किया। सम्राट् ने वहाँ महावीर स्वामी का मन्दिर तथा पौषधशाला बनवाई। सं० १३८९ आषाढ कृष्णा सप्तमी ७ को उत्सवपूर्वक सूरिजी ने नवीन पौषधशाला मे प्रवेश किया। इस प्रसंग पर विद्वानो एवं दीन-अनाथों को यथेष्ट दान दिया गया।

मथुरातीर्थ का उद्धार

स० १३९३ मार्गशीर्ष महीने मे सम्राट् ने पूर्व देश की ओर विजय प्राप्त करने के हेतु ससैन्य प्रस्थान[1] किया। उस समय उन्होंने सूरिजी को भी विज्ञप्ति करके अपने साथ मे लिये। स्थान-स्थान पर शासन भावना करते हुये सूरिजी ने मथुरा तीर्थ का उद्धार करवाया।

हस्तिनापुर की यात्रा और प्रतिष्ठा

शाही सेना के साथ पैदल विहार करते हुए वृद्धावस्था के कारण सूरिजी को कष्ट होता है, यह विचार कर सम्राट् ने खोजेजहाँ[2] मल्लिक के साथ उन्हे आगरे से दिल्ली लौटा दिया। हस्तिनापुर की यात्रा का फरमान लेकर आचार्यश्री दिल्ली पहुँचे। चतुर्विधसंघ हस्तिनापुर की यात्रा के निमित एकत्र हुआ। शुभ मुहूर्त मे बोहित्थ (वाहडपुत्र) को संघपति का

---

१ ईस्वी सन् १३३३ (दि० सं० १३९०) मे मुहम्मद तुगलक ने पूर्व देश विजय यात्रा के लिये प्रस्थान किया। देखे, केम्ब्रीज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, वॉ० ३, पृ० १४७-१४८.

२. ख्वाजाजहाँन् मुहम्मद तुगलक का प्रधान व्यक्ति था। देखें कंम्ब्रीज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, वॉ० ३, पृ० १३४, १४०, १४३, १४८, १५२, १५८, १७२.

तिलक कर वहाँ से प्रस्थान किया ।[१] संघपति बोहित्थ ने स्थान-स्थान पर महोत्सव किये ।

तीर्थभूमि मे पहुँच कर तीर्थ को बधाया । नवनिर्मित शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ आदि तीर्थंकर प्रतिमाओ की सूरिजी ने प्रतिष्ठा की । अम्बिकादेवी की प्रतिमा स्थापित की । संघपति बोहित्थ ने संघवात्सलादि महोत्सव किये । संघ ने वस्त्र, भोजनादि द्वारा याचको को सन्तुष्ट किया ।

तीर्थयात्रा से लौटकर सूरिजी ने वैशाख शुक्ला १० के दिन संपूर्ण कल्मष और विघ्नो को दूर करनेवाले श्रीकन्यानयनीय महावीर-प्रतिमा को सम्राट् द्वारा बनाये हुए जैन मन्दिर मे महोत्सवपूर्वक स्थापित किया ।

इधर सम्राट् भी दिग्विजय करके दिल्ली लौटा । जैन-मन्दिर और उपाश्रयो में उत्सव होने लगे । सम्राट् एव सूरिजी का सम्बन्ध उत्तरोत्तर घनिष्ठता को प्राप्त करने लगा, अत सूरिजी और सम्राट् दोनो के द्वारा जिनशासन की बडी प्रभावना होने लगी । सूरिजी के प्रभाव से दिगम्बर एवं श्वेताम्बर समस्त जैन-सघ व तीर्थो के उपद्रव शाही फरमानों के द्वारा सर्वथा दूर हो गए ।

स्वर्गवास

जिस प्रकार आचार्यश्री के जन्म-सवत् का उल्लेख प्राप्त नही है । उसी प्रकार स्वर्गवास के समय का भी कोई ऐतिह्य उल्लेख प्राप्त नही है ।

---

१. शक स० १२५५ सं० १३९० वैशाख शुक्ला ६ को संघ के साथ यात्रा करने का उल्लेख स्वयं सूरिजी ने 'जयपुरस्तोत्र' में इस प्रकार किया है—

> "इत्थ पृपत्कै[२] विप[५]या र्कमिते[१]" शकाब्दे,
> वैशाखमासिशितिपक्षगपष्ठतिथ्याम् ।
> यात्रोत्सवोपतत. संघयुतो मुनीन्द्रः,
> स्तोत्रं व्यधाद् गजपुरस्य जिनप्रभाख्यः ॥"

आचार्य के प्रणीत ग्रन्थों के आधार पर ही अनुमान किया जा सकता है। आचार्य जी के अनेक ग्रन्थो में तो रचना-समय का निर्देश भी नही है। कतिपय ग्रन्थों में सम्वत् का उल्लेख अवश्य प्राप्त है।

संवत् उल्लेख की दृष्टि से 'कातन्त्रविभ्रम टीका' की रचना सं० १३५२ में हुई। अत आचार्यपद-प्राप्ति के पश्चात् यह इनकी सर्वप्रथम रचना मानी जा सकती है और अन्तिम रचना 'महावीरगणधरकल्प' सं० १३८९ की है। इसके पश्चात् की कोई सम्वत् उल्लेख वाली रचना अभी तक प्राप्त नही हुई है। इसलिए जिनप्रभसूरि का स्वर्गवास का समय वि० सं० १३९० के आसपास ७२-७५ वर्ष की अवस्था मे अनुमान से निर्धारित किया जा सकता है।

चमत्कारी घटनाएँ

"नमस्कार है चमत्कारको" की उक्ति को आचार्यजी ने चरितार्थ कर दिखाई है। चमत्कारो का प्रयोग या घटनाओं की ख्यातियाँ जितनी श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय मे दादा जिनदत्त सूरि, दादा जिनकुशल सूरि और जिनप्रभसूरि की प्राप्त हैं उतनी संभवत. किसी अन्य आचार्य की नही। वैसे जैन-साधु को स्वार्थ से चमत्कार दिखाना साधु-मर्यादा के विपरीत है किन्तु शासनसेवा या प्रभावना या उन्नति के निमित्त प्रयोग करना वर्जित नही है। आचार्य जिनप्रभ ने परिस्थितियो के अनुसार धर्म-प्रसार और शासनोन्नति के लिये ही इस शक्ति का आश्रय लिया था। पहले कहा जा चुका है कि प्रभावती देवी आपको प्रत्यक्ष थी और उसके सानिध्य से ही आपने करामात दिखाए। आपके और दादाओं के चमत्कारो में अन्तर इतना ही है कि आपके चमत्कार जीवन तक ही सीमित रहे और दादाओ के चमत्कार आज भी स्थान-स्थान पर देखे जा सकते हैं।

जिनप्रभ के करामातों का कोई मौलिक विवरण तो प्राप्त है नही, किन्तु परवर्ती ग्रन्थकारों—शुभशीलगणि (पंचशतीकथाप्रबन्ध) सोमधर्म

गणि (उपदेशसप्ततिका) और वृद्धाचार्यप्रबन्धावलिकार ने कुछ-कुछ घटनाओं का उल्लेख किया है, उन्हीं के आधार पर घटनाओ का उल्लेख यहाँ पर किया जा रहा है।

मुहम्मद शाह से मुलाकात

एक समय आचार्य शौच के लिए योगिनीपुर के बाहर गए हुए थे। उस समय मिथ्यादृष्टि अनार्यों (मुसलमानो) ने आचार्य पर पत्थरों की वर्षा करने लगे। आचार्य ने अंत करण में ही पद्मावती से कहा–देवि, तुमने मेरा स्वागत तो सुन्दर करवाया ? देवी ने उसी समय उन मुसलमानो की पूजा और ताडना की। वे भय से भागकर महम्मदशाह के पास गये और सारी घटना कही। घटना से चमत्कृत होकर शाह ने पूछा कि वह पुरुष कहाँ है ? उन्होने कहा कि हमने नगर के बहिर्प्रदेश मे उसे देखा था। शाह ने उसी समय प्रधान पुरुषो को बुलाकर आदेश दिया— जाओ, तुम उस पुरुष को यहाँ लेकर आवो, जिससे मैं उसको देख सकूँ। आदेश के अनुसार प्रधान पुरुषो ने आचार्य के पास आकर निवेदन किया– स्वामिन् ! आप हमारे शाह के पास पधारें और उसके बाद आप अपनी इच्छानुसार कही भी पधारें। आचार्य उन पुरुषो के साथ राजमहल के द्वार तक आकर ठहर गये। प्रधान पुरुषो ने जाकर शाह से निवेदन किया कि वह पुरुष द्वार पर उपस्थित है। जिस समय पुरुष शाह से कह रहे थे उस समय आचार्य ने अपने शिष्यो से कहा—'मै कुम्भकासन करता हूँ।' जब शाह आवे तब कहना कि—'ये हमारे गुरू है।' जब शाह कहे कि 'जिस अवस्था में थे उसी स्वरूप मे करो।' तो उस समय तुम जल से सिंचित भीना वस्त्र मेरे स्कंध पर रखकर उठा देना। इस प्रकार कह कर आचार्य ध्यान में बैठे—कुम्भ समान हो गये। उसके बाद महम्मद शाह ने आकर पूछा—'तुम्हारा गुरु कहाँ है ?' शिष्यों ने कहा–'आपके सन्मुख ही तो बैठे हैं !' शाह ने कहा–'जिस स्वरूप में थे वैसा करो।' तब शिष्यों ने भीना वस्त्र कर स्वस्थ्य अवस्था में किया। आचार्य ने उठ

कर शाह को धर्मलाभ आशीष दी और वार्ता में संलग्न हो गये ।

महम्मदशाह को राणी बालादे का व्यंतरोपद्रव दूर करना

महम्मदशाह ने आचार्यश्री से कहा—'भगवन्! मेरी प्राणप्रिया राणी बालादे हैं। उस पर व्यंतर का प्रकोप होने के कारण वह वस्त्र धारण नहीं करती है और न शरीर स्वस्थता का ही ख्याल रखती है। मैंने उपचार के लिये अनेकों मन्त्र-तन्त्रवादियों को बुलाये किन्तु वह जिस किसी भी उपचारक को देखती है तो पत्थर और लकड़ियों से उसे मारती है। अतः कृपा करके उसे स्वस्थ कीजिए और उसे चल कर देखिये।' आचार्य ने कहा—'तुम उसके पास जाकर विनम्र शब्दों में कहो कि "जिनप्रभसूरि तुम्हारे पास आ रहे हैं।" शाह ने उसी प्रकार जाकर कहा। रानी जिनप्रभसूरि का नाम सुनते ही सहसा उठ खड़ी हुई और दासी को कहा—'मेरे वस्त्र लावो।' दासियों ने तत्काल ही वस्त्र लाकर उसे पहनाये। इस कथन के प्रभाव को देखकर शाह चमत्कृत हुआ और आचार्य के पास आकर कहा—'आप उसके पास जाकर उसे देखिये।' आचार्य बालादे के समीप गये और उसे देखकर आचार्य ने कहा—'रे दुष्ट! तू यहाँ कैसे आया? यहाँ से चला जा।'

व्यंतर—मुझे अच्छा घर मिला है, छोड़कर कैसे जाऊँ?

आचार्य०—तेरे लिये दूसरा स्थान नहीं है?

व्यं—ऐसा सुन्दर घर नहीं है।

उसी समय आचार्य ने मेघनाद क्षेत्रपाल को बुलाकर आदेश दिया कि इस व्यंतर को दूर करो। मेघनाद ने उसे अत्यधिक पीड़ित किया। उस समय व्यंतर ने कहा—'मैं भूख से पीड़ित हूँ। मुझे कुछ खाने के लिये दो?"

आ०—तुझे खाने के लिये क्या दें?

व्यं०—भैंसे का मांस आदि दीजिये।

आ०—'मेरे सन्मुख ऐसे मत बोल। मैं तुझे गाढ-बंधनों से बांधता हूँ' कहकर सूरिमन्त्र का जाप करने लगे।

व्यं०—स्वामी, तुम सब जीवों को अभयदान देने वाले हो-तो अभय-दानी होकर मुझे क्यों दुःख देते हो ?

आ०—तुम इस स्थान से चले जाओ।

व्यं०—मुझे कुछ भी खाने के लिये दीजिये।

आ०—क्या दे ?

व्य०—घी-गुड के साथ रोटी दीजिये।

शाह०—घी, गुड के साथ रोटी मैं देता हूँ।

आ०—मुझे कैसे प्रतीति हो कि तू यहाँ से चला गया ?

व्य०—मेरे जाने के साथ ही अमुक-पीपल के वृक्ष की डाली टूट जायगी—यही निशानी है। रात्रि को यही हुआ।

प्रभात में बालादे राणी को स्वस्थ और सुसंस्कृत देखकर शाह अत्य-धिक प्रसन्न हुआ और बोला—प्रिये ! जो ये महान् प्रभावक आचार्य न आये होते तो तुम कहाँ होती ? यह सुनकर बालादे ने कहा—स्वामिन् ! यह पूज्य पुरुष मेरे माता-पिता के समान हैं। इन पूज्य का आप अच्छी तरह से स्वागत-सत्कार करें और राजसिंहासन के अर्धासन पर बिठावें। शाह ने स्वीकार किया। शाह समय-समय पर गुरु के स्थान पर जाते थे और गुरु को अपने राजमहलो में लाते थे और अर्धासन पर बिठाते थे।

राघव चैतन्य का अपमान

एक समय बनारस से चौदह विद्याओं का पारगामी मंत्र-तंत्रों का जान-कार राघवचैतन्य[1] नाम का महाविद्वान् योगिनीपुर आया और शाह से

---

१ राघव चैतन्य के संबधो मे पं० लालचन्द भगवान् गाधी ने यह जिनप्रभसूरि अने सुलतान मुहम्मद, पृ० १४१ की टिप्पणी मे लिखा है—

"एपिग्राफिका इण्डिका (पृ० १९३–१९४) मा तथा निर्णयसागर प्रेसनी प्राचीन लेखमाला (भार० ले० १००) मां प्रकट थयेल यमक

मिला। मुहम्मदशाह ने उसे सत्कार किया। वह शाह की सभा में प्रतिदिन आता था। एक समय सभा मे आचार्य राघवचैतन्य आदि विद्वान् वार्ता-विनोद कर रहे थे उस समय आचार्य के प्रभाव से असहिष्णु होकर राघव-चैतन्य ने ईर्ष्या और दुष्टता से विचार किया कि जैसे-तैसे इस पर कोई लाछन लगाकर, अपमानित करवाकर यहाँ से निकलवा दूँ, तब भी मेरे प्रभाव मे वृद्धि होगी। ऐसा विचार कर विद्याबल से शाह के हाथ से मुद्रिका हरण कर आचार्य न जाने इस प्रकार आचार्य के रजोहरण में नाख दी। प्रभावती ने तत्काल ही आचार्य को कहा—'राघव चैतन्य ने शाह की मुद्रिका हरण कर तुम्हारे रजोहरण मे नाख दी है, सावधान रहो। उसी समय आचार्य ने वह मुद्रारत्न लेकर राघव चैतन्य न जाने इस प्रकार उसके मस्तकोपरिवस्त्र पर रख दी। इसी समय मुहम्मदशाह अपनी अगुली

छटावाला ज्वालामुखी देवी स्तोत्रना रचनार राघव चैतन्य मुनि आ जणाय छे। ते स्तोत्र (शिलालेख) मा तेना नामनुं सूचन छे, कागडा (पंजाब) ना राजा संसारचन्द्रनी प्रशस्ति पछी त्या प्रस्तुत साहि महम्मदनी कीर्ति-रूप ते परमयोगिनी (ज्वालामुखी) ने सूचवामा आवी छे—

श्रीमद्राघवचैतन्यमुनिनाब्रह्मवादिना।
[स्तव] रत्नावली सेयं ज्वालामुख्यै समर्पिता।
श्रीमत्साहिमहम्मदस्य जयतात् कीर्तिः परायोगिनी।

नि. सा. नी काव्यमालाना प्रथम गुच्छकना प्रारंभमा मूकायेल मन्त्र-मालागर्भित महागणपतिस्तोत्रना कर्तापण आ कवि जणाय छे। तेनी व्याख्या-टिप्पणीमा तेने 'परमहंस परिव्राजका चार्य' विशेषण थी परिचय कराव्या छे। शार्ङ्गधरे शार्ङ्गधरपद्धति (सुभाषितावली) मा केटलाक पद्यो 'श्रीराघवचैतन्यश्रीचरणाना' उल्लेख साथे सूचवेलां छे, तथा शाकंभरीश्वर हम्मीर चाहुवाण (चौहाण) नी राजसभाने शोभावनार द्विजागुणी राघवदेवना पौत्रतरीके पोतानो परिचय कराव्यो छे। एथी ए राघवदेव ज सन्यासी थया पछी राघवचैतन्य नामे प्रसिद्ध थया हशे-एम जणाय छे।"

में मुद्रा न देखकर ढूंढने लगा—नहीं मिली। शाह ने कहा कि—अभी तो मुद्रिका मेरे पास थी, कहाँ गई ? किसने चुराई है ? यह सुनते ही राघव चैतन्य शीघ्र बोला—शाह ! आपकी मुद्रिका तो जिनप्रभ के पास है। शाह ने आचार्य से मुद्रिका मांगी तो आचार्य ने कहा—'राघव के पास है, राघव ने अपने सारे वस्त्र दिखाये किन्तु मुद्रिका नही मिली। आचार्य ने कहा—'इसके शिर पर है।' मस्तक पर देखने से मुद्रिका प्राप्त हुई। शाह ने मुद्रिका लेकर राघव चैतन्य को कहा—"तुम्हे धन्य है ! तुम सत्यवादी हो ! जो स्वयं तस्करवृत्ति करके आचार्य पर दोषारोपण करते हो ! इससे राघवचैतन्य श्यामीभूत होकर अपने स्वस्थान को गया।

कलंदर का गर्वहरण

एक समय आचार्य सभा में बैठे हुए थे। उसी समय खुरासाण से विद्यावान एक कलंदर (मुस्लिम फकीर) राजसभा मे आया। उसने शाह पर अपना प्रभाव जमाने की दृष्टि से स्वयं की कुल्लह (टोपी) उतार कर आकाश मे फेंककर मुहम्मदशाह को कहा–'शाह ! तुम्हारी सभा मे ऐसा कोई है ? जो इस टोपी को उतार सके ?' शाह ने सभा की तरफ दृष्टि डाली। दृष्टि संकेत को समझकर आचार्य ने शाह से कहा–'राजन् ! मैं जो कर्त्तव्य दिखाता हूँ, उसे देखो !' यह कहकर आचार्य ने रजोहरण (धर्मध्वज) को आकाश में फैंका और उस (रजोहरण) ने आकाश मे जाकर उस टोपी को पीटता हुआ नीचे लाया।[1]

अन्य दिवस एक पनीहारिन को पानी के भरे हुये घडे सिर पर रख कर जाते हुए देखकर मौलाना ने उन घड़ों को निराधार स्तंभित रखा—

---

१. पंचशतीकथाप्रबन्ध के अनुसार विशेषता यह है "आचार्य ने टोपी को आकाश में ही स्तंभित कर दी और मुल्ला आकर्षण प्रयोग से अपनी टोपी वापस नीचे न उतार सका तब शाह के निर्देश से आचार्य ने रजोहरण फेंककर टोपी नीचे उतारी।

पनीहारिन चली गई। घड़ों को आकाश में निराधार देखकर शाह चमत्कृत होकर मुल्ला की प्रशंसा करने लगा। तब आचार्य ने कहा—'घड़ा क्या, यदि पानी निराधार रहे तो चमत्कार माना जाय!' शाह ने कौतुक से मौलाना को कहा, किन्तु मौलाना न कर सका। आचार्य ने उसी समय कंकड़ फेंककर दोनों घड़ों को फोड दिया और पानी को निराधार स्तम्भित रखा।[1]

अद्भुत निमित्त कथन

एक समय सभा मे बैठे हुये कौतुक-प्रिय शाह ने सभा में स्थित समस्त विद्वानों को लक्ष्य करके कहा—'विज्ञो ! आप लोग यह बतलाइये कि 'प्रात:काल मैं किस मार्ग से रयवाडी (राजपाटी) जाऊँगा ? यह सुनकर सब विद्वानो ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार विचार करके पत्र मे लिखकर शाह को दिया। शाह के संकेत से आचार्य ने भी पत्र लिखकर दिया। उन सब पत्रों को शाह ने अपने दुपट्टे में बाँध लिया। शाह ने विचार किया कि यह समय है जब कि सबको असत्यवादी सिद्ध करू''। ऐसा विचार कर प्रात काल बंदर बुर्ज[2] को तुड़वाकर बाहर निकला और क्रीडा कर एक स्थान पर बैठकर समस्त विद्वन्मडली को वहाँ बुलवाया और कहा कि आप सब अपने-अपने पत्र बाँचे ? समस्त विद्वानो ने स्वयं लिखित पत्रो को पढा—सब कल्पित (असत्य) थे। आचार्य ने भी अपना लिखा हुआ पत्र पढ़ा, उसमे लिखा था—'बंदर बुर्ज को तुडवाकर, क्रीड़ा कर शाह वट वृक्ष के नीचे विश्राम करेगा।' यह सुनकर शाह चम-

---

१ वृ. प्र. के अनुसार—आचार्य ने घडा फोडकर पानी को घडे का आकार देकर निराधार रखा। यह देखकर शाह ने कहा—'पानी का कण फुसिया (अलग) करो।' तो आचार्य ने वैसा ही किया।

२. किसी स्थान पर 'किल्ले की २१ वें लंगक के पास की ३१ थरों की ईंटें दूर करवाकर शाह गया।

त्कृत[1] हुआ और बोला कि 'यह आचार्य साक्षात् परमेश्वर तुल्य है और इसकी देवता भी सेवा करते है।'

वटवृक्ष को साथ चलाना

मुहम्मद शाह ने आचार्य जिनप्रभ से कहा—'भगवन्!, यह वड[2] सुन्दर और शीतल छाया वाला है तो आप ऐसा करे कि यह वृक्ष भी हमारे साथ चले, जिससे इसकी शीतल छाया का हम आनन्द उठा सकें।' आचार्य ने वैसा ही किया। वृक्ष पाँच कोस तक छाया प्रदान करता हुआ साथ चला। अन्त मे शाह ने वापस लौटाने को कहा तब आचार्य ने उसे वापस जाने का आदेश दिया, वह अपने स्थान पर चला गया।

क्या भोजन करूँगा ?

एक समय सुलतान ने कहा कि आज मैं क्या भोजन करूँगा ? आचार्य ने पत्र में लिखकर शाह को दिया और कहा कि भोजन करने के पश्चात् पत्र पढे। तदनुसार शाह ने खल (खोल) ? का भोजन किया और पत्र खोलकर पढा तो आश्चर्य चकित हो गया कि वही लिखा था कि 'खल' का भोजन करेंगे।

मीठी कहाँ

एक समय सुलतान ने विनोद से समस्त सभासदो से पूछा कि 'शक्कर किसमे डालने से मीठी लगती है ? सभासदस्य-प्रधानो और विद्वानो के उत्तर न देने पर आचार्य ने कहा—'शक्कर मुख में डालने से मीठी लगती है।'

---

१. इस प्रकार का वृत्तान्त महाराज भोज और महाकवि धनपाल का भी प्राप्त होता है।

२. आम्रवृक्ष का भी उल्लेख है।

सरोवर छोटा कैसे हो ?

एक समय सुलतान क्रीड़ा करते हुए बाहर के उद्यान में आये। वहाँ एक सरोवर पानी से लबालब भरा हुआ देखकर अपने समस्त साथियों (प्रधानों और विद्वानों) को कहा— मिट्टी डाले बिना ही सरोवर छोटा कैसे हो ? किसी के भी उत्तर न देने पर आचार्य ने कहा—'शाह ! इस सरोवर के निकट ही यदि एक बड़ा सरोवर बना दिया जाय तो यह स्वत ही छोटा हो जायगा।'

पृथ्वी पर मोटा फल कौन-सा ?

एक समय सुलतान ने आचार्य से पूछा कि 'कहो गुरुजी ? पृथ्वी पर सब से बडा फल कौन-सा होता है ?' आचार्य ने तत्काल ही प्रत्युत्तर दिया—राजन् ! समस्त जगत को ढाँकने वाला होने से वडणि (वण-कपास) का है।

विजययंत्र महिमा

एक समय सम्राट् ने आचार्य से विजययन्त्र का आम्नाय पूछा। आचार्य ने कहा—राजन्, यह आपका विषय नही है। सम्राट् ! यह यंत्र जिसके पास में होता है उसका आघात दैविक शस्त्र भी नही कर सकते ! और भयंकर से भयंकर शत्रु भी उसे पीडा नही पहुँचा सकते।' यह सुनकर शाह ने उसकी परीक्षा के लिये आचार्य से यंत्र बनवाकर एक बकरे के कंठ मे बांध दिया और उस पर तलवार आदि शस्त्रो का आघात किया, किन्तु उस पर तनिक भी आघात नही हुआ।

उस विजय-यंत्र को छत्रदंड पर बाँधकर उसके नीचे चूहे को छोड़ दिया और उसकी घात के लिये बिल्ली को छोड़ दिया। चूहे को देखते ही बिल्ली उस पर झपटी किन्तु छत्रदण्ड की सीमा में प्रवेश भी न कर सकी।

इस प्रकार यंत्र का चमत्कार देखकर चमत्कृत हुआ और ताम्रमय दो यंत्र बनवाकर एक सम्राट् ने स्वयं रखा और दूसरा आचार्य को प्रदान

किया। तब से सम्राट् स्थान, यान, घर, ग्राम, सभा, एकान्त, बन आदि किसी भी स्थान पर आचार्यजी को साथ ही रखता था।

मरुस्थल मे दान

एक समय शाह मरुस्थल प्रदेश मे आया। स्थान-स्थान पर मारवाड के नगरनिवासी हाथो में भेट लेकर सामने आते थे। वहाँ के निवासियो को सामान्य वेश मे देखकर शाह ने आचार्य से पूछा—गुरुजी ! यहाँ की नारियाँ आभरणरहित है, वेष-भूषा सामान्य है तो क्या इन लोगो को किसी ने लूट लिया है या किन्ही अपराधो मे दडित हुये है ?' आचार्य ने कहा—सम्राट् ! यह मरुदेश रुक्ष और धनहीन है—इसी कारण से यहाँ के निवासी दरिद्र-प्राय गरीब है—और कोई कारण नही है।' यह सुनकर शाह ने प्रत्येक पुरुष को पाँच-पाँच वस्त्र और प्रत्येक नारी को साडी के साथ स्वर्ण के दो टक प्रदान किये।[१]

ज्वर का जल मे आरोप

एक समय आचार्य ज्वर आ जाने से सम्राट के पास न जा सके। सम्राट् गुरुजी को ज्वरग्रस्त सुनकर आश्रम मे आया और गुरुजी से कहा—ज्वर को भगाइये। आचार्य ने कहा वह अपना भोग लेकर जायेगा। फिर भी शाह के आग्रह से जल-पात्र मँगवाया और ज्वर का उसमे आरोप कर शाह से वार्ता करने लगे। जल-पात्र जलने लगा और कलकल शब्द करने लगा। शाह के जाने के पश्चात् आचार्य ने जलपात्र का पानी पी लिया। ज्वर पुन चढ गया और अवधि पूर्ण होने पर चला गया।

तैलंग बन्दी मोचन

एक समय फीरोजशाह ने तैलंग देश पर विजय प्राप्त कर १ लाख ६९

---

१. किसी पट्टावली-मे—प्रत्येक स्त्री को सौ-सौ दीनार देने का उल्लेख है तो किसी में 'प्रत्येक स्त्री को पाँच-पाँच स्वर्ण टंक मय पात्र' देने का उल्लेख है।

हजार बंदियों को मारने का आदेश दिया। यह जानकर आचार्य सम्राट् के पास आये और कहा कि इस प्रकार अन्याय हो रहा है, रोकिये। सम्राट् ने कहा—मुझे क्या मालूम कि तैलंग में क्या अन्याय हो रहा है, मुझे दिखाओ। आचार्य ने स्वप्नावस्था में समाट् को तैलंग ले जाकर सारी स्थिति दिखाई। दूसरे दिन सम्राट् ने उन १ लाख ६९ हजार बंदियो को मोचन का आदेश दिया।

अमावस्या की पूर्णिमा

कहा जाता है कि एक समय सभा में 'आज कौन-सी तिथि है' इस प्रश्न पर आचार्यश्री के मुख से या उनके शिष्य के मुख से सहसा निकल गया कि 'आज पूर्णिमा है।' वस्तुत थी अमावस्या। सम्राट् ने मजाक किया कि आचार्य! आज है तो अमावस्या किन्तु रात्रि तो चन्द्रिकाधौत रहेगी ही। आचार्य ने कहा—हाँ। तदन्तर उपासक से रजत का थाल मंगवाकर मंत्रित कर आकाश में फेंका। आचार्य के प्रभाव से अमावस्या की अंधकारपूर्ण रात्रि भी चन्द्र की ज्योत्स्ना से धवलित हो रही थी। शाह ने परीक्षा के लिये १२-१२ कोस तक घुडसवारों को भेजकर परीक्षा करवाई—सत्य रही।

महावीर प्रतिमा का बोलना

कन्यानयनीय महावीर-प्रतिमा जो म्लेच्छो द्वारा हरण की गई थी और जो राजमहल के पगोथियों पर पडी थी—जिस पर सब आते-जाते थे। आचार्य ने देखी और राजमहल में शाह के पास जाकर कहा—'आप यदि दे तो मैं एक प्रार्थना करूँ?' शाह ने कहा—'माँगिये, मैं अवश्य दूँगा।' आचार्य ने कहा—'राजमहल के द्वार पर रखी हुई महावीर-प्रतिमा दीजिये।' शाह ने उसी समय उस प्रतिमा को अपने राजमहल में मंगवाई। उस प्रतिमा की मनोहारी प्रशान्त मुद्रा देखकर शाह का हृदय खिल उठा और उसने कहा–'यह प्रतिमा तो मैं नहीं दूँगा।' सुनकर आचार्य ने कहा–'तो मेरा आगमन निरर्थक हुआ?' शाह ने कहा—'यदि यह प्रतिमा मुख से बोले तो मैं आपको प्रदान कर दूँगा।' आचार्य ने कहा—आप यदि पूजा-

सत्कार करें तो भगवान् अवश्य बोलेंगे।' शाह ने विधि के अनुसार पूजा-सत्कार किया और पूजक के वेष में ही प्रार्थना की—'भगवन्! मेहरबानी करके बोलिये।' उसी समय महावीर प्रतिमा ने जीमणा (दाहिना) हाथ फैलाकर कहा—[१]

"विजयतां जिनशासनमुज्ज्वलं, विजयतां भूभुजाधिपवल्लभः।
विजयतां भुवि साहिमहम्मदो, विजयतां गुरुसूरिजिनप्रभ.॥"

इस पद्य का अर्थ गुरु के मुख से श्रवण कर सम्राट् ने कहा—'इस देव को क्या दूँ?' आचार्य ने कहा—'शाह! ये देव सुगन्धित द्रव्यों से प्रसन्न होते हैं।' सूरिमुख से श्रवण कर मुहम्मदशाह ने खरट और मातड नाम के दो गाँव पूजा-सत्कार के लिये प्रदान किये। श्रावक-गण धूप लाकर सदैव धूप-पूजा करने लगे और सम्राट् ने वहाँ नया प्रासाद निर्माण करवाया।

रायण वृक्ष से दूध बरसाना

कन्यानयन महावीर-प्रतिमा का चमत्कार देखकर सम्राट् ने कहा—'गुरुजी!, कान्हड महावीर के समान चमत्कारी और भी कोई तीर्थ है?' आचार्य ने 'शत्रुञ्जयतीर्थ की प्रशसा की।' कौतुक-प्रिय और दर्शनोत्सुकी सम्राट् ने गुरु की आज्ञा से सघ लेकर शत्रुञ्जय गया। तीर्थ के दर्शन कर शाह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उस समय आचार्य ने कहा—'यदि इस रायणवृक्ष को मोतियो से बधाया जाय तो यह वृक्ष दूध की वर्षा करता है।' सम्राट् ने रायण को मोतियो से बधाया, उसी समय रायण से दूध झरने लगा।

आचार्य ने सम्राट् को सघपति की क्रिया करवा कर सघ के समक्ष सघपति पद प्रदान किया। सम्राट् ने वहाँ अपनी आज्ञा अकित करवाई कि 'जो इस तीर्थ की आशातना करेगा वह पातिसाह का अपमान करेगा।'

---

१ पंचशती के अनुसार प्रतिमा ने शाह के २१ प्रश्नों के उत्तर प्रदान किये।

तीर्थ से उतर कर सम्राट् ने सब लोगों से कहा कि 'अपने-अपने देवों की प्रतिमाओं को लाओ।' शाह के आदेश से सब अपने-अपने देवों की प्रतिमाओं को लाये। सब प्रतिमाओं को एकत्रित देखकर शाह ने कहा— 'इन सब मे बडा देव कौन है ?' इस प्रश्न का किसी ने उत्तर नही दिया। तब शाह ने अर्हत्प्रतिमा को बीच में रखकर आजू-बाजू अन्य प्रतिमाएँ रखी और इसी प्रकार स्वयं मध्य में बैठकर अपने दोनो तरफ सशस्त्र सैनिको को खडा करके पूछा—'कौन बडा है ?' सबने कहा—'आप बडे है।' सुनकर सम्राट् ने कहा—'वैसे ही शस्त्र-रहित होने से जिनदेव बडे है और शस्त्रधारी देव इनके रक्षक है।' जनता ने कहा—'आपके वचन प्रमाणीभूत है।'

वहाँ से सम्राट् संघ सहित गिरनार तीर्थ आया और तत्र स्थित भगवान् नेमिनाथ की प्रतिमा को अच्छेद्य और अभेद्य सुनकर परीक्षा के लिये प्रतिमा पर आघात किये। आघात से प्रतिमा अग्निकण उगलने लगी। यह देखकर, क्षमा याचना कर, नमस्कार कर १०० स्वर्णटंको से प्रतिमा को बधाया।

चौसठ योगिनी प्रतिबोध

एक समय आचार्य व्याख्यान दे रहे थे। उस समय ६४ योगिनियाँ उनको छलने के लिये श्राविका (उपासिका) रूप मे उपाश्रय मे आकर सामायिक लेकर बैठ गई। पद्मावती ने आचार्य को संकेत किया कि 'ये योगिनियाँ आपको छलने के लिये आई हैं।' आचार्य ने उनकी तरफ दृष्टि-क्षेप करके देखा तो प्रतीत हुआ कि वे अपलक निर्निमेष दृष्टि से मेरी तरफ देख रही है—और मानो वे व्याख्यान-सुधा से तृप्त हो रही हों। आचार्य ने मंत्र-शक्ति से उनको स्तंभित कर दी। उपदेश के पश्चात् समस्त उपासक वर्ग अपने स्थान को चला गया। वे योगिनियाँ भी उठने लगीं—किन्तु देखा कि आसन चिपक रहा है, पुनः बैठ गई। यह देखकर आचार्य ने कहा—उपासिकाओं! साधुओं के गोचरी के लिये जाने का समय हो गया है

अतः आप लोग वंदन करके स्वस्थान जायें। योगिनियाँ बोली---भगवन्, अपराध क्षमा हो, हम तो आपको छलने के लिये यहाँ आई थी किन्तु हम स्वयं आप से छली गईं। कृपाकर हमें मुक्त करिये।' आचार्य ने कहा---यदि आप लोग मुझे 'वचन' दे तो मैं आप लोगो को मुक्त कर सकता हूँ।' योगिनियाँ बोली---आप क्या वचन चाहते है ? हम देने का बाधित है। आचार्य ने कहा---'हमारे गच्छ के आचार्य योगिनीपीठ (उज्जैन, दिल्ली, अजमेर और भरुच) की तरफ विहार करे तो उन्हे किसी भी प्रकार का उपद्रव-परीषह नही होना चाहिये।' योगिनियो ने स्वीकृति दी। आचार्य ने उन्हे मुक्त किया वे अपने स्वस्थान को चली गईं।[1]

सघ का उपद्रव निवारण

एक नगर के उपासक वर्ग दो देवियो के रोगादि उपद्रवो से अत्यन्त पीडित थे। नागरिको के कई उपचार किये गए किन्तु सफल न हो सके। अंत मे उन्होने दो प्रतिनिधियो को आचार्य के समीप भेजा। वे दोनो उपासक आचार्य के समीप आये। उस समय आचार्य ध्यानावस्था में थे और उनके समीप दो सुन्दर युवतियाँ खडी थी। युवतियो को देखकर दोनो उपासक विचार करने लगे कि 'गुरुजी के पास तो युवतियो का परिग्रह (सान्निध्य) है। यहाँ निवेदन करने से हमे क्या सफलता मिलेगी' वापस लौटने लगे, किन्तु स्तभित हो गये। इसी समय आचार्य ने ध्यान पूर्ण किया और उसी समय दोनो युवतियो ने प्रश्न किया—'भगवन्! आपने हमें किसलिये बुलाया है।' आचार्य ने कहा—'तुम दोनो सघ मे उपद्रव करती हो, इसलिये तुम्हे शिक्षा देने के लिये यहाँ बुलाया है। देवियो ने कहा—'भगवन् अब आज से उपद्रव नही करेंगी—हमे क्षमा कीजिये। आचार्य के क्षमा करने पर वे दोनो देवियाँ चली गई और दोनो उपासक भी मुक्त हो गये। दोनो उपासको ने नमन कर देवियो का कारण पूछा। गुरुदेव ने कहा—

१ इस प्रकार का प्रसंग दादा जिनदत्तसूरि के जीवन मे भी आता है, तुलना करे।

'सुना था कि आपके नगर में ये दोनों देवियाँ उपद्रव कर रही हैं, इसीलिये इनको बुलाया था। अब आगे से संघ मे किसी प्रकार का उपद्रव नहीं होगा। यह सुनकर दोनो प्रतिनिधि अत्यन्त प्रसन्न हुये और अपने नगर मे आकर यह वार्ता सुनाई।

आचार्य सोमप्रभ से मिलाप और चूहों को शिक्षा

एक समय सुलतान के साथ प्रवास करते हुये आचार्य जिनप्रभ जंघराल नगर (पाटण के निकट) पहुँचे। वहाँ उस समय तपागच्छ के आचार्य सोमप्रभसूरि विराजमान थे। उनसे मिलने को आ० जिनप्रभ उनके उपाश्रय (स्थान पर) गये। आ० जिनप्रभ को आये देखकर आचार्य सोमप्रभ ने अभ्युत्थानादि द्वारा उनका बहुत स्वागत-सत्कार करते हुये कहा—'आचार्य देव ! आप आराध्य हैं। आपके प्रभाव से आज सर्वत्र जैन-शासन का जय-जयकार हो रहा है। आपकी शासन-सेवा अतुलनीय है।' आचार्य जिनप्रभ ने प्रत्युत्तर मे कहा—आचार्यवर ! आप क्या कह रहे है ? सम्राट् के साथ रहने के कारण हम सयम क्रिया यथावत् पालन नही कर पाते है। आपकी शास्त्रीय साधु-दिनचर्या श्लाघनीय और अनुकरणीय है।' इस प्रकार दोनो आचार्य प्रेमालाप मग्न थे।

उसी समय एक मुनि ने प्रतिलेखन करते हुये अपनी सिक्किका (झोली) को चूहों द्वारा काटी हुई देखकर–सोमप्रभसूरि (अपने गुरु) को दिखाई। आ० जिनप्रभ पास मे ही बैठे हुये थे; आकर्षण से समस्त चूहों को वहाँ बुलाया—वे आकर भयभीत होकर सामने खडे हो गये। आचार्य ने उनसे कहा—'तुम में से जिस किसी ने वस्त्र काटने का अपराध किया हो, वह यहाँ रहे और सब चले जायें। अपराधी चूहे को छोड़कर सब चले गये। उसे भयाक्रान्त देखकर आचार्य ने उस चूहे से कहा–भय न खाओ, आगे से ऐसा अपराध न करना, तुम उपाश्रय छोड़कर चले जाओ, वह उपाश्रय से बाहर चला गया। यह आश्चर्य देखकर सब साधु बहुत

चकित हुये।[1]

खंडेलपुर के निवासियो को जैन बनाना

जागल देश (राजस्थान) के खडेलवाल गोत्रीय शिवभक्त गुड़-खाँड का व्यापार करते थे। पश्चात् गुड के स्थान पर मदिरा का व्यापार करने लगे। उन मदिरा व्यवसायी शिवभक्तो को प्रतिबोध देकर आचार्य ने उन्हे सं० १३४४ (१७४) मे जैन बनाया .

"खंडेलपुरे नयरे लेरस्सए चउत्ताले।
जगलया सिवभत्ता ठविया जिणसासणे धम्मे॥"

---

१ चूहो की शिक्षा के संबंध में पंचशतीकार ने पूर्ववृत्त इस प्रकार दिया है—किसी वेलाकुल मे धर्ममूर्ति धनसेठ रहता था। एक दिन व्यापार के लिये चौराहे पर गया। उस समय मजीठ आदि वस्तुओ से भरे हुए कई जहाज आये हुए थे। वहाँ के व्यापारी सात-आठ जहाजों का माल खरीद कर चले गये, अवशिष्ट तीन जहाजो का माल किसी ने भी नही खरीदा। धनसेठ उन्ही ३ जहाजो का माल खरीद कर ले गया। रात्रि को स्वप्नावस्था मे किसी देव ने सूचित किया—'इन जहाजो का माल ध्यान से बेचना, तुम्हारे यहाँ कल्पवृक्ष आया है।' प्रात काल उठते ही उन जहाजो के माल को देखने पर पाच रत्न प्राप्त हुये। धनश्रेष्ठि उसी समय जहाज के व्यापारी के पास जाकर पूछा कि उक्त जहाजो का माल आप ने किससे खरीदा था ? व्यापारी ने कहा—चोरो के पास से। व्यापारी के पास से लौटकर सेठ ने विचार किया कि इस धन को धर्म मे ही व्यय करना चाहिए। ऐसा विचार कर उसने नया जिनमदिर का निर्माण करवाया। इस प्रकार पापानुबन्धी को धर्मानुबन्धी किया। एक समय आचार्य जिनप्रभ को बडे आग्रह से बुलाकर अपने स्थान पर रखा और आहारादि दान से सत्कृत किया। प्रतिलेखना के समय एक साधु ने आचार्य से शिकायत की कि सिक्किका को चूहो ने काट दी इत्यादि।

कवला तथा विवाद निवारण

एक समय मेदपाट (मेवाड़) देशीय पाल्हाक नाम का वैद्य सुलतान की चिकित्सा करने के लिये आया हुआ था। एक दिन पाल्हाक कोमल्लसूरि शाखा (कंवला-उपकेशगच्छ) के उपाश्रय में गया। कोमलशाखीय यतियों ने तपागच्छ के आचार्यों की निंदा की। पाल्हाक वैद्य सहन न कर सका। कलह का रूप वार्ता तक न रहकर दण्डा-दण्डी का हो गया, किसी का हाथ टूटा तो किसी का मुख। सब कलह करते हुये सुलतान के पास आये। सुलतान ने सारा वृत्तान्त सुनकर, आचार्य जिनप्रभ के सकेतानुसार आदेश दिया कि तुम सब न्यायी भी हो और अन्यायी भी हो, दण्ड किसे दिया जाय ! जाओ, आगे से कभी कलह मत करना।

शिष्य-परम्परा

आचार्य जिनप्रभसूरि का शिष्य-परिवार विशाल था। कितना था यह तो ज्ञात नही किंतु देवगिरि जाते हुये जिनदेवसूरि के पास १४ साधुओ को छोडकर गये थे, साईबाण बाग मे ५ दीक्षाए प्रदान की थी, आदि उल्लेखो से विशाल-समुदाय होना प्रतीत होता है। वैसे आपकी परम्परा मे प्रतिभाशाली और धुरन्धर आचार्य एवं अनेको साधु हुये हैं और ऐतिहासिक प्रमाणो से १८वी शती तक आपकी परम्परा चलती रही है, जिसका सामान्य परिचय इस प्रकार है।

आचार्य जिनदेवसूरि

आपके पिता का नाम कुलधर[१] और माता का नाम वीरीणि था। जिनप्रभसूरि के आप प्रमुख शिष्यो मे से थे। जिनप्रभसूरि ने स्वहस्त से ही आचार्यपद प्रदान किया था। आचार्य जिनप्रभसूरि जिस समय सम्राट् मुहम्मद तुगलक से मिले थे उस समय आप भी साथ थे और प्रवेश महोत्सव के समय हाथी पर आप भी बैठे थे। जिस समय आचार्य जिनप्रभ ने

---

१. जिनदेवसूरि गीत (ऐति. जै का.सं.)

देवगिरि की ओर प्रस्थान किया था उस समय आचार्य जिनप्रभ ने १४ साधुओं के साथ आपको सम्राट् के पास दिल्ली में ही रखा था। एक प्रसंग का आचार्य जिनप्रभ स्वयं स्वरचित कन्यानयनीय महावीर-कल्प में किया है[1] :

"इधर दिल्ली में विराजित जिनदेवसूरि विजयकटक (शाही छावणी) में सम्राट् से मिले। सम्राट् ने बहुत सम्मान के साथ एक सराय (मुहल्ला) जैन संघ के निवास के लिये दी। इस सराय का नाम 'सुलतान सराय' रखा गया। वहाँ सम्राट ने पौषधशाला और जैन-मन्दिर बनवा दिया एवं ४०० श्रावकों को सकुटुम्ब निवास करने का आदेश दिया। पूर्वोक्त कन्यानयनीय महावीर प्रतिमा को इस सराय में सम्राट के बनवाये हुये मन्दिर में विराजमान किया गया। श्वेताम्बर-दिगम्बर एवं अन्य धर्मावलम्बी जन भी भक्ति-भाव से इस प्रतिमा की पूजा करने लगे।"

देवगिरि से दिल्ली आते हुये सूरिजी के साथियों को अल्लावपुर में मल्लिकों ने परेशान किया था, उस समय यह वृत्तान्त जानकर जिनदेवसूरि ने सम्राट से मिल कर इस उपद्रव का निराकरण करवाया था। इस से स्पष्ट है कि सम्राट के हृदय में इनके प्रति बहुत गौरवपूर्ण सम्मान था।[2]

आपके रचित कालिकाचार्य कथा और शिलोञ्छनाममाला[3] (सं १४३३) प्राप्त है।

जिनमेरुसूरि—जिनदेवसूरि के पट्टधर थे। आपके गुरुभाई श्री जिनचन्द्रसूरि थे।

जिनहितसूरि—जिनमेरुसूरि के पट्टधर थे। आपके रचित वीरस्तव

---

१ विविधतीर्थकल्प, पृ.४६।

२. वही, पृ ९५

३ शिलोञ्छानाममाला श्रीवल्लभोपाध्याय रचित टीका के साथ मेरे द्वारा सम्पादित होकर शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली है।

गा० ९ और तीर्थमालास्तव (चउवीसंपि जिणिंदे) गा० १२ एवं कर्म प्रतिष्ठित प्रतिमायें प्राप्त हैं।

जिनसर्वसूरि—जिनहितसूरि के पट्टधर थे।

जिनचन्द्रसूरि—जिनसर्वसूरि के पट्टधर थे। आपकी प्रतिष्ठित कई प्रतिमायें (सं. १४६९-१५०६) प्राप्त हैं।

जिनसमुद्रसूरि—जिनचन्द्रसूरि के पट्टधर थे। आपकी रचित रघुवंश एव कुमारसंभव टीका प्राप्त हैं।

वाचनार्थ चारित्रवर्द्धन

पंच महाकाव्यो के प्रसिद्ध व्याख्याकार वाचनाचार्य चारित्रवर्द्धन भारतीय वाङ्मय के एक समर्थ प्रतिभाशाली एवं विश्रुत विद्वान् थे। व्याकरण, निरुक्त तथा अलकार विषयक आपका ज्ञान इतना व्यापक था कि अन्य परवर्ती टीकाकारों को भी आपका 'मत' स्वीकार करना पड़ा। आपकी टीकाओ को देखने से न केवल हमें उनके व्याकरण तथा लक्षणशास्त्र के अगाध ज्ञान का पता चलता है अपितु उनके न्याय, दर्शन, जैन सिद्धान्त और साहित्य का भी पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है। अत: यह कहा जा सकता है कि आप सर्वदेशीय विद्वान् थे; यही कारण है कि आप स्वयं अपनी टीकाओं की प्रशस्ति में अपनी योग्यता का गर्व भरे शब्दों मे स्वयं का 'नरवेष सरस्वती' उपनाम ख्यापित करते हुये लिखते हैं :—

तच्छिष्य-प्रतिपक्षदुर्द्धरमहावादीभपञ्चाननो,
नानानाटकहाटकाभरगिरिः साहित्यरत्नाकर:।
न्यायाम्भोजविकाशवासरमणिर्बौद्धेति जाग्रत्प्रभो
वेदान्तोपनिषन्निषन्नधिषणोऽलङ्कारचूडामणि:॥
श्रीवीरशासनसरोरुहवासरेशः,
सद्धर्मकर्मकुमुदाकर पूर्णिमेन्दुः।
वाचस्पतिप्रतिभधीर्नरवेषवाणि—
चारित्रवर्धनमुनिर्विजयी जगत्याम्॥

× × ×

चारित्रवर्धन गणि श्री जिनप्रभसूरि की परम्परा के चौथे आचार्य श्री जिनहितसूरि के प्रशिष्य तथा उपाध्याय कल्याणराज के शिष्य थे :

वंशे श्री**जिनवल्लभस्य** सुगुरो सिद्धान्तशास्त्रार्थवित्,
दर्पिष्ठ प्रतिवादिकुञ्जरघटाकण्ठीरव सूरिराट्।
नाना नव्यसुभव्यकाव्यरचनाकाव्यो विभाख्याऽमल-
प्रज्ञो विश्रुतो **जिनेश्वर** इति प्रौढप्रतापोऽभवत् ॥१॥

शिष्यस्तदीयोऽजनि जन्तुजात-हितार्थसम्पादनकल्पवृक्ष ।
विपक्षवादिद्विपञ्चवक्त्र , सूरीश्वर- श्रीजिनसिंहसूरि ॥२॥

तत्पट्टपूर्वाद्रिसहस्ररश्मि-जिन प्रभ सूरिपुरन्दरोऽभूत् ।
वाग्देवताया रसना तदीयामास्थानपट्टं जगदु-र्बुधेन्द्रा ॥३॥

तदनु **जिनदेवसूरि**, स्वशेमुषी तर्जितत्रिदशसूरि ।
निरुपमसमरसभूरि , सूरिवर- समजनिष्ट जयी ॥४॥

तदनु **जिनमेरुसूरि**-दूरीकृतपातको निरातङ्क ।
समजनि रजनीवल्लभवदनो मदनोरगेतार्क्षः ॥५॥

गुणगणमणिसिन्धुर्भव्यलोकैकबन्धु-
विधुरितकुमतौघः प्रीणिताशेषसङ्घ ।
जिनमतकृतरक्षस्तर्जितारातिपक्षोऽ-
जनि **जिनहितसूरि**स्त्यक्तनिश्शेषभूरि ॥६॥

जिनसर्वसूरिरभवत्तत्पट्टेऽघट्टितप्रबलमोह ।
सज्जनपङ्कजराजीविकाशभास्वान्महौजस्क- ॥७॥

तस्य **जिनचन्द्रसूरि**, शिष्यो दक्ष: कलावता पक्ष- ।
कक्षीकृताखिलजनोपकारसार: सदाचार: ॥८॥

सूरि**र्जिनसमुद्रा**ख्यस्तस्य जज्ञे महामति ।
अन्तिषत्सुकृतीसाधुवृन्दाम्भोजनभोमणि: ॥९॥

जिनतिलकसूरिरस्माद् विजयी जीयादशेषगुणकलित. ।
श्रीवीरनाथशासनसरसीरुहभास्करः श्रीमान् ॥१०॥
तत्पट्टपूर्वाचलमौलिचन्द्र., विपक्षवादिद्विपञ्चवक्त्रः ।
जीयात् सदाऽसौ जिनराजसौरि', सत्पक्षयुक्तो जिनधर्मरक्ष॥११॥[1]
जिनहितसूरेः[2] शिष्यो, बभूव भूमीशवन्दिताङ्घ्रियुगः ।
कल्याणराजनामोपाध्यायस्तीर्णशास्त्राब्धि. ॥१२॥
तच्छिष्यो................ [रघुवंश टीका प्र०]

गणि चारित्रवर्धन की पूर्वावस्था का वर्णन तथा दीक्षा-शिक्षा इत्यादि वर्णन पूर्णत· अनुपलब्ध है। केवल टीकाओ की प्रशस्तियाँ देखने से यह ज्ञात होता है कि आपका साहित्य-सर्जन काल सं० १४९२ से १५२० तक का है। आचार्य जिनहितसूरि के प्रशिष्य चारित्रवर्धन थे और आचार्य-परम्परा के अनुसार प्रशस्ति निर्दिष्ट जिनराजसूरि ५वे पट्ट पर आते है। इस दृष्टि से चारित्रवर्धन का दीक्षा-काल अनुमानत· १४७० स्वीकार किया जा सकता है। चाहे कल्याणराज अतिवृद्ध हो या चारित्र-वर्धन, किन्तु यह निस्सदेह है कि इनकी दीक्षा-पर्याय बहुत बड़ी रही है। कुमारसंभव-टीका की रचना सं० १४९२ मे हुई है। इस टीका का आद्योपान्त भाग अवलोकन करने से यह निश्चित ज्ञात होता है कि यह कृति प्रारंभिक अवस्था की नही. अपितु प्रौढावस्था की है। तथा इसमें उल्लिखित स्वयं के लिये वाचनाचार्य पद को ध्यान मे रखने से ऐसा अनुमान होता है कि लगभग २०–२२ वर्ष का समय उनकी दीक्षा को हो चुका होगा। इस दृष्टि से दीक्षा-समय १४७० के लगभग ही आता है। सं० १४९२ की रचना मे जिनतिलकसूरि का उल्लेख होने से संभवतः वाचना-चार्यपद आपको इन्होने ही प्रदान किया होगा।

---

१. यह पद्य नैषध, सिन्दूरप्रकर, कुमारसंभव की प्रशस्तियों में नही है। केवल रघुवंश वृत्ति की प्रशस्ति मे हैं।

२. नैषधीय प्रशस्ति में 'जिनहितसूरे:' के स्थान पर 'जिनसिंहसूरे.' पाठ है जो गुरु परम्परा तथा छन्दो भंगदृष्टि से अयोग्य है।

इस प्रशस्ति के अनुसार आपका वंशक्रम इस प्रकार है :

- जिनवल्लभसूरि
  - जिनदत्तसूरि
    - जिनचन्द्रसूरि
      - जिनपतिसूरि
        - जिनेश्वरसूरि (द्वितीय)
          - जिनप्रबोधसूरि [बृहत्शाखा]
          - जिनसिंहसूरि [लघुखरतरशाखा]
            - जिनप्रभसूरि
              - जिनदेवसूरि
                - जिनमेरुसूरि
                  - जिनहितसूरि
                    - जिनसर्वसूरि
                      - जिनचन्द्रसूरि
                        - जिनसमुद्रसूरि (कुमारसभववृत्ति टी०)
                          - जिनतिलकसूरि
                            - जिनराजसूरि
                    - उ० कल्याणराज
                      - चारित्रवर्धन
                - जिनचन्द्रसूरि

कवि की कोई भी मौलिक कृति प्राप्त नहीं है। व्याख्या-ग्रन्थ अवश्य प्राप्त हैं जो इनकी कीर्ति को अक्षुण्ण रखने में अवश्य समर्थ हैं। तालिका इस प्रकार है :

१. रघुवंश-शिष्यहितैषिणी वृत्ति[1] अरडक्कमल्ल अभ्यर्थनया,
२. कुमारसंभव-शिशुहितैषिणी वृत्ति[2] सं० १४९२,* ,, ,,
३. शिशुपालवध-वृत्ति सहस्रमल्ल ,,
४. नैषधवृत्ति[3] सं० १५११†
५. मेघदूत वृत्ति[4]
६ राघवपाण्डवीयवृत्ति

---

१ मेरे संग्रह में।

२. गुजराती मुद्रणालय बंबई द्वारा सं० १९५४ में प्रकाशित।

३ नाहटाजी की सूचना के अनुसार गुजराती सभा कलकत्तादि में प्रतियाँ प्राप्त हैं।

★ वर्षे विक्रमभूपतेविरचिता दृग्नन्दमन्वङ्किते,
माघे मासि सिताष्टमी सुरगुरावेषोऽञ्जलिर्वो बुधाः।
[कु० सं० वृ० प्र०]

† तेनामुक्यविपक्षवादिनिकराहङ्कारविश्वम्भरा-
भृल्लेखप्रमुणा शिवेषु शशभृत् संख्या कृते वत्सरे।
टीका राघवलक्षमाघवतिथौ शक्रेण चक्रे महा-
काव्यस्यातिगरीयसो मतिमता श्रीनैषधस्यार्थदाः ॥१४॥
[नैषधप्र०]

४. मेरे संग्रह में, व मुद्रित।

७ सिन्दूरप्रकरवृत्ति सं० १५०५† उ० भीषण अभ्यर्थनया
८. भावारिवारणस्तोत्र-वृत्ति[1]
९ कल्याणमन्दिरस्तोत्र-वृत्ति[2]

रघुवंश और नैषधटीका मे तो कवि ने अपनी प्रतिभा एवं पाण्डित्य का पूर्ण उपयोग किया है। नैषध की टीका में तो कवि ने यह प्रयत्न किया है कि अन्य टीकाओं की भी यह 'जननी'—पथप्रदर्शिका बन सके.

यद्यपि बहव्यस्टीका. सन्ति मनोज्ञास्तथापि कुत्रापि ।
एषा विशेषजननी भविष्यतीत्यत्र मे यत्न ॥

यही कारण है कि गुजराती मुद्रणालय बम्बई से प्रकाशित कुमारसंभव-वृत्ति की प्रस्तावना मे सम्पादक आपके पाण्डित्य की प्रशंसा में इस प्रकार लिखता है:

''चारित्रवर्धनकृता शिशुहितैषिणी टीका , साच श्लोकाभिप्राय स्पष्टतया विशदीकरोति पदार्थांश्चाभिर्वक्ति, अतो शिशुहितैषिणी व्युत्पित्सूनामतीवोपकारिणीति सम्प्रधार्य ''

सिन्दूर प्रकर जैसे १०० पद्यों के काव्य पर ४८०० श्लोक[3] प्रमाणोपेत टीका की रचना कर, गणिजी ने अपनी असाधारण योग्यता का परिचय दिया है। इस टीका मे व्याख्याकार ने सुरुचिपूर्ण एवं मौलिक दृष्टान्तो की तो मानों माला ही खडी कर दी है।

† श्रीमद्विक्रमभूपतेरिपुवियद्वाणेन्दुसंख्यामिते
वर्षे राधसिताष्टमीगुरुदिने टीकामिमा निर्म्ममे ।
सिन्दूरप्रकरस्य चारुकरुणो निर्मापयामासिवान्,
दृष्टान्तै कलितामनाथधिषणश्चारित्रनामा मुनि. ॥११॥
वत्सरे लिखिता तस्मिन् धर्मदासेन धीमता ॥१४॥
[सिन्दूर० प्र०]

१ प्र० पुण्यविजयजी सग्रह ।

२. हीरालाल र० कापडिया द्वारा उल्लेख ।

३ अनुष्टुभा सहस्राणि, चत्वार्यष्टौ शतानि च ।
ग्रन्थसंख्या मिता यत्र, विवृत्तौ वर्णसंख्यया ॥१३॥

आपकी टीकाओं की प्रशस्तियों को देखने से यह मालूम होता है कि न केवल आप ही नरवेषसरस्वती थे अपितु आपका भक्त श्रावकवृन्द भी नरवेषसरस्वती तो नहीं किन्तु सरस्वत्युपासक अवश्य था, और इन्हीं भक्तों की अभ्यर्थना से ही इन्होंने महाकाव्यों पर अपनी लेखनी चलाई। ऊपर सूचित नं० १,३,७ के ग्रन्थों में व्याख्याकार ने जो उपासकों का परिचय दिया है वह ऐतिह्य दृष्टि से बहुत ही महत्त्व रखता है। व्याख्याकार प्रत्येक का परिचय प्रशस्तियों में इस प्रकार देता है :

"इत्यखण्डपाण्डित्यमण्डितपाण्डुभूमण्डलाखण्डलस्थापनाचार्यकर्पूरचीरधाराप्रवाहप्रभृतिविरदावलीचलितललितोत्कटवदान्यसुभटवेशलहरवंशसरसीरुहविकाशनमार्त्तण्डबिम्बप्रचण्डदोर्दण्डविकटचेवटगोत्रगोत्राभिदुन्नतसाधुश्री वेशलसन्तानीय-साधु-श्रीभैरवात्मजसाधुश्रीसहजमल्लसमर्थिता ·"

[शिशुपालवध प्र०]

× × ×

"श्रीमालवंशहंसो, डौडागोत्रे पवित्रगुणपात्रम्।
समजनि जगलूश्रेष्ठी, विशिष्टकर्मा वरिष्ठयशाः ॥१४॥
माल्लू श्रेष्ठी तस्य, प्रशस्यमूर्त्तिर्बभूव तनुजन्मा।
पुत्रोऽमुष्य स भूधर, इत्याख्यो दक्षजनमान्यः ॥१५॥
जगसीधर इति तस्माज्जात. स्मरविग्रह' कलानिलयः।
तस्यापि लखमसिंहस्तनयो विनयी नयाभिज्ञः ॥१६॥
तेजपालस्ततो जज्ञे, सुतो मुख्यात्मणोपि च।
पीप्पडो बाहड़ा न्यूनधर्मं शर्मनिधिः सुधीः ॥१७॥
अमुष्यमुख्यो दाक्षिण्यभाजनं तनुजो जयी।
वेचसिंह इति स्वान्त.वासिताऽर्हत्पदाम्बुजः ॥१८॥
साधुः सालिगनामाऽभूत्पुत्रः स चरित्रभूः।
एतस्याङ्गसमुद्भूताश्चत्वारोऽपि जयस्वमी ॥१९॥

आढ़ः साधुधियां भूमिर्भैरवो रिपुभैरवः ।
ततः सेहुण्डनामा च, धर्मधामा मनोरम ॥२०॥
अरउक्कमल्लस्तुर्यो, वर्यो धुर्यः सताममात्सर्य. ।
सत्कार्यो धर्मधनो, मनोहरः सकलललनानाम् ॥२१॥
यद्यप्येष कनिष्ठस्तदपि गुणैर्ज्येष्ठ एव विख्यातः ।
कान्तगुणोऽजणुबुद्धिः शुद्धाचारो विचारज्ञः ॥२२॥
तत्त्वादगत्वरमन्त्राखिलमुख्यौं वस्तुजातमवधार्य ।
यो धर्म एव बुद्धिं विदधाति नितान्तगुरुधिषणः ॥२३॥
एतेनाभ्यर्थितोऽप्ययं ··· · ·· ····· · ·

[कुमारसंभववृत्ति प्र०]

× × ×

इसी श्रीमालवंशीय डौडागोत्रीय अरउक्कमल्ल की अभ्यर्थना से रघुवंश काव्य[1] की व्याख्या का भी प्रणयन किया है ।

× × ×

श्रीमालवंशसरसीरुहतिग्मभानु', सड्ढोरगोत्र कुमुदाकरशीतभानु ।
धाकु इति प्रथितचारुयशोविलास', श्रीमानभूच्छुभमतिर्यतिपादसेवी ॥१॥
तस्याङ्गजोऽजनि जनव्रजनीरजाको, बीजाभिधो विधुत····विपक्षलक्षः ।
कक्षीकृताखिलमहोपकृतिर्कृतज्ञ', सर्वज्ञशासनसरोजमरालमौलि ॥२॥
तत्पुत्र. कामदेवोऽभूत्, कामदेव-समद्युति' ।
अर्थिना कामदः कामं, सामजातगतिः (?) कृती ॥३॥
तस्याङ्गभू समजनिष्ट विशिष्टकीर्त्तिर्श्रीवैरसिंह इति सिंहसमानशौर्य ।
वर्य सता गुणवता प्रथमः पृथुश्रीस्तीर्थङ्करक्रमसरोरुहचञ्चरीकः ॥४॥
पुत्रस्तदीयोऽजनि वस्तुपालः, शुभाशयोऽर्द्धेन्दुसनाभिभालः ।
जिनेन्द्रपादार्चननाकपालः, समस्तवैरिव्रजनाशकालः ॥५॥

---

१. इति श्रीमालान्वयसाधुश्रीसालिगतनुजश्रीअरउक्कमल्लसमभ्यर्थित······················ ×

अभूतामस्य पुत्रौ द्वौ, सच्चरित्रपवित्रितौ ।
ज्येष्ठ. सहजपालाख्यो, द्वितीयो भीषणः प्रभु· ॥६॥
निर्दूषणो योनिजवंशभूषण, गुणानुरागेण वशीकृताशयः ।
अनन्यसामान्यवराण्यता दधद्दधाति नि·केवलमेव धर्मताम् ॥७॥

य: कारुण्यपयोनिधिर्गुणवता मुख्य· सतामग्रणी—
र्माघर्द्वं (?) रिकुलेभकेशरिशिशुर्विश्वोपकार-क्षम. ।
धर्मज्ञ सुविचक्षण. कविकुलै· संस्तूयमानो वशी,
जीयाज्जैनमताम्बुजैकमधुप· श्रीभीषणः शुद्धधी : ॥८॥

देवगुरुचरणनिरतो विरतो पापात् प्रमादसंत्यक्त. ।
सोऽयं भीषणनामा कामा तनुर्भाति धर्ममति. ॥ ९ ॥
सोहमभ्यर्थितोऽत्यर्थं टीका ठक्कुरभीषणैः ।
सिन्दूरप्रकरस्यास्याकार्षं चारित्रवर्धन. ॥ १० ॥

[सिन्दूरप्र० वृ०]

× × ×

उपासको के लिये रघुवंश, कुमारसंभव तथा शिशुपालवध इत्यादि महाकाव्यो पर प्रौढ एवं परिष्कृत शैली में व्याख्या करना, उपासकों की योग्यता और बुद्धिमत्ता का प्रदर्शन करता है ।

देशलहर सन्तानीय चेचटगोत्रीय भैरवसुत सहस्रमल्ल, श्रीमालवंशीय डौडागोत्रीय सालिगसुत अरउक्कमल तथा श्रीमालवंशीय ढोरगोत्रीय ठक्कुर भीषण प्राय. विहार और उत्तर प्रदेश के ही निवासी थे और यह निश्चित है कि लघुखरतरशाखा का फैलाव भी इसी प्रदेश मे था । आगे भी हम देखते हैं कि १७ वी शती के अन्तिम चरण में जब इस लघु शाखा-परम्परा का ह्रास हो जाता है तो बृहत्शाखीय जिनराज-सूरि के शिष्य जिनरंगसूरि को इस शाखा के अनुयायी स्वीकार लेते है जो आज भी इसी रूप में अवस्थित हैं । अत. चारित्रवर्धन का विहार-भ्रमण प्रदेश भी यही प्रदेश रहा है । केवल २,४,७ नं० की कृतियो में संवत् का उल्लेख प्राप्त है, अन्यों में नहीं । नैषधटीका की रचना सं १५११ में

हुई है। यदि इस रचना को अन्तिम मान ले तो अनुमानत. १५२० तक आप विद्यमान रहे होगे।

प्रस्तुत भावारिवारणस्तोत्र-टीका की भाषा-शैली तथा वैशिष्ट्य देखते हुए यह निश्चितरूप से कह सकते है कि यह प्रारम्भिक व्याख्या कृति है। इसमे स्वनाम के साथ वाचनाचार्यपद का उल्लेख होने से सं० १४९० के पूर्व ही इसकी रचना हुई होगी। यह प्रारभिक कृति होने पर भी व्युत्पत्ति की दृष्टि से उत्तम और पठनीय है।

न केवल गणि चारित्रवर्धन ही देवी पद्मावती के उपासक थे अपितु 'जैनप्रभीय' सारी परम्परा ही पद्मावती को इष्ट मानकर उपासना करती रही है। यही कारण है कि नैषधीय व्याख्या के प्रारंभ मे ही चारित्रवर्धन लिखते है :

पद्मावती भगवती जगती नतस्या, भूयाद्भूयार्त्तिशमिनी जगतो वयस्या।
नागाधिराजरमणी रमणीयहास्या, देवैर्नुता मम विकाशिसरोरुहास्या ॥२॥

जिनतिलकसूरि—जिनसमुद्रसूरि के पट्टधर थे। आपकी प्रतिष्ठित प्रतिमाओ के लेख स० १५०८ से १५२८ तक के उपलब्ध है।

जिनराजसूरि—जिनतिलकसूरि के आप पट्टधर थे। आपकी प्रतिष्ठित कई प्रतिमाये प्राप्त है।

जिनचन्द्रसूरि—जिनराजसूरि के आप पट्टधर थे। आपकी प्रतिष्ठित कई प्रतिमाएँ प्राप्त हैं।

जिनभद्रसूरि—आपकी भी प्रतिष्ठित कई प्रतिमायें प्राप्त हैं।

जिनमेरुसूरि—

जिनभानुसूरि—आप जिनभद्रसूरि के शिष्य थे।

विद्वद् परपरा

अभयचन्द्र—जिनहितसूरि के पौत्र और उपाध्याय आणंदराज के शिष्य थे। आपकी रचित गुणदत्तकथा और 'रत्नकरण्डक' (सुभाषित) प्राप्त है।

विद्याकीर्ति—जिनतिलकसूरि के शिष्य थे। आपके रचित जीवप्रबोध प्रकरण (भाषा) (सं० १५०५ हिसार) प्राप्त है।

राजहंस—जिनतिलकसूरि के शिष्य थे। आपकी निम्नोक्त रचनाएँ प्राप्त हैं—वाग्भट्टालंकारटीका (सं० १४), दसवैकालिकबालावबोध, प्रवचनसार, जिनवचनरत्नकोष, एवं वर्धमानसूरि आदि के प्राकृतप्रबन्ध।

महीचन्द्र—जिनराजसूरि के पौत्र उपाध्याय कमलचन्द्र गणि के शिष्य थे। आपकी रचित उत्तमकुमारचौपाई (सं० १५९१ वै० शु० ३) प्राप्त है।

लक्ष्मीलाभ—आपके प्रणीत भुवनभानुकेवलिचरित्र प्राप्त है।

चारित्रवर्धन—देखें पृष्ठ ७९ से ८८ तक।

भानुतिलक—वा० भारतीचन्द्र के शिष्य थे। आपकी प्रणीत गुणस्थान प्रकरण टीका प्राप्त है।

समयध्वज—आप सागरतिलक के शिष्य थे। आपकी रचित सीतामती चौ०(सं० १६११ मा० व० ३) और पार्श्वनाथ फागु प्राप्त है।

(१) वि० सं० १५८५ वैशाख शुक्ला ५ गुरुवार को जिनप्रभसूरि परम्परीय मुनिराज के उपदेश से श्रीमालवंशी श्राविका रूपाई ने सचित्र कल्पसूत्र एव कालिकाचार्य कथा लिखवाई। जिनचन्द्रसूरि के समय में उपाध्याय सागरतिलक से शिष्य समयध्वजोपाध्याय को श्राविका पूरी ने समर्पित किया।[1]

(२) सं० १६३५ कार्तिक कृष्णा ७ गुरुवार को आगरा में मुमुक्षु देवतिलक ने जिनप्रभसूरि रचित पर्युषणकल्पपञ्जिका की प्रति लिखी थी।

(३) १६४१ को सिंघानकपुर में जिनहितसूरि के शिष्य आदिदेव मुनि ने जिनभानुसूरि के समय में समयसारनाटक-वृत्ति की प्रति लिखी थी।[2]

(४) १७२६ फाल्गुन शुक्ला १० को उपाध्याय लब्धिरंग के शिष्य पं० नारायणदास की प्रेरणा से कवि हेमराज ने नयचक्र वचनिका बनाई थी।[3]

१-२ जयचन्द्रजी भंडार बीकानेर। ३. दानसागर भंडार बीकानेर।

साहित्य-सर्जना

आचार्य जिनप्रभसूरि न केवल मुहम्मद तुगलक के प्रतिबोधक या तीर्थों की रक्षा करके शासन-धर्मप्रभावक ही थे, अपितु सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी भी थे। साथ ही न केवल आप जैनागमों के ही विद्वान् थे अपितु न्याय, दर्शन, व्याकरण, काव्य, अलंकार, छन्दशास्त्र के प्रौढ विद्वान् भी थे। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से देखा जाय तो अष्टभाषात्मक ज्ञान के आप भंडार थे। आपकी लेखिनी प्रत्येक विषय पर समान रूप से चली है। आपने अनेक विषयो पर अनेको रचनाएँ की है किन्तु काल-कवल से बचने के पश्चात् जो वर्तमान मे प्राप्त है, उनका विषयानुसार वर्गीकरण इस प्रकार है:

जैनागम—कल्पसूत्रसन्देहविषौषधिनाम्नी टीका[१]

जैन-साहित्य—साधुप्रतिक्रमणअर्थनिर्णयकौमुदी टीका[२], षडावश्यक

---

१. र० स० १३६४ अयोध्या, ग्र० २२६९ प्र० ।

२ आ०—नत्वा श्रीवीरजिनं, संक्षिप्तरुचीननुग्रहीतुमनाः ।
सुगमीकरोमि किञ्चिद् यतिप्रतिक्रमणसूत्रमहम् ॥१॥

अं०—यदभिनव शुभमनया, यतिप्रतिक्रमणसूत्रगमनिकया ।
जनतास्तु जगति तेनास्तवृजिनजिनवचनजनितरति ॥१॥
मुग्धानामुपयोगार्थमिय सक्षिप्तवृत्तिका ।
वृद्धव्याख्यात उज्जहि, श्रीजिनप्रभसूरिभिः ॥२॥
ध्यानलेश्याक्रियास्थान (१३६४) संख्ये विक्रमवत्सरे ।
इयमूर्जाघसप्तम्यामयोध्याया समर्थिता ॥३॥
प्रतिक्रमणसूत्रस्य साधवो यस्य साध्वियम् ।
सभ्यैरभ्यस्यता वृत्तिरर्थनिर्णयकौमुदी ॥४॥
ग्रन्थाग्रं कृतमस्या प्रत्यक्षरं गणनया स्वयं कविना ।
साष्टाचत्वारिंशत् पञ्चशतीश्लोकमानेन ॥५॥

टीका[१], अनुयोगचतुष्टयव्याख्या[२] प्रव्रज्याभिधानटीका[३], अजितशान्तिस्तव बोधदीपिका[४] नाम्नी टीका, भयहरस्तोत्र (नमिउण) अभिप्रायचन्द्रिका[५] टीका, उपसर्गहरस्तोत्र अर्थकल्पलता[६] टीका, पादलिप्तसूरिकृतवीरस्तोत्र टीका, गुणानुरागकुलक[८], कालचक्रकुलक[९], परमतत्त्वावबोधद्वात्रिंशिका[१०],

---

१ देखें, जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास और जैनस्तोत्र संदोह भा० २.

२ प्र० । ३. देखें, हीरालाल कापडिया की चतुर्विंशतिजिनानंद स्तुति, प्रस्ता०, पृ० ४७ ।

४. र० सं० १३६५ पौष० दाशरथिपुर ग्र० ७४०. प्र० ।

५. आ०—श्रीपार्श्वं स्वामिनं स्मृत्वा, मानतुङ्गगुरोः कृतौ ।
वृत्तिं भयहरस्तोत्रे, सूत्रयामि समासतः ॥१॥
अं०—भयहरस्तवने विवृतिर्मया व्यरचि किञ्चन मन्दधियाप्यसौ ।
अनुचितं यदवोचमिह क्वचित्तदनुगृह्य विशोध्यमृषीश्वरैः॥२॥
वृत्तिरेषा विशेषोक्ति रोचिष्णुस्वान्तचेतनैः ।
च्यवंता चिररात्राय, नाम्नाभिप्रायचन्द्रिका ॥२॥
संवद्विक्रमभूपते शरऋतूदर्बिमृगाङ्कमिते (१३६५)
पौषस्योज्ज्वलपक्षभाजि रविणा युक्तो नवम्यां तिथौ ।
शिष्यः श्रीजिनसिंहसूरिसुगुरोष्टीकामकार्षीदिमां,
श्रीसाकेतपुरे जिनप्रभ इति ख्यातो मुनीनां प्रभुः ॥३॥
प्रत्यक्षरं निरूप्यास्य ग्रन्थमानं विनिश्चितम् ।
अनुष्टुबुच्छदसा त्रीणि शतानि परिभाव्यताम् ॥४॥

६ सं० १३६४ पौष कृष्णा ९ साकेतपुर ग्र० २७१, प्र० ।

७. सं० १३८० चतुर्विंशतिप्रबन्ध अनुवाद के परिशिष्ट में प्र० ।

८. गा० ३५, लीबड़ी भंडार ।

९. इसी संग्रह में ।

१०. ,, ,,

परमात्मबत्तीसी[1], उपदेशकुलक★ ।

वैधानिक—विधिमार्गप्रपा[2], देवपूजाविधि[3], पूजाविधि★, प्रायश्चित्त-

१. नाहटा-संग्रह, ★ जेसलमेर भंडागारीय ग्रं० सूची के आधार से ।

२ अं० प्र०—

बहुविहसामायरिओ, दठ्ठु मामोहंमि तु सीस त्ति
एसा सामायारी, लिहिया नियगच्छपडिवद्धा ।।७।।
आगमआयरणाहिं, ज किंचि विरुद्धमित्थ मे लिहियं ।
त सोहिंतु सुयधरा अमच्छरा मह किव काउ ।।८।।
जिणदत्तसूरिसंलाणतिलयजिणसिंहसूरिसीसेण ।
गुत्तिरसकिरिय (१३६३) ढाणप्पमिए विक्कमनिवइवरिसे ।।९।।
विजयदसमीइ एसा, सिरिजिणपहसूरिणा समायारी ।
सपरोवयारहेउं समाणिया कोसलानयरे ।।१०।।
सिरिजिणवल्लह-जिणदत्तसूरि-जिणचंद- जिणवइमुणिंदा ।
सुगुरुजिणेसर-जिणसिंहसूरिणो मह पसीयंतु ।।११।।
वाइयसयलसुएण, वाणायरिएण अम्ह सीसेण ।
उदयाकरेण गणिणा, पढमायरिसे कया एसा ।।१२।।
जीए पसाया ओ नरा, 'सुकई सरसत्थवल्लहा' हुंति ।
सा सरसई य पउमावई य मे दितु सुयरिद्धि ।।१३।।
ससिसूरपई वा जाव भुवणभवणोदरं पभासेंति ।
एसा सामायारी, सफलिज्जउ ताव सूरीहिं ।।१४।।
पच्चक्खरगणणाए पाएण कयं पमाणमेईए ।
चउहत्तरि समहिया पणतीससया सिलोयाण ।।१५।।
विहिमग्गपवानामं सामायारी इमा चिरं जयइ ।
पल्हायती हियय सिद्धिपुरीपंथियजणाण ।।१६।।
(प्रकाशित)

३ अं० प्र०—

देवाहिदेवपूजाविही इमो भवियणुग्गहट्ठाए ।
उपदर्शितो श्रीजिनप्रभसूरिभिराम्नायतः सुगुरो. ।।
ग्रं० २६९, विधिमार्गप्रपा मे (प्रकाशित)

विशुद्धि[1], व्यवस्थापत्र[2]।

व्याकरण—कातन्त्रविभ्रमटीका,[3] रुचादिगणवृत्ति.[4]।

---

* पूजाविधि के अन्तर्गत ही 'वन्दनस्थान विवरण, प्रत्याख्यान-विवरण, शान्तिपर्वविधि, चौराशी आशातना' है, स्वतंत्र नहीं।
'गृहप्रतिमायास्तु संक्षेपत स्नपनविधिरयम्—''
''वदणगणविवरणं समत्तं।''
'संपयं पच्चक्खाणठाइं भणति × × × × पच्चक्खाणठाण-विवरणं सम्मत्तं।''
जिणपूजाविहिमाइ सुबहुविट्ठाणेसु जाण गन्थग्गं।
''पच्चक्खरगणणाए बाहत्तरिसंजुया छ सया।''
''ग्रन्थाग्रं० ६७२ कृति. श्रीजिनप्रभसूरीणां।''
जैन साहित्य मंदिर पालीताणा नं० ५९९ प० १४।

१ ''सर्वविरतिप्रायश्चित्तं'' इति सर्वविरतिसंक्षेपोऽलेखि श्रीजिन-प्रभसूरिभिः।—जैन साहित्य मंदिर पालीताणा—न० ४९०,

२ ''ॐ गुरुभ्यो नमस्कृत्य श्रीजिनप्रभसूरिभिर्व्यवस्थापत्रं लिख्यते-''
व्यवस्था ३२.
—जैन साहित्य मंदिर पालीताणा, न० ५९९.

३. आ०—प्रणम्य परमं ज्योति, बालाना हितकाम्यया।
वक्ष्ये संक्षेपतः स्पष्टां, टीकां कातन्त्रविभ्रमे॥

अं. प्र:—पक्षेषुशक्तिशशाभृन्मित (१३५२) विक्रमाब्दे,
धात्र्यङ्किते हरतिथौ पुरि योगिनीनाम्।
कातन्त्रविभ्रम इह व्यतनिष्ट टीका-
मप्रौढधीरपि जिनप्रभसूरिरेताम्॥१॥
प्रत्यक्षरं निरूप्यास्य ग्रन्थमानं विनिश्चितम्।
एकषष्ठ्या समधिके, शतद्वयमनुष्टुभाम्॥ २॥

४. अ. प्र०—दुर्गवृत्तिगरुचादिगणस्य, श्रीजिनप्रभमुनिप्रभुरेताम्।
पञ्जिकामुपनीय विनेते वृत्तिमल्पप्रतिबोधनिमित्तम्॥१॥

कोष—हैमव्याकरणानेकार्थकोषटीका[1], शेषसंग्रह टीका[❀]

काव्य—श्रेणिकचरित्र[2] (द्वयाश्रयकाव्य), भवियकुटुंबचरियं,[3] विषम-षट्पदकाव्यटीका,[4] गायत्रीविवरण[5]।

अलंकार—विदग्धमुखमण्डन[6]।

सैकोनत्रिंशदनुष्टुभा, शतद्वितयमादिगणवृत्तौ ।
सप्ततियुक्शतयुगला, समकलितरुचादिगणवृत्तौ ॥२॥
रसयुगरविरस (१२४६) मितशकवर्षे,
भाद्रपदाशितचतुर्दशीदिवसे ।
भाडंग द्रंग इयं समर्पिता गणयुगलवृत्ति ॥३॥

१ पुरातत्त्व, वर्ष २, पृ० ४२४ में उल्लेख, प्रति पाटणभंडार ।

❀. मोतीचद खजाची संग्रह बीकानेर ।

२ र० स० १३५६ सर्ग ७ प्रकाशित ।

३ प्रति वाडी पार्श्वनाथ भंडार, नं० ७३०७.

४. "इति श्रीजिनेश्वरस्तुतिरूपा श्रीजिनप्रभसूरीकृत पारसीबद्ध-भाषाकाव्यावचूरी "

इति षट्पदकाव्यस्य, विवृतिमतिशालिभि ।
विदधे बुधबोधाय, श्रीजिनप्रभसूरिभि. ॥

५. अ०प्र०—चक्रे श्रीशुभतिलकोपाध्यायैः स्वमतिशिल्पकल्पान् ।
व्याख्यानं गायत्र्या क्रीडामात्रोपयोगमिदम् ॥
इति श्रीजिनप्रभसूरि विरचितं गायत्री विवरणं समाप्तं ।
—(प्रतिलिपि नाहटासंग्रह)

६. आ०—ध्यात्वा श्रीवाग्देवीं, विदग्धमुखमण्डनस्य संक्षेपात् ।
विषमपदव्याख्यानं, क्रियते स्वपरोपकृतिकृते ॥१॥

तीर्थकल्प—विविधतीर्थकल्प[१]।

विविधतीर्थकल्प के अन्तर्गत निम्नकल्प हैं—

शत्रुञ्जयतीर्थकल्प,[3] रैवतकगिरिकल्पसंक्षेप, उज्जयन्तमहातीर्थकल्प, रैवतकगिरिकल्प, पार्श्वनाथकल्प, स्तम्भनककल्प, अहिच्छत्रानगरीकल्प,

---

अं॰प्र॰—श्रीधर्मदासकविना सुगता हि सेवा-
हेवाकिना विरचिते गहनेऽत्र शास्त्रे।
व्याख्यां विधा····सुगमासुकृतं यदापं,
तेनास्तु धीर्मम सदैव परोपकारे ॥१॥
श्रीविक्रमभूभर्त्तुर्वसुरसशक्तीन्दुसम्मिते (१३६८) वर्षे।
नभसि सितद्वादश्या, नृपभटपुरे नामनि विहरन् ॥२॥

१. अं॰ प्र॰—आदित सर्वकल्पेषु ग्रन्थमानमजायत।
अनुष्टुभां पञ्चत्रिंशच्छती षष्ट्यधिका स्थिता ॥ १ ॥
कार्यो सजेत् ? किं प्रतिषेधवाचि पदं ? ब्रवीति प्रथमोपसर्ग.।
कीदृग् निशा ? प्राणभृता प्रिय क.? को ग्रन्थमेतं रचयाचकार ? ॥२॥
—जिनप्रभसूरय·।

नन्दाऽनेकपशक्तिशीतगुमिते श्रीविक्रमोर्वीपते-
र्वर्षे भाद्रपदस्य मास्यवरजे सौम्ये दशम्या तिथौ।
श्रीहम्मीरमहम्मदे प्रतपति क्ष्मामण्डलाखण्डले,
ग्रन्थोऽयं परिपूर्णतामभजत श्रीयोगिनीपत्तने ॥३॥
तीर्थाना तीर्थभक्ताना, कीर्त्तनेन पवित्रित.।
कल्पप्रदीपनामायं, ग्रन्थो विजयता चिरम् ॥४॥
(प्रकाशित)

३. अं॰ प्र॰—
प्रारम्भेप्यस्य राजाधिराज. संघे प्रसन्नवान्।
अतो राजप्रसादाख्य:, कल्पोऽयं जयताच्चिरम् ॥१२२॥
श्रीविक्रमाब्दे बाणाष्टविश्वेदेव (१३८५) मिते शितौ।
सप्तम्यां तपस. काव्यदिवसेऽयं समर्पित: ॥१२३॥

अर्बुदाद्रिकल्प, मथुरापुरीकल्प, अश्वावबोधतीर्थकल्प, वैभारगिरिकल्प,[1] कौशाम्बीनगरीकल्प, अयोध्यानगरीकल्प, अपापापुरीकल्प, कलिकुण्डकुर्कुटेश्वरकल्प, हस्तिनापुरकल्प, सत्यपुरतीर्थकल्प, अष्टापदमहातीर्थकल्प, मिथिलाकल्प, रत्नवाहपुरकल्प, अपापाबृहत्कल्प[2] कन्यानयनीयमहावीर-प्रतिमाकल्प, प्रतिष्ठानपत्तनकल्प, नन्दीश्वरद्वीपकल्प, काम्पिल्यपुरतीर्थकल्प, अणहिलपुरस्थित अरिष्टनेमिकल्प, शंखपुरपार्श्वकल्प, नासिक्यपुरकल्प, हरिकंखीनगरस्थितपार्श्वनाथकल्प कपर्दियक्षकल्प, शुद्धदन्तीस्थितपार्श्वनाथकल्प, अवन्तिदेशस्थ अभिनन्दनदेवकल्प, प्रतिष्ठानपुरकल्प, प्रतिष्ठानपुराधिपतिसातवाहननृपचरित्र, चम्पापुरीकल्प, पाटलिपुत्रनगरकल्प, श्रावस्तीनगरीकल्प, वाराणसीनगरीकल्प, महावीरगणधरकल्प,[3] कोकावसतिपार्श्वनाथकल्प, कोटिशिलातीर्थकल्प, वस्तुपाल-तेज.पालमन्त्रिकल्प, ढीपुरीतीर्थकल्प, ढीपुरीस्तव[4], चतुरशीतिमहातीर्थनामङ्ग्रहकल्प, समवसरण-

---

१. अं० प्र०—वर्षे सिद्धा सरस्वद्रसशिखिकुमिते, (१३६४) वैक्रमे तीर्थमौले
मेवाहेवाकिना श्रीवितरसुरतरो देवता सेवितस्य ।
वैभारक्षोणीभर्तुर्गुणगणभणनव्यापृता भक्तियुक्तैः,
सूक्तिर्जैनप्रभीय मृदुविशदयदाऽपीयता धीरधीभि. ।।२७।!

२ अ० प्र०—इय पावापुरीकप्पो, दीवमहुप्पत्तिभणणरमणिज्जो ।
जिणपट्टसूरीहिंकओ, ठिएहिं सिरिदेवगिरिनयरे ।।१।।
तेरहसत्तासीए, विक्कमवरिसम्मि भद्दवयबहुले ।
पूसक्कवारसीए, समत्थिओ एस सत्थि करो ।।२।।

३. अ० प्र०—जिणपट्टसूरिहि कओ, गहवमुसिहिकु (१३८९) मिअविक्कम-समासु ।
चिट्ठसियपंचमिवुहे, गणहरकप्पो चिरं जयइ ।।२।।

४ अ० प्र०—शशधरहृषीकाक्षिक्षोणीमिते (१२५१) शकवत्सरे,
गृहमणिमहे संप्रान्वीता उपेत्य पुरोमिमा ।
मुदितमनसस्तीर्थस्यास्य प्रभावमहोदधे-
रितिविरचया चक्षुः स्तोत्रं जिनप्रभसूरयः ।।९।।

रचनाकल्प, कुडुंगेश्वरनाभेयदेवकल्प, व्याघ्रीकल्प, अष्टापदगिरिकल्प, हस्तिनापुरतीर्थस्तव[1], कुल्यपाकस्थ ऋषभदेवस्तुति, आमरकुण्डपद्मावती-देवीकल्प, चतुर्विंशतिजिनकल्याणककल्प, तीर्थंकरातिशयविचार, पञ्च-कल्याणकस्तव, कोल्लपाकमाणिक्यदेवतीर्थकल्प, श्रीपुर अन्तरिक्षपार्श्वनाथ-कल्प, स्तम्भनककल्पशिलोंछ, फलवर्द्धिपार्श्वनाथकल्प, अम्बिकादेवीकल्प, पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारकल्प।

मन्त्र-साहित्य—सूरिमंत्रबृहत्कल्पविवरण[2], ह्रीकारकल्प[3], रहस्यकल्प-द्रुम[4], शक्रस्तवाम्नाय[5] अलकारकल्पविधि[6]।

---

१. अं० प्र०—

इत्थं पृपत्कविषयकिमिते शकाब्दे, वैशाखमासशितिपक्षगषष्ठितिथ्याम्।
यात्रोत्सवौपनतसंघयुतो यतीन्द्र, स्तोत्रं व्यधाद् गजपुरस्य जिनप्रभोस्य ॥३॥

२ आ०—अर्हं वीजं नमस्कृत्य, सम्प्रदायलवो मया।
कल्पादाप्तोपदेशाच्च सूरिमन्त्रस्य लिख्यते ॥१॥

अं०—इति श्रीसूरिमन्त्रस्याम्नायलेश विदृब्धवान्।
दृष्ट्वा पुराणकल्पेभ्य श्रीजिनप्रभसूरिराट् ॥१॥
(श्रीजिनप्रभसूरिसमुद्धृत श्रीसूरिविद्याकल्प.)

अं०—''श्रीजिनप्रभसूरिसम्प्रदायागत।'' (प्रकाशित)

३ अ० प्र०—इति श्रीमायाबीजकल्पः श्रीखरतरगच्छाधीशभट्टारक-श्रीजिनप्रभसूरिविरचित. समाप्त:। (प्रकाशित)

४ ''भट्टारकश्रीजिनप्रभसूरिकृतरहस्यकल्पद्रुममध्यात् प्रयोगा दृष्ट-(प्र)त्यया लिख्यन्ते।'' ग्रन्थ प्राप्त नहीं है। कदाचित् प्रयोगप्राप्त है। प्रतिलिपि नाहटा-संग्रह।)

५. आचार्य शाखा भंडार, बीकानेर।

६. आचार्य हरिसागरसूरि, लोहावट।

खण्डनात्मक—तपोटमतकुट्टनशतम्[1]।

स्तोत्र

सिद्धान्तागमस्तव के अवचूरिकार ने लिखा है कि 'यमकश्लेषचित्र-च्छान्दोविशेषादिनवनवभंङ्गीसुभगा-सप्तशती(७००)मिता स्तवा.' आपके रचित ७०० स्तोत्र हैं। किन्तु दुःख है कि वर्तमान में निम्नोक्त स्तोत्र प्राप्त हो सके हैं। सम्भव है विशेष शोध करने पर कुछ और प्राप्त हो जायं।

क्रमाङ्क	नाम	आदिपद	पद्यसंख्या
१	मङ्गलाष्टक	जिनभावद्विषा सर्वे	८
२	पञ्चनमस्कृतिस्तव	प्रतिष्ठित नम पारे	३३
३	पञ्चपरमेष्ठिस्तव	स्व श्रिय श्रीमदर्हन्त	५
४	,,	परमेष्ठिन सुरतरून्	७
५	अर्हदादिस्तोत्र	मानेनोर्वी व्यहृतपरितो	८
६	प्राभातिक नामावली	सौभाग्यभाजनमभगुर-	
७	वीतरागस्तव	जयन्ति पादा जिननायकस्य	१६
८	पञ्चकल्याणकस्तव	निलिम्पलोकायितंभूतल	८
९	द्वित्रिपञ्चकल्याणकस्तव	पद्मप्रभप्रभोर्जन्म	१५
१०	चतुर्विशतिजिनस्तव	कनककान्तिधनु शत	२९
११	,,	ऋषभनम्रसुरासुरशेखर	२९
१२	,,	आनम्रनाकिपनिरत्न	२५
१३	,,	पात्वादिदेवो दशकल्पवृक्षा	२९

१ आ०—निर्लोहितशठकमठं, त्रैलोक्यप्रथितचारुकारुण्यम्।
प्रणिपत्य श्रीपार्श्वं, तपोटमतकुट्टन वक्ष्य ॥
अ० प्र०—इति जिनप्रभसूरिकृत तपोटमतकुट्टनशास्त्रममत्सर ।
भवति सूक्ष्मधिया परिभावयन् बुधजनो विधिपक्षविचक्षण ॥१०२॥
(प्रतिलिपि नाहटा-संग्रह)

१४	चतुर्विंशतिजिनस्तव	य सततमक्षमालोपशोभितं	३०
१५	,,	आनन्दसुन्दरपुरन्दर	२९
१६	,,	ऋषभदेवमनन्तमहोदय	३०
१७	,,	ऋषभनाथमनाथ	२९
१८	,,	तत्त्वानि तत्त्वानि भृतेषु सिद्धम्	२८
१९	,,	प्रणम्यादिजिन प्राणी	२८
२०	,,	नाभेयं शोचि निर्ममो(आगरा भडार)	२५
२१	,,	जिनर्षभप्रीणितभव्यसार्थ	८
२२	,,	नन सुरेन्द्रजिनेन्द्रयुगादिमा	९
२३	पुण्डरीकगिरिमण्डण ऋषभस्तव [कातन्त्रसन्धिसूत्रगर्भित]	सिद्धो वर्णसमाम्नाय	२३
२४	युगादिदेवस्तव [अष्टभाषामय]	निरवधिरुचिरज्ञान	४०
२५	,,	मेरौ दुग्धपयोधि वा	३३
२६	,,	अस्तु श्रीनाभिभूर्देवो	११
२७	,,	अल्लाल्लाहि	११
२८	ऋषभदेवाज्ञास्तव	नयगमभंगपहाणा	११
२९	अजितजिनस्तव	विश्वेश्वरं मथितमन्मथभूपमान	२१
३०	चन्द्रप्रभजिनस्तव [षड्भाषागर्भित]	नमो महसेननरेन्द्रतनूज	१३
३१	चन्द्रप्रभचरित्रम्	चदप्पह चदप्पह	२२
३२	चन्द्रप्रभस्तव	दैवैर्य स्तुष्टुवे तुष्टै	४
३३	शान्तिनाथाष्टकम् [पारसीभाषा]	अजिकुहकाफु जु	९
३४	शान्तिजिनस्तवः	शृङ्गारभासुरसुरासुर (आगराभंडार)	२४
३५	,,	शान्तिनाथो भगवान्	२०

३६	अरजिनस्तव	जय शरदशकलदशह्वयवदन	१४
३७	मुनिसुव्रतजिनस्तव.	निर्माय निर्माय गुणाद्धि	३०
३८	नेमिजिनस्तव [क्रियागुप्तम्]	श्रीहरिकुलहीराकर	२०
३९	पार्श्वजिनस्तव·	कामे वामेयशक्ति·	१७
४०	,,	श्रीपार्श्व श्रेयसे भूयात्	४४
४१	,, [फलवर्द्धिमण्डन]	अघियदुपनमन्तो	१२
४२	,, [,,]	जयामलश्रीफलवर्द्धिपार्श्व	२१
४३	,, [जीरावलीमंडन]	जीरिकापुरपति सदैवत	१५
४४	,, [अष्टप्रातिहार्यमय]	त्वा विनुत्य महिमश्रियामहं	१०
४५	,,	श्रीपार्श्वपादानतनागराज	८
४६	,,	पार्श्वप्रभुशरदकोपमानं	८
४७	,,	पार्श्वनाथमनघं	९
४८	,,	श्रीपार्श्वपरमात्मानं	८
४९	,,	श्रीपार्श्व भावत स्तौमि	९
५०	,, [षड्ऋतुवर्णनमय]	असमसरणीय	७
५१	, [नवग्रहगर्भित]	दोसाबहार दक्खो	१०
५२	, [फलवर्द्धिमण्डन]	श्रीफलवर्द्धिपार्श्व	९
५३	,, [,]	सयलाहिवाहिजलहर	११
५४	,,	पणमिय सुरनरपूइया	२२
	[उपसर्गहरस्तोत्रपादपूर्ति]		
५५	वीरजिनस्तव.[चित्रकाव्य]	चित्रै स्तोष्ये जिन वीरं	२७
५६	,. [विविधछन्दनामगर्भित]	कंसारिक्रमनिर्यदा	२५
५७	,, [पञ्चवर्गपरिहारमय]	स्व. श्रेयस सरसीरुह	२६
५८	,, [लक्षणप्रयोगमय]	निस्तीर्णविस्तीर्णभवार्णव	१७
५९	,,	असमशमनिवासं	२५

६०	वीरजिनस्तव	विश्वश्रीधुरच्छिदे	२१
६१	,	श्रीवर्धमानः सुखवृद्धयेऽस्तु	९
६२	वीरनिर्वाणकल्याणकस्तव	श्रीसिद्धार्थनरेन्द्रवंश	१९
६३	वीरजिनस्तवः [पञ्चकल्याणकमय]	पराक्रमेणेव पराजितोमं	३६
६४	,,	श्रीवर्द्धमानपरिपूरित	१३
६५	तीर्थमालास्तव	चउवीसंपि जिणिंदे	१२
६६	तीर्थयात्रास्तव	सिरिसत्तुजयतित्थे	९
६७	मथुरायात्रास्तोत्रम्	सुराचलश्रीजिति	१०
६८	मथुरास्तूपस्तुति.	श्रीदेवनिर्मितस्तूप	४
६९	स्तुतित्रोटक	नियजंमु सफलु	५
७०	,,	ते धन्नपुन्नसुकयत्थनरा	४
७१	विज्ञप्ति	सिरिवीयराय देवाहिदेव	३५
७२	गौतमस्तव.	श्रीमन्तं मगधेषु	२१
७३	,,	जम्मपवित्तियसिरिमगहदेस	२५
७४	गौतमाष्टकम्	ॐ नमस्त्रिजगन्नेतु	९
७५	सुधर्मगणधरस्तव [विविधछंदमय]	आगमत्रिपथगा हिमवन्त	२१
७६	जिनसिंहसूरिस्तव	प्रभु· प्रदद्यान्मुनिप	१३
७७	सिद्धान्तागमस्तवः	नत्वा गुरुभ्य· श्रुतदेवतायै	४५
७८	४५ आगमस्तव	सिरिवीरजिणं	११
७९	शारदास्तव	वाग्देवते भक्तिमता	१३
८०	सरस्वत्यष्टकम्	ॐ नमस्त्रिदशवन्दितक्रमे	९
८१	पद्मावतीचतुष्पदिका	जिणसासण अवधावि	३७
८२	वर्धमानविद्यास्तव.	आसि किलठुत्तरसय	१७
८३	परमतत्त्वावबोधद्वात्रिंशिका	धर्माधर्मास्तिरं मत्वा	३२

८४	हीयाली	अकूलु अमूलुअ	४
८५	,, [अपूर्ण]	चारि चलण चउ	

सारस्वतदीपक[1]

आचार्य जिनप्रभ का साहित्य

जैसा कि कहा जा चुका है कि आचार्य जिनप्रभ सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होने अनेक विषयो मे साहित्य-रचना की है। वर्गीकरके उनका सक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है

काव्य

आचार्य काव्य व काव्यशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उनका 'श्रेणिक चरित' नामक एक काव्यग्रन्थ मिलता है। यह 'द्वयाश्रयकाव्य' है। इस ग्रन्थ की रचना आचार्य ने स० १३५६ वि० मे की थी। कदाचित् इस ग्रन्थ की रचना मे उन्हे हेमचन्द्राचार्य के 'सिद्धहेमशब्दानुशासन' के आश्रित 'द्वयाश्रयकाव्य से प्रेरणा मिली थी। हेमचन्द्र ने अपने शब्दानुशासन के सूत्रो का सफल प्रयोग करते हुए गुजरात के चालुक्यवश का इतिहास अपने

क्रमाङ्क, १५,१६,१७,२०,३४,३७,४७ और ६० प्राप्त करने मे असमर्थ रहा हूँ। —लेखक

१. सौन्दर्योदारकौन्दद्युतिधरवपुष कौण्डलश्रीसनाथा-
मह मन्दोहमोहावतमसतरणि हस्तविन्यस्तमुद्राम्।
त्रैलोक्यानेककामप्रवितरणमरुद्वीरुधामैन्द्रचाप-
व्यापिभ्रूपल्लवान्ताममतिरपि नमस्कृत्य देवी स्तवीमि ॥१॥
(सारस्वतदीपक प्रथम पद्य)

आकाव्य मा सात सारस्वतमन्त्रो नो गुप्तरीते समावेश करवामा आव्योछे। आ स्तोत्र नी वृत्तिमा एक स्थले श्रीजिनप्रभसूरिनु नाम नजरे पडेछे। ए उपर थी आ जैन मुनीश्वरनी कृति होवानु भासे छे। भक्तामर-स्तोत्रनी पादपूर्तिरूप काव्यसंग्रह द्वितीय विभाग प्रस्तावना, पृ० ३२।

द्वयाश्रयकाव्य मे प्रस्तुत किया है । यहाँ एक उदाहरण असङ्गत न होगा । इसमे काले अक्षरों मे शब्द व्याकरण के प्रयोग है । भीमदेव सोलंकी (चालुक्य) द्वारा पराजित सिन्ध के हम्मुक के शौर्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है

अदमि न सुरैर्नो वा दैत्यैरदामि य आहवे ।
स्म **दमयति** त **दामंदामं दमंदमभोजसा** ।।
चुलूककुलभू· **कामंकामं** **ह्यकामयदामय** ।
त्तमथ निगडं **प्रामंप्रामं** य **आमि** न केनचित् ।।
नाचामि नाकामि च केनचिद्या ता सोथ **चौलुक्यकुलावतस**· ।
आचाममाचाममभिभाश्ववसैन्या न्याचामयत् सेक्षुयवा तदुर्वीम् ।।

श्रेणिकचरित भी इसी श्रेणी का काव्य है । यह काव्यशास्त्र के नियमो के अनुसार महाकाव्य की श्रेणी का काव्य हैं; परन्तु इसको 'द्वकार्थ-काव्य' कहा जाय तो अधिक संगत होगा ।

प्रथम सर्ग मे कातन्त्रव्याकरण के सन्धिपाद को उपस्थित किया गया है । पाँचो सन्धियो के पृथक्-पृथक् रूप दिखाये गए है । काव्य का प्रारम्भ इस प्रकार होता है —

सिद्धो **वर्णसमाम्नाय**: सर्वस्योपचिकीर्षता ।
येना**दौ** जगदे ब्राहम्यै स नन्द्यान्नाभिनन्दन ।।
देशोऽस्ति मगधाभिख्यो यत्र मञ्जुस्वरा नरा. ।
समानश्रीसवर्णास्त्री युक्ता **ह्रस्वे**तराशया ।।

सब का उपकार करने की इच्छावाले जिस प्रभु ने ब्राह्मी के वर्णों की मर्यादा सिद्ध की ऐसे नाभि राजा के पुत्र भगवान् ऋषभदेव ज्ञान-समृद्धि के साथ आनन्द प्रदान करें । मगध नाम का एक देश है, जिसमें सुन्दर स्वरवाले, समान लक्ष्मीवाले, समान वर्ण की स्त्रियो से युक्त प्रबल पुरुष रहते थे ।

इन श्लोको मे कातन्त्रव्याकरण के प्रथम पाँच सूत्रों (१. सिद्धो वर्णसमाम्नाय , २ तत्र चतुर्दशादौ स्वरा., ३. दश समाना·, ४. तेषा

द्वावन्योन्यस्य सवर्णौ, ५ पूर्वो ह्रस्व.) के भावों का प्रयोग किया गया है ।

दूसरे सर्ग मे व्याकरण के लिङ्ग-पाद का प्रयोग करके विभिन्न सिद्ध-रूप दिये गए है । उदाहरण के लिए दो श्लोक देखिये :

स्त्रीणा गुणाना भूमीनामपरित्यागलोलुप ।
असौ बहूना विद्याना वधूना चाभवद्वर ।।
वा भर्तृणामतिस्त्रीणा जेता गाम्भीर्यसम्पदा ।
त्रयाणा जगता शस्तैश्चरित्रैश्चित्रमादधे ।।

यह सुकुमर स्त्री, गुण व भूमि का त्याग करने का इच्छुक था और इस कारण कई विद्याओ तथा वधुओ द्वारा वरणीय हो गया था । अपने गाम्भीर्य की सम्पत्ति से चार समुद्रो को जीतनेवाला वह कुमार अपने श्रेष्ठ चरित्र से जगत् को चकित कर देता था ।

इन श्लोको मे स्त्री, भूमि, वधू, विद्या, गुण, बहु, भर्तृ, त्रि आदि शब्दो के षष्ठी विभक्ति के रूप आये है ।

तीसरे सर्ग मे युष्मदादि सर्वनामो के रूप आये है । उदाहरणार्थ देखिये .

मदावाभ्यामस्मदप्येतदत्युज्ज्वलमितीश ते ।
कम्बु करिरदौ चन्द्रपादाश्च नुवते यश: ।।
युष्मभ्यं प्रीणतास्मभ्यं श्लाघ्यते भूर्यथा यथा ।
प्रिययुष्मभ्यमस्मभ्य मुदं दध्रे तथा तथा ।।

हे स्वामिन् ! मुझसे, हम दो से और हमारे से जो अति उज्ज्वल हैं ऐसे शंख, दो हाथी-दाँत और चन्द्रकिरणे आपके यश की स्तुति करते हैं। भूमि प्रसन्न होकर जैसे जैसे आपसे हमारी श्लाघा करती है वैसे वैसे भूमि, जिसके आप प्रिय हो, हमारे से हर्ष धारण करती है !

इसमें मत्, आवाभ्या, अस्मत् शब्द के पञ्चमी विभक्ति के तथा युष्मभ्यं, अस्मभ्यं आदि चतुर्थी के रूप आये है।

चतुर्थ सर्ग में कारक-प्रकरण को लेकर विभक्तियों के विभिन्न प्रयोग दिखाये गए हैं। उदाहरणार्थ .

स्मृताप्यग्नये स्वाहा वषट् प्राचीनबर्हिषे।
स्वधा पितृभ्य इत्येते मन्त्रास्त्राणाय न क्षमाः ॥
स्यात् पुंसा श्रेयसे दारु यूपायेव जिनेन्द्र यत्।
तस्मै सचेता. को नाम त्वत्तीर्थाय न मन्यते ॥

अग्नये स्वाहा, प्राचीनबर्हिषे (इन्द्र) वषट्, पितृभ्यः स्वधा आदि मंत्र याद तो किये थे परन्तु उनकी रक्षा करने में समर्थ था नही। हे जिनेन्द्र! यज्ञ के स्तम्भ की काष्ठ जिस तरह पुरुषो के कल्याण के लिए है इस बात को उसे आपके तीर्थ से सचेत प्राण नही मानता।

प्रथम श्लोक मे स्वाहा, स्वधा, वषट् के योग मे चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग करके 'नम स्वस्तिस्वाहास्वधावषड्योगे चतुर्थी' इस व्याकरण सूत्र की पुष्टि की गई है। इसी तरह दूसरे मे यूपाय, तीर्थाय, श्रेयसे आदि रूपो का प्रयोग 'तादर्थ्ये चतुर्थी' व्याकरण सूत्र के अनुसार हुआ है।

पञ्चम सर्ग मे संस्कृत व्याकरण के तद्धित-प्रकरण के सिद्धरूप दिये गए हैं। प्रारम्भ मे सर्गार्ध मे समासो के सिद्धरूप आये है और अन्त मे तद्धित के।

षष्ठ सर्ग में आख्यात (धातु) प्रक्रिया के प्रथमपाद के रूप दिखाये गए हैं। इसी तरह सप्तम सर्ग मे धातु प्रक्रिया के दूसरे पाद के रूप दिखायें गए हैं। शेष सर्गों मे आख्यात प्रक्रिया के अवशिष्ट ६ पादो तथा कृत प्रकरण के ६ पादो के रूपो को उपस्थित किया गया है।

काव्य का विषय एक उद्देश्य को लेकर चलता है। इसमें महाकाव्य के सभी गुण विद्यमान है; परन्तु जातीय पृष्ठभूमि के अभाव के कारण

एकार्थ-काव्य कहना अधिक सगत है। वर्णन शैली भट्टिकाव्य के सदृश प्रौढ है।

काव्य का नायक महाराजा श्रेणिक धार्मिक व्यक्ति है। उसको जैन-शासन मे प्रवृत्त होता हुआ दिखाया जाना ही काव्य का उद्देश्य है। सर्वत्र शान्तरस का उदात्त शैली मे वर्णन है। वर्ण्य-विषय और वर्णन-कौशल दोनो ही हृदय से सवेदना जगाने मे समर्थ है। काव्य के प्रथम भाग को देखने मे प्रकट है कि कवि ने मधुर शब्दावली का प्रयोग करके काव्य को उत्कृष्ट बनाने का प्रयास किया है, जिसमे उसे सफलता भी मिली है। इतना ही नही चरित्र के उज्ज्वल पक्ष को उपस्थित करके भाव-सौन्दर्य लाने की चेष्टा भी सफल हुई है। व्याकरण पक्ष का प्रस्तुतीकरण भी अस्वाभाविक नही हो पाया है।

जैन-शैली मे लिखा हुआ 'धर्मशर्माभ्युदय' महाकाव्य अनुपम है और अनेको महाकाव्य है किन्तु 'श्रेणिकचरित' की स्वाभाविक, कोमल एव उत्कृष्ट शैली अपने ढग की अन्यतम है।

श्रेणिकचरित्र की प्रशस्ति मे अपना सक्षिप्त परिचय देकर आचार्य जिनप्रभ ने एक चित्रकाव्य उपस्थित करते हुए निम्नोक्त श्लोक मे श्री शान्तिनाथ प्रभु की स्तुति की है

तत्तत्कर्मपरा जितिक्षमगिर भव्याम्बुजाहस्कर,
वन्दे विष्ठपमाननीयमचिरामूनु सता काम्यदम्।
सच्चारित्रनिधि प्रभावमथितारिष्ट जिन ध्येनस,
ससारेभहरि वरेण्यसमताराङ्क विदम्भौजसम्॥

खेद है कि यह महाकाव्य आज तक पूर्णरूपेण प्रकाशित नही हुआ है। इसका प्रामाणिक सस्करण शीघ्र ही प्रकाशित हो, यह अत्यावश्यक है।

व्याकरण

श्रेणिकचरित मे कातन्त्र-व्याकरण का आश्रय लेकर व्याकरण-पक्ष

के साथ चरित्र-पक्ष का जो अद्भुत समन्वय किया है उससे आचार्य जिन-प्रभ का व्याकरण और कवित्व दोनो पर असाधारण अधिकार प्रमाणित हो जाता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने कुछ व्याकरण से सम्बन्धित अन्य ग्रन्थों की रचना भी की है। ऐसे ग्रन्थो मे कातन्त्र-व्याकरण पर 'कातन्त्र-विभ्रमटीका' और 'रुचादिगणटीका' है।

कातन्त्र-विभ्रमटीका की रचना आचार्य जिनप्रभ ने सं० १३५२ वि० मे योगिनीपुर (दिल्ली) मे की थी। इसकी रचना के लिए माथुर-वंशीय ठकुर खेतल कायस्थ ने आचार्य की अभ्यर्थना की थी। आचार्य जिनप्रभ के प्राप्य ग्रन्थो मे निर्माण-संवत् का उल्लेख होने से यह सर्वप्रथम कृति मानी गई है। यह लघुकृति अभी तक अप्रकाशित है।

रुचादिगणवृत्ति, अपेक्षा-कृत छोटी है, पर है महत्त्वपूर्ण। इस टीका की रचना वि० स० १३८१ मे हुई है। ग्रन्थ-प्रारम्भ रुचादिगण के परिचय से होता है। यह कृति भी अप्रकाशित है।

कोष

हेमचन्द्राचार्य-प्रणीत 'अनेकार्थसग्रहकोष' और 'शेपसंग्रहनाम-माला' दोनो कोष-ग्रन्थो पर आ०जिनप्रभसूरि रचित टीकाएँ प्राप्त है। दोनो की मात्र एक-एक प्रतियाँ पाटण-भण्डार और खजाची-संग्रह बीकानेर मे प्राप्त है। दोनो ही टीकाएँ अद्यावधि अप्रकाशित है।

अलङ्कार

जिनप्रभाचार्य लक्षणशास्त्र के भी सुविज्ञ-पण्डित थे। इनका एक ग्रन्थ अलङ्कारशास्त्र पर मिलता है। वह है 'विदग्धमुखमण्डन-टीका'। विदग्ध-मुखमण्डन पर जैन टीकाओ मे यह सर्वप्रथम प्राचीन एवं प्रामाणिक टीका है। इस टीका की रचना वि० स० १३६८ मे नृपभटपुर मे हुई है। इसकी प्राचीन दो प्रतियाँ मेरे निजी संग्रह मे है। यह टीका भी अप्रकाशित है। इसका आद्यन्त इस प्रकार है—

आ०—ध्यात्वा श्रीवाग्देवीं विदग्धमुखमण्डनस्य संक्षेपात् ।
विषमपदव्याख्यानं क्रियते स्वपरोपकृतिकृते ।।१।।

अं०—श्रीधर्मदासकविना सुमताङ्घ्रिसेवा-
हेवाकिना विरचिते गहनेऽत्र शास्त्रे ।
व्याख्या विधाय सुगमा सुकृतं यदाप,
तेनास्तु धीर्मम सदैव परोपकारे ।। १ ।।
श्रीविक्रमभूभर्तुर्वसुरसशक्तीन्दुसम्मिते वर्षे ।
नभसि सितद्वादश्यां नृपभटपुरे नामनि विहरन् ।। २ ।।
श्रीजिनप्रभसूरिणा विदग्धमुखमण्डनस्य टिप्पनकं कृतम् ।

तर्कशास्त्र

आचार्य जिनप्रभ बहुत बडे तार्किक भी थे। यद्यपि उनके द्वारा किए गए किसी प्रसिद्ध वाद-विवाद का उल्लेख तो उनके जीवन की प्राप्य सामग्री मे नही मिलता, किन्तु इतना स्पष्ट है कि मुहम्मद तुगलक जैसे कट्टर मुसलमान बादशाह पर चमत्कारो के अतिरिक्त किसी ऐसी घटना से ही वे प्रभाव डालने मे समर्थ हुए होगे। इस विषय को लेकर जिनप्रभ ने वि० स० १३५६ मे 'तपोटमतकुट्टनशतक' नामक ग्रन्थ की रचना की है। इसमे १०० अनुष्टुप् छन्दो मे 'तपोटमत' का तर्क द्वारा खण्डन किया है। ग्रन्थ-प्रारम्भ आर्या छन्द से इस प्रकार होता है

निर्लोठितशठकमठ त्रैलोक्यप्रथितचारुकारुण्यम् ।
प्रणिपत्य श्रीपार्श्वं तपोटमतकुट्टनं वक्ष्ये ।।

तपटोमत का परिचय देते हुए आचार्य ने कहा है कि जो तप करते हुए अटनशील रहते है उन्हे 'तपोट' कहते है। तपोटमत को वे मुद्गल व शाकिनी के मतो के तुल्य मानते है। जैसे,

बाह्यक्रियादर्शनेन मोहयन्तो जगज्जनम् ।
तपोभूता अटन्तीति तपोटा परिकीर्तिता ।।

तपोटमतवादी सिद्धियों का प्रदर्शन करके लोगों को भ्रान्त किया करते है। उसका परिणाम बडा संक्लिष्ट होता है। इसलिए उक्त दोनों मतों की तरह इसे भी त्याग देना चाहिए। आचार्यजी का कथन है कि अन्य दो मतो का उपक्रम सम्भव भी हो सकता है किन्तु तपोटों की चिकित्सा दुष्कर है। तपोट-मत प्राणियो के अनेक जन्म नष्ट कर देता है। तपोटमत वालो का ज्ञान–गरम दूध पीना, दर्शन–मुख की मुद्रा बनाना और चारित्र–केवल मलधारण करना मात्र है

ज्ञानमुष्णपय पानं दर्शनं मुखमुद्रणम् ।
चारित्र दर्शयाम्येषा केवल मलधारणम् ॥

ये लोग अपने आपको ही चरित्रवान् बतलाते है। परमात्मा की निन्दा करते है। ये कौटिल्य मे पटु है। इसलिए इनकी देशना नही सुननी चाहिए। इस प्रकार अनेक प्रकार के तर्कों से तपोटो के मिथ्याडम्बरो का उद्घाटन करते हुए आचार्य ने उनके मत का खण्डन किया है। जैनधर्म के एक मत-विशेष तपागच्छ का इस प्रकार विरोध करके आचार्यजी ने न केवल साहस का ही परिचय दिया है वरन् उनको आत्मनिरीक्षण का अवसर भी देने का प्रयत्न किया है।

कतिपय विद्वान् इस कृति को आचार्य जिनप्रभ की रचना मानने में संदेह व्यक्त करते है किन्तु जब तक कोई पुष्ट प्रमाण प्राप्त न हो तब तक संदेह करना निरर्थक ही है। यह कृति भी अप्रकाशित है।

विधि-विधान

आचार्य श्रीजिनेश्वरसूरि ने चैत्यवासियो के अजेय दुर्ग अणहिलपुर पत्तन मे जिस सुविहित पक्ष, विधिपक्ष, खरतरपक्ष की स्थापना की थी, उस परम्परा का विकास आचार्य जिनवल्लभ, युगप्रधान जिनदत्तसूरि, मणिधारी

जिनचन्द्रसूरि एव षट्त्रिंशद्‌वादविजेता जिनपतिसूरि तक अविच्छिन्न रूप से होता रहा। आचार्य जिनपतिसूरि के समय तक चैत्यवास-प्रथा का ह्रास हो चुका था और सर्वत्र सुविहित पक्ष का प्रचार हो चुका था।

आचार्य जिनेश्वर से जिनपतिसूरि तक के समय मे निषेध-खण्डनात्मक प्रवृत्ति का विशेषतया प्रचार रहा। इस अवधि मे कतिपय आचार्यो ने विधानात्मक कई छोटे-मोटे प्रकरणों की रचनाएँ भी की थी, जिनमे से प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित है

जिनचन्द्रसूरि	श्रावकविधि दिनचर्या
परमानन्द (अभयदेवसूरि शि०	सामाचारी
जिनवल्लभसूरि	प्रतिक्रमण सामाचारी, पौषधविधिप्रकरण
जिनदत्तसूरि	व्यवस्थाकुलक, शान्तिपर्वविधि, आचार्यपदादिव्यवस्था
मणिधारी जिनचन्द्रसूरि	व्यवस्थाकुलक
जिनपालोपाध्याय	सक्षिप्तपौषधविधि
जिनेश्वरसूरि (द्वितीय)	श्रावकधर्मविधि

किन्तु व्यवस्थित रूप से समग्र क्रियाओ-विधानो का आकर कोई भी ग्रन्थ विधिपक्ष का जिनप्रभसूरि तक निर्मित नही हुआ था। भिन्न-भिन्न गच्छों की अनेक सामाचारी-ग्रन्थो का निर्माण और प्रचार हो चुका था। ऐसी अवस्था मे विधिमार्गानुयायियो को अनेक सामाचारी ग्रन्थ देखकर भ्रम न हो तथा अपने विधिपथ पर आरूढ रहकर सामाचारी का पालन कर सके इस दृष्टि से आ० जिनप्रभसूरि ने 'विधिमार्गप्रपा' नामक विशाल ग्रन्थ का निर्माण किया।

> बहुविहसामायारीओं दट्ठु मा मोहमितु सीस त्ति।
> एसा सामायारी लिहिया नियगच्छपडिबद्धा ॥७॥
>
> [वि० प्र०, पृ० १२१]

नामकरण

ग्रन्थ के नामकरण के सम्बन्ध में मुनि जिनविजयजी अपनी सम्पादकीय प्रस्तावना में लिखते हैं—

इस ग्रन्थ का सम्पूर्ण नाम, जैसा कि ग्रन्थ की सब से अन्त की गाथा में सूचित किया गया, विधिमार्गप्रपा नाम सामाचारी (विहिमग्गपवा नामं सामायारी, देखो, पृ० १२०, गा० १६) ऐसा है। पर इसकी पुरानी सब प्रतियों में अन्यान्य उल्लेखों में भी संक्षेप में इसका नाम 'विधिप्रपा' ऐसा ही प्राय लिखा हुआ मिलता है, इसलिये हमने भी मूलग्रन्थ में इसका यही नाम सर्वत्र मुद्रित किया है; पर वास्तव में ग्रन्थकार का निज का किया हुआ पूर्ण नामाभिधान अधिक अन्वर्थक और संगत मालूम देता है। इस विधिमार्ग शब्द से ग्रन्थकार का खास विशिष्ट अभिप्राय उद्दिष्ट है। सामान्य अर्थ में तो 'विधिमार्ग' का 'क्रियामार्ग' ऐसा ही अर्थ विवक्षित होता है पर यहाँ पर विशेष अर्थ में खरतरगच्छीय विधि-क्रिया-मार्ग ऐसा भी अर्थ अभिप्रेत है। क्योंकि खरतरगच्छ का दूसरा नाम विधिमार्ग है और इस सामाचारी में जो विधि-विधान प्रतिपादित किये गये हैं वे प्रधानतया खरतरगच्छ के पूर्व आचार्यों द्वारा स्वीकृत और सम्मत हैं। इन विधि-विधानों की प्रक्रिया में अन्यान्य गच्छ के आचार्यों का कहीं कुछ मतभेद हो सकता है और है भी सही। अतएव ग्रन्थकार ने स्पष्ट रूप से इसके नाम में किसी को कुछ भ्रान्ति न हो इसलिये इसका 'विधिमार्गप्रपा' ऐसा अन्वर्थक नामकरण किया है। इसलिये इसका यह 'विधिमार्गप्रपा' नाम सर्वथा सुन्दर, सुसंगत और वस्तुसूचक है ऐसा कहने में कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

अन्य सामाचारी-ग्रन्थ

वैसे तो जिनप्रभसूरि ने इस ग्रन्थ में कतिपय आचार्यों और ग्रन्थों के नाम—मानदेवसूरि (पृ० २'), जिनवल्लभसूरिकृत पौषधविधि (पृ० २२) पादलिप्तसूरिकृत निर्वाणकालिका (पृ० ६७), श्रीचन्द्रसूरिकृत प्रतिष्ठासंग्रह

(पृ० १११), कथारत्नकोष[1] (पृ० ११४), और सैद्धान्तिक श्रीविनयचन्द्र-सूरि (पृ० ११९), योगविधान (पृ० ५८) तथा महानिशीथ आवश्यकचूर्णि आदि दिये है किन्तु 'बहुविह सामायारी ओ दट्ठु,' के अनुसार तत्समय मे प्रचलित सामाचारी ग्रन्थो का उल्लेख नही किया है। संभवत उस समय तक प्रचलित उमास्वातिकृत पूजाप्रकरण, हरिभद्रसूरिकृत प्रतिष्ठाकल्प, राजगच्छीय सिद्धसेनसूरि कृत सामाचारी, अजितदेवसूरिकृत योगविधि (र० सं० १२७३), श्रीतिलकाचार्यकृत सामाचारी एवं श्रीचन्द्रसूरीकृत प्रतिष्ठाकल्प एवं सुबोधा सामाचारी आदि ग्रन्थ उनके सन्मुख अवश्य रहे होगे।

चन्द्रगच्छीय श्रीतिलकाचार्य[2]-कृत सामाचारी[3] एवं श्रीचन्द्रसूरि[4]-कृत सुबोधा सामाचारी[5] ग्रन्थ से तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि तत्समय मे प्रचलित न केवल वैधानिक विषय ही अपितु क्रिया-पद्धति भी एक ही थी। केवल कही-कही स्वगच्छीय मर्यादानुसार अन्तर प्रतीत होता है। ये दोनो सामाचारी-ग्रन्थ सक्षेप मे विषय का प्रतिपादन करते है, वहाँ उन्ही विषयो का प्रतिपादन विधिमार्गप्रपाकार विस्तार के साथ करते है, ताकि उस समय क्रियाकार को अन्य किसी सहायय की जरूरत न रहे। योगविधि, पदस्थापनविधि एव प्रतिष्ठाविधिप्रकरण का तो अध्ययन करने

---

१ विधिमार्गप्रपा पृ० १११ मे ध्वजारोपणविधि के जो ५० पद्य दिये गये है वे देवभद्रसूरिकृत कथारन्नकोप पृ० ८९, गा० १७ से ५५ और पृ० ७१ गाथा ११४ से १२४ तक के है।

२ चन्द्रग० शिवप्रभसूरि के शिष्य थे। इनका रचनाकाल १२६१ से १३०३ है। विशेष अध्ययन के लिये देखे, जै० सा० सं० इ० ५६२.

३. शाह नागरदास प्रागजी भाई दोसी, वाडानी पोल, अहमदाबाद से प्रकाशित।

४. देखें, वल्लभभारती।

५ देवचंद लालक भाई पुस्तकोद्धारफंड सूरत से प्रकाशित।

पर ऐसा प्रतीत होता है कि मानों इस विषय के ये मौलिक एवं स्वतंत्र ग्रन्थ ही हो।

इन दोनों सामाचारी ग्रन्थों के साथ विषय साम्य ही नहीं, अपितु कतिपय प्रकरण तो अक्षरशः जैसे के तैसे प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिये तुलना कीजिये :—

विधिमार्गप्रपा	सुबोधसामाचारी
उपधानविधि, पृ० १२	पृ० ६.
पंचनमोक्कारेकिल० गा० ५४	
कल्लाणकंदादि ८ गाथा० ११	,, ३८
सावज्जकज्जादि० गा० ९ १५	,, ३८
जइसिद्धाणादि० गा० ५ १०३.	,, ४४
अइराणमतनासो आदि० गा० ६ १०३	,, ४७

× × ×

	सामाचारी
अरिहाणनमो पूयं आदि गा० ३६ पृ० ३१	पृ० ४
पंचनमोक्कोर किल आदि गा० ५४ पृ० १२	पृ० ६ गाथाओ का हेरफेर अवश्य हैं।
असंखयं जीविय आ० गा० १८ पृ० ४९	३५

× × ×

'सुबोधसामाचारी' तथा 'सामाचारी' में प्रतिपाद्य विषयो का संक्षेप मे प्रतिपादन किया गया है जब कि विधिमार्गप्रपा मे समग्र विषयो का विशद शैली मे निरूपण किया गया है और सुबोधा सामाचारी में 'आलोचनाधिकार' नही है एवं सामाचारी में 'प्रतिष्ठाधिकार' नही है जब कि इन दोनो अधिकारो का भी इस ग्रन्थ में विस्तृत रूप मे प्रतिपादन किया गया है।

'निर्वाणकलिका' वस्तुतः प्रतिष्ठाविधि ग्रन्थ हैं। इसमें २९ विधियाँ है,

यहाँ 'विधि' शब्द प्रकरण या अधिकार-सूचक है। दीक्षाविधि एवं आचार्याभिषेकविधि के अतिरिक्त समग्र विधियां प्रतिष्ठाविधान से ही सम्बन्ध रखती हैं। प्रतिष्ठाविधान इतना विस्तृत निरूपण अन्य किसी ग्रन्थों मे प्राप्त नही होता। निर्वाणकलिका के सन्मुख विधिप्रपा की 'प्रतिष्ठाविधि' भी संक्षिप्त-सी प्रतीत होती है।

विधिप्रपा के पृष्ठ ११०-१११ में श्रीचन्द्रसूरिकृतप्रतिष्ठासंग्रहकाव्यानि के ७ पद्य उद्धृत हैं। ये सातो पद्य श्रीचन्द्रसूरि रचित सुबोधासमाचारी मे प्रतिष्ठाविधि मे प्राप्त नही है। अध्ययन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीचन्द्रीय प्रतिष्ठाविधि का साराश ग्रन्थकार जिनप्रभसूरि ने इन ७ पद्यो मे गुंफित किया हो।

प्रतिपाद्य-विषय

इस सम्बन्ध में विधिमार्गप्रपा की सम्पादकीय प्रस्तावना में मुनि जिनविजयजी ने बडे विस्तार से प्रकाश डाला है जो अविकल रूप से इस प्रकार है[1] :—

"जैसा कि इसके नाम से ही सूचित होता है—यह ग्रन्थ साधु और श्रावक के जीवन मे कर्त्तव्य कर्म नित्य और नैमित्तिक दोनों ही प्रकार की क्रिया-विधियो के मार्ग मे संचरण करनेवाले मोक्षार्थी जनो की जिज्ञासारूप तृष्णा की तृप्ति के लिये एक सुन्दर 'प्रपा' समान है। इसमे सब मिलाकर मुख्य ४१ द्वार यानी प्रकरण है। इन द्वारो के नाम, ग्रन्थ के अन्त मे, स्वयं शास्त्रकार ने १ से ६ तक की गाथाओ मे सूचित किये है। इन मुख्य द्वारो मे कही-कही कितनेक अवान्तर द्वार भी सम्मिलित है जो यथास्थान उल्लिखित किये गये है। इन अवान्तर द्वारों का नाम निर्देश, हमने विषयानुक्रमणिका मे कर दिया है। उदाहरण के तौर पर, २४ वे 'जोगविही' नामक प्रकरण मे, दशवैकालिक आदि सब सूत्रों की योगो-

१. संपादकीय प्रस्तावना, पृष्ठ आ.

दहन क्रिया के वर्णन करनेवाले भिन्न-भिन्न विधान प्रकरण है; और ३४ वें 'आलोयणविही' संज्ञक प्रकरण में ज्ञानातिचार, दर्शनातिचार आदि आलोचना विषयक अनेक भिन्न-भिन्न अन्तर्गत प्रकरण हैं। इसी तरह ३५ वे 'पइट्ठाविही' नामक प्रकरण में जलानयनविधि, कलशारोपणविधि, ध्वजारोपण विधि—आदि कई एक आनुषंगिक विधियो के स्वतंत्र प्रकरण सन्निविष्ट है।

इन ४१ द्वारो—प्रकरणो में से प्रथम के १२ द्वारों का विषय, मुख्यत. श्रावक जीवन के साथ सबंध रखनेवाली क्रिया-विधियों का विधायक है, १३ वें द्वार से लेकर २९ वें द्वार तक विहित क्रिया-विधियाँ प्राय साधु जीवन के साथ सबध रखती हैं और ३० वें द्वार से लेकर ४१वे द्वार तक मे वर्णित क्रिया-विधान, साधु और श्रावक दोनो के जीवन के साथ सबध रखने वाली कर्त्तव्यरूप विधियो के संग्राहक हैं।

यह ग्रन्थ सचमुच ही जैन क्रिया-विधानो का परिचय प्राप्त करने के इच्छुको के लिये सुन्दर प्रपा-तुल्य एवं सर्वश्रेष्ठ है। सारा ग्रन्थ प्राकृत गद्य मे लिखा हुआ है, बीच-बीच मे गाथाएं भी उद्धृत की गई है जो अधिकतर पूर्वाचार्यों की है। आलोचनाग्रहणविधि पद्य ६४ (पृ० ९३-९६) तथा पिण्डालोचना विधानप्रकरणगाथा ७३ (पृ० ८२-८६) तो ग्रन्थकार द्वारा रचित स्वतन्त्र प्रकरण से है। विषय की दृष्टि से यह ग्रन्थ अलभ्य सामग्री प्रस्तुत करता है। समग्र-विधि-विधानो का ऐसा विशद और क्रमबद्धरूप अन्यत्र कही भी नही मिलता। यही कारण है कि परवर्ती समस्त गच्छो के विधान-ग्रन्थकारो ने किसी न किसी रूप मे, अश रूप से या पूर्णरूप से इस ग्रन्थ का अनुकरण किया है और इसे आदर्शरूप मे माना है।

इस ग्रन्थ की रचना-समाप्ति वि० सं० १३६३ विजया दशमी के दिन कोशलानगर अर्थात् अयोध्या नगरी में हुई है। यह ग्रन्थ मुनि जिनविजय जी द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हो चुका है।

विधि-विधान के अन्य ग्रन्थ

विधिमार्गप्रपा के अतिरिक्त आचार्य जिनप्रभ ने देवपूजाविधि, प्रायश्चित्तविशुद्धि, एवं व्यवस्था-पत्र नामक लघु ग्रन्थो की भी रचना की है। इस ग्रन्थों का क्रमश परिचय इस प्रकार है :

देवपूजा विधि—जैन उपासक के लिए देवपूजन अवश्य और नित्य कर्त्तव्य होने से इस विधि में गृहप्रतिमापूजाविधि, चैत्यवन्दनविधि, छत्र-भ्रमणविधि, पञ्चामृतस्नानविधि और शान्तिपर्वविधि का विस्तार से प्रतिपादन किया गया है। पादलिप्तसूरि कृत निर्वाणकलिका की मान्यताओं और परम्पराओ का भी ग्रन्थकार ने कई स्थानो पर उल्लेख किया है। अष्टाह्निका मे संघ का चन्द्रबलादि की अपेक्षा से तिथि-सम्बन्धी मन्तव्य का उल्लेख करते हुए ''पूज्य श्रीजिनदत्तसूरीणामाम्नाये'' वाक्य का प्रयोग किया है। इससे स्पष्ट है कि श्रीजिनदत्तसूरि का इस सम्बन्ध मे कोई ग्रन्थ अवश्य होगा या उनकी 'मान्यता' परम्परारूप मे प्रचलित होगी किन्तु वर्तमान समय मे दोनो अनुपलब्ध है। यह 'विधि' विधिमार्गप्रपा के साथ प्रकाशित हो चुकी है।

पूजाविधि—इस विधि मे वन्दनस्थानविवरण, प्रत्याख्यानविवरण, शान्तिपर्वविधि एव चौरासी आशातनाओं का ग्रन्थकार ने विस्तार से प्रतिपादन किया है।

प्रायश्चित्तविधि–इस विधि मे साधुवर्ग के लिए प्रायश्चित्त का विधान है। जीवन मे सामान्य या विशेष जो कोई दोष या अपराध हुए हो, उनका परिहार एवं परिमार्जन करने हेतु आलोचना का विधान है। दोपो के आधार पर दण्ड-प्रायश्चित्त दिया जाता है।

व्यवस्थापत्र—इसमे स्वगच्छीय सामाचारी के पालन कर्त्ताओ के लिए ३२ व्यवस्थाओं का विधान किया गया है।

पूजाविधि, प्रायश्चित्तविधि और व्यवस्थापत्र ये तीनो ही ग्रन्थ

अप्रकाशित है और इनकी एक मात्र प्रतियां जैन साहित्य मन्दिर, पाली-ताणा मे क्रमश ५९९, ४९० एवं ५९९ पर प्राप्त है।

मन्त्र साहित्य

जैन साहित्य में विधि-विधानो मे प्रयुक्त होनेवाले मन्त्रों की संख्या भी बहुत अधिक है। 'ॐ नमो अरिहन्ताण' बौद्ध शीलत्रय की तरह जैन-शासन का मूलाधार माना जाता है। जिनप्रभसूरि महाप्रभावक आचार्य थे। इसलिए मन्त्रो की ओर उनका ध्यान जाना भी अनिवार्य था। मन्त्र-साहित्य से सम्बन्धित उनके ग्रन्थ ये है.—'ह्रीँकारकल्पविवरण, सूरिमन्त्र-बृहत्कल्पविवरण, चूलिका, रहस्यकल्पद्रुम, वर्धमानविधकल्प, शक्रस्त-वाम्नाय, अलङ्कारकल्पविधि, पञ्चपरमेष्ठिमहामन्त्र स्तव, गायत्रीविवरण आदि।

ह्रीँकारमन्त्रविवरण मे ह्रीँकारमन्त्र की महत्ता का वर्णन करते हुए उसकी प्रयोगविधि पर प्रकाश डाला गया है। ह्रीँकारमन्त्र को चौबीस तीर्थङ्करो, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरादि सब देवताओ से युक्त माना गया है। इससे भाग्यहीन को भी सिद्धि मिलती है। इसके जाप से सभी देवी-देवता सिद्ध होते हैं। सभी प्रकार के भय दूर होते हैं। बुद्धि प्राप्ति, शत्रु-उच्चाटन, द्रव्यप्राप्ति आदि के लिए इस ग्रन्थ मे विभिन्न उपायो से ह्रीँकार मन्त्र प्रयुक्त करने की विधि दी गई है। इससे पद्मावती देवी भी प्रसन्न होती है।

वर्धमानविधाकल्प प्राकृतभाषा मे है। उपाध्याय पद धारक साधु के लिये आराधना विषयक विधान दिया गया है।

सूरिमन्त्रबृहत्कल्पविवरण मे सूरि-मन्त्राक्षरो का फलादेश संस्कृत गद्य-पद्य मे प्रस्तुत किया गया है। इन मन्त्रों का आराधन करनेवाला आचार्य धर्मोन्नति के साथ आत्मकल्याण करने मे भी समर्थ होता है। ग्रन्थ मे विद्यापीठ, महाविद्यापीठ, उपविद्यापीठ, मन्त्रपीठ, मन्त्रराजपीठ आदि पाँच

प्रस्थानो के मंत्रों का खरतरगच्छीय पद्धति से प्रयोग दिखाया गया है। चूलिका में भी इसी विषय का प्रतिपादन है।

रहस्यकल्पद्रुम नामक ग्रन्थ मे जैन-समाज में प्रचलित अनेक मन्त्रो के इष्ट प्रयोगों का अनुकथन है। पूर्णग्रन्थ प्राप्त न होकर कुछ प्रयोग मात्र ही प्राप्त है।

शक्रस्तवाम्नाय मे जैन-साहित्य मे सर्वाधिक प्रसिद्ध 'नमोत्थुण' स्तव पर परम्परागत मन्त्रविधानो और साधनो के प्रयोगो का कथन है।

'गायत्रीविवरण' में गायत्री आचार्य ने वेदो के सारभूत गायत्री मन्त्र की संक्षिप्त व्याख्या की है। गायत्री की उत्पत्ति के विषय में ग्रन्थकार ने लिखा है.—

स्वयम्भुवादभवत्फेनः फेनादर्जनबुद्बुद ।
वभूव बुद्बुदादण्डमण्डात् ब्रह्मा ततोऽनलः ॥
अनलादभवद् वायु. वायोरोङ्कारमेव च ।
ओङ्कारादपि गायत्री सावित्री च ततोऽभवत् ॥

अर्थात् स्वयम्भुव परब्रह्म से फेन के रूप मे सृष्टिबीज उत्पन्न हुआ। फेन से बुद्बुद हुआ। बुद्बुद से अण्डा (हिरण्यगर्भ) और उससे ब्रह्मा उत्पन्न हुआ। फिर अग्नि, उससे वायु, और वायु से शब्दब्रह्म ॐ पैदा हुआ। ॐ से गायत्री व सावित्री का जन्म हुआ।

आगे गायत्री का स्वरूप बतलाया गया है :

धेनुरूपाभवेदेषा त्रिपादा पञ्चशीर्षका।
त्रिवर्णा च त्रिनासा च चतुर्विंशति देवता ॥

अर्थात् गायत्री के भू, भुव, स्व. त्रिपाद है, ऋग्वेद, शिक्षा, कल्प, निरुक्त और ज्योतिष-ये पञ्चशीर्ष हैं। रक्त, श्वेत और कृष्ण-ये तीन वर्ण हैं, इसके तीन नासिका है और इसमें २४ देवता निवास करते है, ऐसी गायत्री धेनुरूपा है।

आगे २४ देवताओं के नाम गिनाते हुए गायत्री के प्रत्येक अक्षर की युक्तियुक्त व्याख्या की है। यह विवरण अप्रकाशित है।

ऐतिहासिक

आचार्य जिनप्रभ का एक अन्य बड़ा ग्रन्थ 'विविध-तीर्थकल्प' है। यह ऐतिहासिक व भौगोलिक महत्त्व का ग्रन्थ है। इसकी रचना वि० सं० १३८९ में पूर्ण हुई। इसमें वर्णित विविध तीर्थों से सम्बन्धित कल्प विभिन्न काल की रचनाएँ हैं। वैभारगिरिकल्प की रचना १३६४ में, शत्रुञ्जय कल्प की रचना १३८५ मे, ढीम्पुरीतीर्थस्तोत्र की १३८६ मे, पावापुरी-कल्प की १३८७ में, महावीरगणधरकल्प की १३८९ में और हस्तिनापुर-तीर्थ स्तोत्र की रचना १३९० में हुई थी। इस ग्रन्थ में सौराष्ट्र, गुजरात, मालवा, राजपूताना, मध्यदेश, पूर्वदेश और दक्षिण भारत के जैन तीर्थों का विश्वसनीय प्राचीन इतिहास मिलता है। यह आचार्य के तीर्थयात्रा-सम्बन्धी निजी अनुभवों का एवं परम्परागत ऐतिह्य तथ्यों का प्रामाणिक संकलन है।

ग्रन्थ में शत्रुञ्जय, उज्जयन्त (गिरनार), स्तम्भन (खभात), अहिच्छत्रा, अर्बुद (आबू), मथुरा, अश्वावबोध (भड़ौंच), वैभारगिरि (राजगृह), कौशाम्बी, अयोध्या, पावापुरी, कलिकुण्ड, हस्तिनापुर, सत्यपुर (साचोर), अष्टापद, मिथिला, रत्नपुर, कन्यानयन, प्रतिष्ठानपत्तन (पेठण), नन्दीश्वर, काम्पिल्यपुर, शंखपुर, नासिक, हरि-कखी पार्श्व, शुद्धदन्ती, चम्पापुरी, पाटलिपुत्र (पटना), श्रावस्ती, वाराणसी, कोकापार्श्व, (पाटण), कोटिशिला, चेल्लणपार्श्व (ढिम्पुरी), कुण्डगेश्वर (उज्जैन), माणिक्यदेव (कुलपाक-दक्षिण,), फलवर्द्धि (फलौदी), आदि तीर्थों तथा कपर्दियक्ष, कोहंडियदेवी, अम्बिकादेवी, आरामकुण्ड-पद्मावतीदेवी, व्याघ्री, मन्त्रीश्वर वस्तुपाल-तेजपाल आदि तीर्थभक्तो का परिचय दिया गया है।

ग्रन्थकार ने तीर्थों व तीर्थभक्तों से सम्बन्धित घटनाओं का संस्कृत व प्राकृत भाषा मे, गद्य व पद्य मे प्रामाणिक वर्णन किया है जिससे उस समय की स्थिति का पता चलता है। स्वयं आचार्य जिनप्रभ के जीवन की अनेक घटनाओं—जैसे सुलतान मुहम्मद की प्रसन्नता, फरमान, मूर्तियो का उद्धार, तीर्थों की रक्षा, प्रतिष्ठा आदि की सूचना इन तीर्थकल्पों से ही मिलती है। ३५६० श्लोक-प्रमाण के इस ग्रन्थ की योगिनीपुर (दिल्ली) मे समाप्ति की सूचना भी ग्रन्थ के अन्तिम समाप्ति काव्य से मिलती है।

इस ग्रन्थ का प्रामाणिक सस्करण मुनि जिनविजयजी द्वारा सम्पादित होकर सिंघी जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित हो चुका है।

जैन साहित्य

आचार्य जिनप्रभ जैनदर्शन, आगम, प्रकरण आदि साहित्य के भी परमगीतार्थ विद्वान् है। जैन-साहित्य पर इनका कोई मौलिक ग्रन्थ तो प्राप्त नही है किन्तु गुणानुरागकुलक, कालचक्रकुलक, उपदेशकुलक, परम-तत्त्वावबोधद्वात्रिंशिका, परमात्मद्वात्रिंशिका आदि दार्शनिक, सैद्धान्तिक एव औपदेशिक लघुकायिक प्रकरण ग्रन्थ अवश्य प्राप्त है। ये सभी प्रकरण अभी तक अप्रकाशित हैं।

जैनागम, प्रकरण और स्तोत्र आदि अनेक ग्रन्थो पर आपकी सुबोधा टीकाएँ उपलब्ध है। कुछ टीकाओ के नाम इस प्रकार है .

कल्पसूत्र 'सन्देह 'विषौषधि' टीका, साधुप्रतिक्रमणसूत्र-'अर्थनिर्णय-कौमुदी' टीका, षडावश्यक-टीका, प्रव्रज्याभिधान-टीका, अनुयोगचतुष्टय-व्याख्या, अजितशान्तिस्तोत्र-टीका, नमिउणस्तोत्र-टीका, उपसर्गहरस्तोत्र-टीका, पादलिप्तीय वीरस्तोत्र-टीका और विषमषट्पदकाव्य-टीका।

कल्पसूत्र टीका

कल्पसूत्र जैनागमों मे प्रसिद्ध सूत्र है। जिनप्रभ से पूर्व इस ग्रन्थ पर टिप्पनक आदि अवश्य प्राप्त थे किन्तु इस पर रहस्योद्घाटिनी कोई टीका

उस समय तक प्राप्त नही थी । आचार्य ने वि० सं० १३६४, अयोध्या में रहते हुए कल्पसूत्र पर 'सन्देहविषौषधि' नामक टीका की रचना कर इस अभाव को पूरा किया । टीका सुबोध एवं प्रामाणिक है और टीका का नाम भी अन्वर्थक प्रतीत होता है । परवर्ती प्राय. समस्त टीकाकारो ने अपनी कल्पसूत्र की टीकाओं में—किरणावली, कल्पलता, सुबोधिका, कल्पद्रुमकलिका, कल्पदीपिका आदि में किसी न किसी अश मे इस सदेहविषौषधि का अनुसरण किया ही है ।

यह टीका हीरालाल हंसराज द्वारा अवश्य प्रकाशित हुई है किन्तु इसका प्रामाणिक सस्करण प्रकाशित होने की अत्यावश्यकता है ।

साधुप्रतिक्रमणसूत्र की अर्थनिर्णयकौमुदी-टीका का निर्माण वि० सं० १२६४ अयोध्या में, उपसर्गहरस्तोत्र पर 'अर्थकल्पलता' टीका का १३६४ साकेत (अयोध्या) मे, अजितशान्तिस्तोत्र पर 'बोधदीपिका' टीका का एव भयहर (नमिउण) स्तोत्र पर 'अभिप्रायचन्द्रिका' का सं० १३६५ दाशरथिपुर (अयोध्या) में हुआ है ये सब ही टीकायें सुबोध, परिमार्जित एवं प्रामाणिक शैली मे लिखी हुई है ।

षट्पदविषमकाव्य विवृति मे सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के लगभग २१ पद्य है । पद्यो मे अनेकार्थवाची श्लिष्ट शब्दो की अनेकधा आवृत्ति हुई है । इस क्रम से पद्य के अनेक अर्थ हो जाते है । एक श्लोक और उसकी जिनप्रभ द्वारा की गई टीका देखिये

हसनादमत देव देवाना विभय भयम् ।
यं भय भविना वादे वन्दे त मदनासहम् ॥

हंसनद०—तं देवाना देवं हर वीतरागं वा वन्दे इति सम्बन्धः । यं किं विशिष्टम् ? हंसस्येव नाद –शब्दस्तेन सुस्वरत्वान्मतं-लोकाना सम्मतं वीतरागं । महेश्वरपक्षे तु हंसेन नाद. प्रसिद्धिर्यस्य हंसवाहनत्वाद् ब्रह्मा उच्यते, तस्य मतं पूज्यम्, ब्रह्मणोऽपि पूज्यत्वाद् । ईश्वरस्य शेषाणि सर्वा-

ण्यपि विशेषणानि पक्षद्वयेऽपि तुल्यानि । विभयं विगत भयम् । पुनः किंवि-शिष्टम् ? भयम्-सेव्यम् धातूनामनेकार्थत्वात् । कथां भविनां क्व ? वादे-विवादे, किमत्यसौ वादो सेव्यते यतो भयं···· ···· · · ··य चन्द्रस्तमा-ह्लादकत्वात् । पुन ······ ······ ······ भयोरपि कामविनाशकत्वात् । इत्यनु-लोमप्रतिलोमश्लोकार्थ. ।

स्पष्ट है कि उक्त श्लोक मे शिव और वीतराग पक्ष के दो अर्थ निक-लते हैं । सभी विशेषणो के दोनो पक्षो मे अलग-अलग अर्थ है ।

एक अन्य फारसी भाषा का पद्य देखिये ·

दोस्तीख्वान्दतुरा न वासइ (कु) या हामा चुनी द्रोग् हिसि ।
चीजे आमद वेसिदो दिलुसिरा बूदी चु नी कीवरु ॥
त बाला रहमाण वासइ चिरा दोस्ती निसस्ती इरा ।
अल्लाल्लाह तुरा सलामु बुचिरुक् रोजी मरा मे दहि ॥

दोस्तीख्वाद०—दोस्ती–अनुराग. ख्वान्द–स्वामिन् तुरा नव न वासइ-नास्ति कुया–कस्मिन्नपि हामाचुनी-सर्वं द्रोग्-असत्यं हिसि-तिष्ठति । आद्य-पदार्थ यत चीजे य. कोऽपि आमद-आजगाम वेसिदो-युष्मद् पार्श्वे दिलु-सिराबूदी-सञ्जातभव्यमानस चुनी-ईदृश. कीवर -कर्म्मकर मात्रापि । (द्वितीयपदम्) तथा तं बाला रहमाण. तस्योपरि हरमाण वीतराग वास इति विद्यते । चिरा-कुतः । दोस्ती निसस्ती-रागानुबन्ध इरा-अतः कारणात् अल्लाल्लाह—पूजावाचको शब्दो तुरा-तुभ्यं सलामु-नमस्कार । बुचिरुक्-महती-रोजी-विभूति. मरा-मे दहीति-देहि ।

अपभ्रंश का एक पद्य भी देखिये ·

जत्तीसीलीमेलावा केहा धण उत्तावली पिअ मंदमिणेहा ।
कन्न पवित्तडी जणु जाणइ दोरा विरइ माणुस जो मरई तसु किस निहोरा ।

इस पद्य के टीकाकार जिनप्रभ ने चार भिन्न-भिन्न अर्थ दिये हैं । स्पष्ट है कि सारे पद्य दृष्टिकूट हैं । देखने पर ऊपर से कुछ दूसरा अर्थ ज्ञात होता है और निकलता कुछ और ही हैं । यह संस्कृत के राक्षसकाव्य

की परम्परा का ग्रन्थ है जिसे अपनी विवृत्ति से जिनप्रभ ने सरल, सुबोध बना दिया है।

उक्त कृतियों को देखने से स्पष्ट है कि आचार्य जिनप्रभ की प्रतिभा बहुमुखी थी। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, फारसी आदि अनेक भाषाओं पर उनको समान अधिकार प्राप्त था। उनकी कवित्वशक्ति व विषय-विवेचनी-प्रतिभा अपने समय मे बेजोड थी। धर्म के गूढ रहस्यों को वे समझते थे। धर्म पर उनकी प्रगाढ श्रद्धा थी। इसके उपरान्त भी उनकी विचारधारा उदार थी। उनके कई स्तोत्र और गायत्रीविवरण आदि ग्रन्थ इस बात की पुष्टि करते है। वे न केवल एक जैन उपदेष्टा के रूप मे ही स्मरणीय है, वरन् धर्म व दर्शन के तत्त्वो के व्याख्याता, इतिहास की घटनाओं को सूचित करनेवाले, महाकाव्यकार, व्याकरण के तात्त्वज्ञ, टीकाकार आदि अनेक रूपो से युक्त एक असाधारण प्रतिभावान् विद्वान् थे और सबसे अधिक प्रसिद्धि उनकी स्तोत्रकार के रूप में है।

आचार्य जिनप्रभ का स्तोत्र-साहित्य

जिनप्रभ ने विशाल स्तोत्र साहित्य की रचना भी की है। ऐसा प्रसिद्ध है कि वे नित्यप्रति एकाध नवीन स्तोत्र की रचना करके आहार ग्रहण करते थे। उन्होने यमक-श्लेष-चित्र-छन्दोविशेष नयी-नयी प्रकार के ७०० स्तोत्रों की रचना की थी। इसका उल्लेख उनके सिद्धान्तागमस्तव की अवचूरि में मिलता है .

"पुरा जिनप्रभसूरिभि. प्रतिदिनं नवस्तवनिर्माणपुरस्सरं निरवद्याहार-ग्रहणाभिग्रहवद्भि. यमकश्लेषचित्रच्छन्दोविशेषादिनवनवभंगीसुभगा. सप्त-शतीमिताः स्तवाः।"

इन स्तोत्रो की रचना तीर्थंकर, गणधर, तीर्थ, तीर्थरक्षक, शारदा-देवी, अपने गुरु आदि को उद्देश्य करके हुई है। ये अपभ्रंश, प्राकृत, फारसी, संस्कृत आदि अनेक भाषाओं में रचित मिलते हैं। इसमें विविध छन्द, चित्रकाव्य आदि का प्रयोग हुआ है। कोई-कोई स्तोत्र-मंत्र-

गर्भित है। ७०० स्तोत्रो मे से अब तक लगभग अस्सी स्तोत्र मिलते है, इनमे से कुछ स्तोत्र काव्यमाला (सप्तम गुच्छक), प्रकरणरत्नाकर (भा० २-४), जैनस्तोत्रसग्रह, जैनस्तोत्रसमुच्चय, जैनस्तोत्रसन्दोह आदि मे प्रकाशित हुए है। पाटण, खभात, जैसलमेर, बीकानेर आदि के ज्ञानभंडारो मे खोज करने पर और भी मिल सकते है।

इन सभी स्तोत्रो में षड्भाषा-गर्भित-स्तोत्र अधिक आश्चर्य-प्रद है जिनमे फारसी-भाषा का भी साधिकार प्रयोग हुआ है। विदेशी भाषा पर ऐसा अधिकार तत्कालीन अन्य भारतीय लेखको मे अलभ्य है। नीचे प्राप्य स्तोत्रो का विषयानुसार वर्गीकरण करके सामान्य परिचय दिया जा रहा है

चतुर्विशति जिनस्तव

२४ तीर्थकरो की समवेत स्तुति मे प्रयुक्त स्तोत्रो की संख्या सबसे अधिक है। अब तक जिनप्रभ द्वारा रचित १३ चतुर्विंशति स्तवो का उल्लेख मिला है जिनमे ९ प्राप्य हैं। इनका परिचय इस प्रकार है

चतुर्विशतिजिनस्तवो मे २ स्तोत्र 'आ' से प्रारम्भ होनेवाले है। एक, जिसका उल्लेख मात्र मिलता है, का प्रारभ 'आनन्द-मुन्दर-पुरन्दर-नम्र' अक्षर-समूह से होता है। दूसरा, जिसका प्रथम श्लोक यह है

आनम्रनाकिपतिरत्नकिरीटरोचि नीराजितक्रमसरोजनिवासलक्ष्मी ।
उत्तापहेमपरमाणुमयप्रभो व श्री नाभिनन्दन-जिनाधिपति. पुनातु ॥

इसमे वसन्ततिलका छन्द प्रयुक्त हुआ है। इसमें कुल श्लोको की सख्या २५ है। अन्तिम श्लोक मे जिनप्रभ ने अपना नाम भी दिया है।

'ऋ' से प्रारम्भ होनेवाले तीन स्तोत्रो का उल्लेख मिलता है। एक स्तोत्र का प्रथम श्लोक इस प्रकार है .

ऋषभनम्रसुरासुरशेखर-प्रणतयालुपरागपिशगितम् ।
क्रमसरोजमहं तव मौलिना जिनवहे नवहेमतनुद्युते ॥ १ ॥

इस स्तोत्र मे २९ द्रुतविलम्बित छन्द प्रयुक्त हुए है। इसमें प्रत्येक श्लोक के अन्तिम चरण मे ३-३ अक्षरो की आवृत्ति करके यमक का प्रयोग किया गया है। यमक आचार्य जिनप्रभ का प्रिय अलंकार है। प्रस्तुत स्तोत्र मे कुछ उदाहरण देखिये—

सुकृतिन. कृतवर्मवराधवान्वयनभस्तलभासनभास्वरं।
श्रयत काचनवारिरुहच्छदच्छविमल विमलं जगदीश्वरम् ॥१३॥
उपनमन्ति तमीश समुत्सुका प्रणयते वरितुं सकलाश्रिय।
जगति तुभ्यमनन्त नमस्क्रियामकलये कलये द्विनयेन य ॥१४॥
अवतु धर्मजिनेन्द्र कुभावना–रजनिनाशनसपूहयोदय।
शममय समयस्तव सुव्रता तनय मा नयमामल विस्तर ॥१५॥

यमक प्रयोग करते हुए ही जिनप्रभ ने २४ वें श्लोक मे अपना नाम भी रख दिया है :

चलनकोटिविघट्टनचचली-कृत सुराचल वीर जगद्गुरो.।
त्रिभुवनाशवनाशविधौ **जिनप्रभवते** भवते भगवन्नम ॥२४॥

दूसरे स्तोत्र मे २९ द्रुतविलम्बित छन्द प्रयुक्त हुए है। इसमे भी उपर्युक्त रीति से यमकालकार का प्रयोग हुआ है। किन्तु इसमे केवल चतुर्थचरण का बन्धन नही है। चारों चरण यमकमय है। इसका प्रथम चरण उक्त विशिष्टता से युक्त देखिये —

ऋषभनाथ! भवनाथनिभानन!
प्रसृतमोहतमोहननक्षम!
दिश सुवर्ण! सुवर्ण सुवर्णरुक्!
परमकाममकाम! विदीर्णरुक्!

तीसरे स्तोत्र मे ३० द्रुतविलम्बित छन्द प्रयुक्त हुए है। प्रत्येक श्लोक के चतुर्थ चरण मे ३-३ अक्षरो के त्रिधा आवृत्ति होना इस स्तोत्र की प्रमुख विशेषता है। इसका प्रथम श्लोक इस प्रकार है :

ऋषभदेवमनन्तमहोदयं
नमत तं तपनीयतनूरुचम् ।
अजनि यस्य सुतो धुरि चक्रिणा
शुभरतो भरतो भरतोदरे ।।

इसी विशेषता से युक्त 'क' वर्ण से प्रारम्भ होनेवाला स्तोत्र २९ श्लोक वाला है। उसमे भी द्रुतविलम्बित छन्द प्रयुक्त हुआ है। इसके प्रथम दो श्लोक इस प्रकार है—

कनककान्तिधनु. शतपंचकोञ्छितवृषाकितदेहमुपास्महे ।
रतिर्जयिन प्रथम जिन नृवृषभं वृषभ वृषभञ्जिन. ।।१।।
द्विरदलाञ्छितवाञ्छितदायक क्रमलुठत्त्रिदशासुरनायक ।
स्तुतिपर पुरुषो भवति क्षितावजित राजितरा जितराग ते ।।२।।

अन्तिम श्लोक मे आचार्य ने अपना नाम भी दिया है

करकृताम्रफला पृणतो जिनप्रभवतीर्थमिभारिमधिष्ठिता ।
हरतु हेमरुचि सुदृशा सुखव्युपरमं परम परमम्बिका ।।

'ज' वर्ण से प्रारम्भ होनेवाला एक चतुर्विशति स्तव है। यह बहुत छोटा स्तोत्र है। इसमे ८ छन्द प्रयुक्त हुए है—७ उपजाति व एक शार्दूल-विक्रीडितम्। प्रथम श्लोक इस प्रकार है—

जिनर्पभ प्रीणितभव्यसार्थ-समस्तदोषाजिततीर्थनाथ ।
श्रीशंभवाखण्डलबधनंधा.स्वामिन् प्रजानामभिनन्दन त्वम् ।।

'त' से प्रारम्भ होनेवाला एक स्तोत्र है। इनमें २७ इन्द्रवजा और १ शार्दूल विक्रीडित छन्द प्रयुक्त हुए हैं। अन्तिम छन्द उपर्युक्त स्तोत्र का अष्टम छन्द है जिसमे आचार्य का नाम भी है। इस स्तोत्र के प्रत्येक चरण मे सखण्ड अथवा अखण्ड यमकालंकार का प्रयोग हुआ है। यमक के इस प्रकार के बहुल प्रयोग के उपरान्त भी स्तोत्र में प्रसादगुण का अभाव नही हो पाया है। यह रचयिता की क्षमता का द्योतक है। प्रथम दो श्लोक अवलोकनीय है—

तत्वानि तत्त्वानिभृतेषु सिद्धं भावारिभावारि विशेषधर्मम् ।
दुर्बोधदुर्बोधमहं हरन्तमारम्भमारम्भजताऽदिदेवम् ॥१॥
नेन्द्रा जिनेन्द्राजितलेस्तवेलं काहंतुकाहंतुरयं नयस्य ।
मामत्रमामत्रतथापि कुंद दंतावदंतावलचिह्नदीनम् ॥२॥

'न' अक्षर से प्रारम्भ होनेवाले २ 'चतुर्विशति जिनस्तव' हैं। एक छोटा है जिसमें केवल ९ द्रुतविलम्बित छन्द हैं। छोटा होते हुए भी प्रवाह और प्रसन्न-यमक प्रयोग की दृष्टि से यह उत्कृष्ट स्तोत्रों मे गिना जा सकता है। इसके प्रथम दो छन्द देखिये—

नत सुरेन्द्र जिनेन्द्र युगादिमाजित जिता किल कर्ममहारिपो ।
अभव संभव संभवनाथ मे प्रणत कल्पतरो कुरु मंगलम् ॥१॥
त्वमभिनन्दन नन्दननाथ मे ध्रुवगते सुमते सुमते सदा ।
सुकृतसद्म सुपद्म जिनेश मे प्रवरतीर्थपते कुरु मंगलम् ॥२॥

दूसरे स्तोत्र मे २५ छन्द है। इसका प्रारम्भ 'नाभेयं शोचि निर्ममो' शब्दो से होता है।

'प' अक्षर से प्रारम्भ होने वाले स्तोत्र दो है। एक मे २९ श्लोक है। छन्द उपजाति प्रयुक्त हुआ है। अनायास ही आजानेवाले अनुप्रासो की छटा इसमें भी दर्शनीय है। इसका प्रथम श्लोक है—

पात्वादिदेवो दशकल्पवृक्षा यस्मादधीत्येहितदानविद्याम् ।
अपूपुजन् यच्चरणौ नखालिव्याजेन नूनं नवपल्लवैः स्वैः ॥

अन्तिम श्लोक मे जिनप्रभ ने अपना नाम भी दिया है। दूसरे स्तोत्र मे २७ अनुष्टुप् छन्द है। प्रत्येक श्लोक के द्वितीय चरण के अक्षरो को चतुर्थ चरण मे दुहराया गया है। खड-यमक व श्लेष का प्रयोग इस स्तोत्र की सबसे बडी विशेषता है। इसका यह प्रथम श्लोक है—

प्रणम्यादिजिन प्राणी मरुदेवांग जायते ।
हरणे पापरेणूना मरुदेवाग जायते ॥ १ ॥

कुछ और यमक के उदाहरण देखिये—

त्वन्मते रमते श्रेयन् कमलायतनेत्र या ।
सा धी प्रिया मेऽस्तु कृतं कमलायतनेत्रया ॥११॥
वासुपूज्य सविद्भास्त बन्धूकारुण्ययोगत ।
शरणं त्वत्क्रमौ विश्व-बन्धूकारुण्ययोगत ॥१२॥

२८ वे शार्दूलविक्रीडित छन्द मे जिनप्रभ ने अपने नाम को बडे ही अधिकारपूर्ण ढंग से चक्रबन्ध काव्य मे जड दिया है और इससे श्लोक मे किसी प्रकार का दुर्बोधत्व नही आने पाया है—

लक्ष्म्या क्लृप्टिकरं जि[१]नेन्द्रमनघ भ[४]द्रावलीमन्दिरं,
वन्दे तस्य गिर न[२]तभ्रमतम. सू[५]र्य धिया कारणम् ।
सार्वायप्रथितप्र[३]भावमखिलारि[६]ष्टौघहानिप्रद
दम्भव्यालमृणि वरेण्यसमय रगद्गुणं बोधिदम् ॥

काले अक्षरो के शब्दो मे अकित सख्यानुसार जिनप्रभ का नाम वर्णित है ।

अन्तिम १३ वॉ 'चतुर्विशतिजिनस्तव' 'य' अक्षर से प्रारभ होता है । इसमे ३० श्लोक है । इसका यह प्रथम छन्द है—

य सततमक्षमालोपशोभितं सेवतेऽमरालीश· ।
कमलासन स्वयम्भू स. श्रीमान्नाभिभूर्जयति ॥

पार्श्वजिनस्तव

इस स्तोत्र मे श्लेष का प्रयोग हुआ है । इसमें विष्णु, राम, कपिध्वज, उमा, प्रद्युम्न, राम, सौमित्र आदि देवी-देवताओ के नाम आये है जो जिनप्रभ की उदार विचारधारा को प्रकट करते है । श्लिष्ट-प्रयोगो से सारा स्तोत्र ही द्वयाश्रयकाव्य जैसा बन गया है । 'चतुर्विंशतिजिनस्तव' के बाद परिमाण की दृष्टि से 'पार्श्वजिनस्तव' का स्थान है । यद्यपि सख्या मे ये उक्त स्तोत्रो से भी अधिक—१६ हैं परन्तु है अपेक्षाकृत छोटे । 'चतुर्विशति-जिन-स्तवो' मे यमकालकार का प्रयोग ही विशेष उल्लेखनीय

है, परन्तु 'पार्श्वजिन-स्तवों' में अनेक प्रकार के प्रयोग देखने में आते हैं, यथा—नवग्रहगर्भित, षड्ऋतुमय, उपसर्गहरस्तोत्र की पादपूर्ति के रूप में, आदि। इनमें मालिनी, स्रग्धरा आदि बड़े छन्दों व प्राकृत भाषा का प्रयोग भी हुआ है। अकारान्त क्रम के उनका परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

'अ' स्वर से प्रारम्भ होनेवाले दो पार्श्वजिनस्तव हैं। एक संस्कृत भाषा में और दूसरा प्राकृत में। संस्कृत पार्श्वस्तव में फलवर्द्धि (फलौदी) के मण्डन स्वरूप पार्श्व स्तवन है। इसमें ११ 'मालिनी' व १ 'शार्दूल-विक्रीडित' कुल १२ छन्द प्रयुक्त हुए हैं। इसके अन्तिम छन्द में रचना-काल भी दिया हुआ है—

नन्[९]द[६]र्तु[३]ज्वलनक्षपा[१]कर (१३६९) मिते संवत्सरे वैक्रमे,
राधस्याधिशिती त्रयोदशिबुधे संघेन साद्धं सुधी।
यात्रायै फलवर्द्धिकामुपगतः स्तोत्र तवेदं प्रभो,
श्रीमत्पार्श्वजिनप्रभो मुनिपतिः संसूत्रयामासिवान् ॥ १ ॥

इसका प्रथम श्लोक इस प्रकार है—

अधियदुपनमन्तो यात्रिका· प्रीतिपात्रा
अविकलफलशालि प्राणित मन्वते स्वम्।
स जयति फलवर्द्धिस्थानक्लृप्तावतार-
स्त्रिभुवनभवनश्रीदीपकः पार्श्वनाथ. ॥

दूसरा स्तोत्र प्राकृत-भाषा में है। षड्ऋतुवर्णनगर्भित होना इसकी प्रमुख विशेषता है। इसमें ७ प्राकृत गाथाएँ प्रयुक्त हुई हैं। प्रथम गाथा में वसन्त-वर्णन के साथ पार्श्वनाथ की स्तुति की गई है। देखिये—

असमसरणीय ज ओ निरंतरामोय सुमणमहमहिओ।
भमरहिओ पियसुहओ जय इव संतुव्व पासजिणो ॥

इसी तरह शरद् वर्णन—

उवसंतपंकमम्मं विमलियभुवणासयं अमलबिसयं।
सियपक्खाणदयरं सेवह सरयं व पासजिणं ॥

एक स्तोत्र 'क' वर्ण से प्रारम्भ होता है। इसमे १५ स्रग्धरा, १ शार्दूलविक्रीडित और १ वसन्ततिलका—कुल १७ श्लोक आये है। इसका प्रथम श्लोक इस रूप मे है :

का मे वामेय शक्तिर्भवतु तव गुणस्तोमलेशप्रशस्तौ
न स्याद्यस्यामधीश. सुरपतिसचिवस्यापि वाणी विलास. ।
माने वा वार्धिवारा कलयति क इव प्रौढिमारूढधारा
भक्तिव्यक्तिप्रयुक्तस्तदपि किमपि ते संस्तव प्रस्तवीमि ॥

भाषा-प्रवाह व भावगुरुता की दृष्टि से यह स्तोत्र जिनप्रभ के सर्वोत्कृष्ट छन्दो में से एक है। एक उदाहरण पुनश्च देखिये—

संसाराम्भोधिवेला निबिडजडमतिध्वान्तविध्वंसहंस
श्यामाश्यामागधामा शठकमठतपोधर्मनिर्माथपाथ ।
स्फारस्फूर्जत्फणीन्द्र प्रगुणफणमणिज्योतिरुद्योतिताशा-
चक्रश्चक्रिध्वजं त्वं जय जिन विजित द्रव्यभावारिवार ॥ २ ॥

दो स्तोत्र 'ज' वर्ण से प्रारभ होनेवाले है। दोनो संस्कृत मे है। एक २१ श्लोकात्मक फलवर्द्धिपार्श्वस्तव है जिसमे २० उपजाति १ शार्दूलविक्रीडित छन्द है। इसका प्रथम श्लोक यह है—

जयामल श्रीफलवर्द्धिपार्श्व पार्श्वस्थनागेन्द्र पृथुप्रभाव ।
भावल्लरी चेष्टितदिग्वितान तानर्चयाम स्तुवतेऽत्र ये त्वाम् ॥

दूसरा जीरापल्लीपार्श्वस्तव है जिसमे १४ इन्द्रवज्रा व १ शार्दूलविक्रीडित—कुल १५ छन्द प्रयुक्त हुए है। प्रत्येक छन्द मे यमक अलकार का प्रयोग भी यथास्थान हुआ है। अधिकतर प्रथम व तृतीय चरणो के अन्तिम अक्षरो की आवृत्ति द्वितीय व चतुर्थ चरण के प्रारम्भ में होती है। प्रथम दो श्लोक उदाहरणार्थ देखिये—

जीरिकापुरपति सदैव तं दैवतं परमहं स्तुवे जिनम् ।
यस्यनाम जगतो वशंकरं शंकरं जपति मंत्रवज्जनः ॥

नाथतस्तव मुखेन्दुदर्शनं दर्शनं च नयनामृतं स्तुवे ।
येन मे दुरिततापहारिणा हारिणा लसति पुण्यवारिधि: ।।

'द' वर्ण से प्रारंभ होनेवाला एक 'पार्श्वस्तव' है जिसमें १० प्राकृत गाथाएँ हैं। स्तोत्र नवग्रह-स्तुतिगर्भित है। इस प्रकार का प्रयोग भी नितान्त नवीन है। प्रथम दो गाथाओ को देखिए जिनमें प्रथम में सूर्य और दूसरे मे चन्द्रमा की स्तुति के साथ पार्श्वनाथ की स्तुति की गई है—

दोसावहारदक्खो नालीयायरवियासगोपसरो ।
रयणत्तयस्सजणओ पासजिणो जयउ जयचक्खू ।।
कयकुवलयपडिबोहो हरिणकियविग्गहो कलानिलओ ।
विहिआरविन्दमहणो दिअराओ जयइ पासजिणो ।।

'त' वर्ण से प्रारम्भ होनेवाला भी एक ही स्तोत्र है। इसमें ११ इन्द्रवज्रा छन्द प्रयुक्त हुए हैं। यह अष्टप्रातिहार्यमय है। प्रत्येक श्लोक मे द्वितीयचरण के शब्दो की चतुर्थचरण मे आवृत्ति हुई है। सभग श्लेष की छटा सर्वथा दर्शनीय है। प्रथम श्लोक इस प्रकार है—

त्वां विनुत्य महिमश्रियाहं पन्नगाकमठदर्पकोषिणम् ।
स्वा पुनामि किमपीनरक्षिता-पन्नगा कमरुदर्पकोषिणाम् ।।

दो उदाहरण और भी देखिये —

तादृशः श्रवणस्तवोत्तमा कारकायवरदेशनाध्वने ।
प्रस्थित क इव पाप्मना निरा कारकायवरदेशनाध्वने ।। ४ ।।
नाकिनामकयुगेन सादरं चामरैर्विषदभागवीज्यसे ।
त्व न कैर्भव सुखाय मुह्यो चामरैर्विषदभागवीज्यसे ।। ५ ।।

'प' वर्ण से प्रारंभ होनेवाले तीन 'पार्श्वस्तव' है जिनमे एक प्राकृत मे है जिसमे २२ पद्य हैं। इसकी विशेषता यह है कि इसमे सम्पूर्ण उवसग्गहर (उपसर्गहर) स्तोत्र की समग्र रूप से पादपूर्ति हुई है। इसका प्रथम पद्य यह है—

पणमिय सुरनपूइया पयकमल पुरिसपुंडरीय पासं ।
सथवण भत्तिवलणो, भणामि भवभमणभीममणो ।।

अन्तिम पक्ति में 'भ' व 'ण' अक्षर की आवृत्ति से उत्पन्न चमत्कार **सर्वथा दर्शनीय है।** उपसर्गहर-स्तोत्र की प्रथम गाथा है—

उपसग्गहरं पासं पासं वंदामि कम्मघणमुक्कं।
विसहरविसनिन्नासं मंगलकल्लाणआवास ॥

आचार्य जिनप्रभ ने अपने स्तोत्र की पादपूर्ति दूसरे, तीसरे, **चौथे** आर पाँचवे पद्य मे की है—

उपसग्गहरं पासं पणमह नट्टट्ठकम्मदढपासं।
रोसरिउभेयपासं विणहिय लच्छीतणयवासं ॥ २ ॥
जं जाणइ तं लुक्कं **पासं वंदामि कम्मघणमुक्कं।**
जो झाइऊण सुक्कं झाणं पत्तो सिवमलुक्कं ॥ ३ ॥
विसहर विसनिन्नासं रोसगइंदाइभयकयविमाणं।
मेरुगिरिसन्निकासं पूरिअ आसं नमह पासं ॥ ४ ॥
मरगयमणितणुभासं **मंगलकल्लाण आवासं।**
ढालियभवसंतापं थुणिमो पासं गुणपयासं ॥ ५ ॥

अन्तिम पद्य में उवसग्गहर-स्तोत्रकार भद्रबाहुस्वामी और साथ ही अपना नाम भी जिनप्रभ ने जोड दिया है—

सिरिभद्दबाहुरइयस्स जिणपहसूरिहि मं सपहावं।
संथवणस्स समगस्स विहिय बिबुहाणय पयस्स ॥२२॥

दूसरे 'प' वर्ण से प्रारंभ होनेवाले एक अन्य स्तोत्र मे ८ उपजाति छन्द प्रयुक्त हुए हैं। इसकी प्रमुख विशेषता यह है प्रथम व तृतीय चरण के अन्त के अक्षरसमूह की दूसरे व चौथे चरण के प्रारंभ मे आवृत्ति की गई है। सभंगश्लेष की छटा दर्शनीय है। इसमे प्रथम व द्वितीय पद्य उदाहरण के लिए पर्याप्त होगे—

पार्श्वं प्रभुं शश्वदकोपमानदकोपमानं भववह्निशान्तौ।
आराधता दत्तनिरंतरायं निरंतरायं पदमाप्तुमीडे ॥
श्रीक्षेजगन्नेत्र महाभयत्र महाभयत्रस्य तवाह्रियुग्मम्।
पुण्यः स एवाऽ वसरोऽमराली सरोमरालीव निषेवते यत् ॥

तीसरे स्तोत्र का प्रारंभ 'पार्श्वनाथमनघं' अक्षरों से होता है। इसमे ९ छन्द होने का उल्लेख मिलता है।

'स' अक्षर से प्रारंभ होनेवाला एक प्राकृत स्तोत्र। इसमे १२ छन्द है। प्रथम ११ आर्या छन्द हैं। अन्तिम वसन्ततिलका नामक छन्द है। इसमे भी प्रथम व तृतीय चरण के कुछ अक्षरो की आवृत्ति द्वितीय व चतुर्थ चरण के प्रारंभ में होती है। एक शब्द बहुधा त्रिधा आवृत्त हुआ है। प्रथम दो छन्द उदाहरण के लिए देखिये—

> सयलाहिवाहिजलधर समूहसंहरणचंडपवमाणं।
> फलवद्धिपासनाहं संथुणिमो फणय इट्ठफलं॥
> विहुयासं विहुयासं विहुयासं पत्तमभिथुणन्ति तुमं।
> अमयरया अमयरया अमयरया णगइखमवयणं॥

स्पष्ट है कि यह भी फलवद्धि पार्श्वनाथ का स्तवन है। एक अन्य फलवर्द्धिमण्डनपार्श्वस्तव 'श्री' अक्षर से प्रारम्भ होता है जिसमे ९ छन्द है। प्रथम व नवम छन्द संस्कृत में है शेष ७ प्राकृत में। प्रथम छन्द यह है—

> श्रीफलवर्द्धिपार्श्वप्रभुमोकार समग्रसौख्यानाम्।
> त्रैलोक्याक्षरकीर्ति लक्ष्मीबीजं स्तुवेऽर्हताम्॥

इस स्तोत्र के अन्तिम श्लोक मे रचनाकाल भी दिया गया है—

> विक्रमवर्षे करवसुशिखिकु (१३८२) मिते माघवासितदशम्याम्।
> व्यधित जिनप्रभसूरिस्तवमिति फलवर्द्धिपार्श्वप्रभो॥

'श्री' अक्षर से प्रारंभ होनेवाले ४ पार्श्वजिनस्तव और भी हैं। जिनमें एक स्तोत्र बहुत बड़ा है। इसमे ४३ अनुष्टुप् व १ द्रुतविलम्बित कुल ४४ छन्द प्रयुक्त हुए हैं। इस स्तोत्र की विशेषता यह है कि सभी विषम छन्दो (१,३,५ आदि) में द्वितीय चरण के सभी अक्षरों की आवृत्ति चतुर्थ चरण में हुई है। इसी तरह सम छन्दों (२,४,६ आदि) मे प्रथम चरण के अक्षरों की आवृत्ति तृतीय चरण में हुई है। इस स्तोत्र का प्रारंभिक छन्द है—

श्री पार्श्व· श्रेयसे भूयादलितालसमानरुक् ।
अनन्ता संसृतिर्येन दलिताऽलसमानरुक् ॥ १ ॥

दो सम छन्द देखिये—

जिनास्यसारसंसार किं नेदानी वराक रे ।
जिनास्यसारसं सारमद्य यद्वीक्षितं मया ॥ ८ ॥
कल्याणगिरिधीरे मे त्वयि चेत् परमेश्वर ।
कल्याणगिरिधीरे मे करस्था सर्वसपद ॥ १० ॥

इसी तरह दो विषम छन्द—

येन त्वदागम स्वामिन् स्याद्वादेनोपराजित· ।
निर्णीत· स कुतीर्थ्याना स्याद् वादे नो पराजित. ॥ ३९ ॥
त्वद्गुणस्तुतिरऽभोदकान्ते यमकहारिणी ।
भव्यानऽवस्तु विज्ञाना कान्त्येयमऽकहारिणी ॥ ४३ ॥

केवल सभंगश्लेष के चमत्कार की दृष्टि से ही यह स्तोत्र महत्त्वपूर्ण नही है वरन् भावगुरुता और साथ ही भक्ति-भावना की दृष्टि से भी इस स्तोत्र को आचार्य जिनप्रभ के स्तोत्रो में विशेष स्थान दिया गया है ।

अन्य ३ पार्श्वजिनस्तव छोटे है । एक में ६ उपजाति व २ वसन्त-तिलका छन्द प्रयुक्त हुए है जिसके प्रत्येक श्लोक के प्रथम व द्वितीय तथा तृतीय व चतुर्थ चरणो मे पादान्त यमक है । अपनी समस्त विशेषताओ से उपेत प्रथम छन्द देखिये—

श्री पार्श्वपादानतनागराज प्रोत्सर्पदेन कफनागराज ।
सता हृताऽसत् परिणामरागं त्वा संस्तुम. स्थैर्य गुणाऽमराऽगम् ॥

इसी तरह अन्तिम वसन्ततिलका भी दृष्टव्य है—

इत्थं फणीन्द्रसततश्रितपार्श्वनाऽथ
स्त्री वा स्तवं पठति यस्तव पार्श्वनाथ ।
तस्मै स्पृहामवृजिनप्रमवाय नव्या
लक्ष्मीर्विभर्ति सुमनः समवायनव्या ॥

अन्य पार्श्वजिनस्तव में भी ९ छन्द व्यवहृत हुए हैं—८ अनुष्टुप् व अन्तिम १७ अक्षरो का हरिणीछन्द। सभी छन्दों के द्वितीय चरण के अक्षरो को चतुर्थ में दुहरा कर पादान्त यमक दिखाया है। इसके प्रथम दो छन्द हैं—

श्रीपार्श्वं भावतः स्तौमि महोदधिमगर्हितम्।
उद्धरन्तं जगद्दुखमहोदधिमगर्हितम्॥
दृग्गोचरं भवान् येषां प्रियंगुरुचिरायते।
प्राप्नुवन्ति सुखं नाथ! प्रियं गुरु चिराय ते॥

तीसरे पार्श्वजिन-स्तोत्र मे ८ अनुष्टुप् छन्द है। प्रत्येक छन्द के प्रथमाक्षरो से आचार्य का नाम (श्रीजिनप्रभसूरय.) बनता है। इस प्रकार अपने नामाक्षरो का प्रयोग करने की आचार्य की सूझ भी अद्भुत है। इसके प्रथम तीन श्लोक देखिये जिनमें 'श्री जिन' अक्षरो का प्रयोग है—

श्री पार्श्वं परमात्मानं त्रैलोक्याभयसाक्षिणम्।
विज्ञानादर्श सङ्क्रान्तलोकालोकमुपास्महे॥
जिन. त्वन्नाममन्त्रं ये घ्यायन्त्येकाग्रचेतस।
दुराधामपि श्रेय श्रियं सवनयन्ति ते॥
नमस्ते जगता पित्रे विधात्रे सर्वसम्पदाम्।
सवित्रे भव्यपद्मानामीशित्रे भुवनत्रयम्॥

वीर जिनस्तव

संख्या की दृष्टि से महावीर स्वामी की स्तुति मे प्रयुक्त होने वाले वीर जिनस्तवो का तीसरा स्थान है। 'वीर जिनस्तव' १० हैं। जिनमे 'अ' से प्रारम्भ होनेवाला एक, 'क' से प्रारंभ होनेवाला एक, 'च' से प्रारम्भ होनेवाला एक, 'न' से प्रारंभ होनेवाला एक, 'प' से प्रारम्भ होनेवाला एक, 'स' से प्रारंभ होनेवाला एक, 'व' से प्रारम्भ होनेवाला एक व 'श्री' से प्रारंभ होनेवाले ३ स्तोत्र हैं। इनमें से कुछ अत्यन्त प्रसिद्ध है। एक चित्रकाव्यमय है जिनमें कुल २७—२४ अनुष्टुप्, १ वसन्ततिलका व २ शार्दूल विक्रीडित छन्द हैं। इसका प्रथम श्लोक है—

चित्रै: स्तोष्ये जिनं वीरं चित्रकृच्चरण मुदा ।
प्रतिलोमानुलोमाद्यै खड्गादिस्चाति चारुभि ॥ १ ॥

एकाक्षरपाद और एकाक्षर के उदाहरण देखिये—

लाललालोललीलालं ततताततितात ते ।
ममाममामुममुमा ननानेननन्नोनम ॥११॥
काकंकि काककंकंक: केकाकोककेकिकम् ।
कककाकुककोकैक. ककु: कौकोंककाककम् ॥१२॥

एक श्लोक मे चक्रबन्धचित्रकाव्य में कवि ने अपना नाम भी गुफित किया है—

भग्नाकृत्यपथो जिनेश्वरवरो भव्याब्जमित्रक्रिया-
दिष्टं तत्त्वविगान्रदोषरहितै सूक्तैस्तवैस्तर्पण. ।
जन्माचिंत्यसुखप्रदा सरचितारिष्टक्षयो व सदा
दाता शोभनवादिधी कजदलायामेक्षण सविदा ॥

इस स्तोत्र मे मुरजबन्ध, गोमूत्रिका, सर्वतोभद्र, रथपद, अर्द्धभ्रम, खड्ग, मुशल, त्रिशूल, हल, धनु, शर, शक्ति, बीजपूर, हारबन्ध, चामर, चक्र, अष्टदलकमल, षोडशदलकमल आदि चित्रकाव्यो का प्रयोग हुआ है।

इसी तरह एक दूसरे स्त्रोत्र के अन्तर्गत विविध छन्दों के नाम गर्भित हैं। इसमे २५ विविध श्लोक है। प्रथम श्लोक शुद्धविराट् देखिये—

कंसारिक्रमनिर्यदापगाधाराशुद्धविराट्छदच्छविम् ।
छन्दोभिर्विविधैरघीरस्तोष्येऽहं चरमं जिनेश्वरम् ॥

एक अन्य श्लोक देखिये, जिसमे मालिनी नाम आया है—

अतिमहतिभवोर्मिमालिनीह भ्रमन्तो
जननमरणवीच्याघातदोदूयमान. ।
कथमपि पृथुपुण्याः प्राणिन. प्राप्नुवन्ति
प्रवहणमिव केचिच्छासनं तावकीनम् ॥१७॥

एक अन्य स्तोत्र पचवर्गपरिहारमय है जिसमे २६ श्लोक है जिसका प्रारम्भ इस श्लोक से होता है—

स्व· श्रेयससरसीरुहसूरं श्रीवीरं ऋषिवरं सेव ।
सविशेषहर्षरसवशसुरासुरव्यूहसेव्यांऽह्लिद्या ॥

एक वीरस्तव में लक्षण प्रयोग मिलते हैं। उसमें १७ श्लोक आये है जिसका प्रारम्भ इस श्लोक से होता है—

निस्तीर्णविस्तीर्णभवार्णवं श्रै रुत्कर्णमाकर्णितत्रर्णवादम् ।
सुपर्णमंहोहि दमे सुपर्ण श्रीपर्णवर्णं विनुवामि वीरं ॥१॥

समासों के लक्षणो का प्रयोग इस श्लोक में दृष्टव्य है—

द्विगोरिव तत्प्रणतस्य संख्या
पूर्वा प्रवृत्तिर्न कुतीर्थिकानाम् ।
विभो बहुव्रीहि समासदत्व-
मन्यार्थ एवोयदधासिवृत्तिम् ॥४॥

एक महावीरस्तव पंचकल्याणकमय है। इसमे ३६ श्लोक व्यवहृत हुए हैं। प्रारम्भ इस श्लोक से होता है—

पराक्रमेणेव पराजितोऽयम्
सिंहः सिषेवे धृतलक्ष्मदम्भ. ।
सुखानि वः खानिरयं रमाणा
द्वैमातुरस्तीर्थकर करोतु ॥

अन्य स्तोत्र

दो स्तोत्र ऋषभदेव से सम्बन्धित हैं। जिनमें से एक में कान्तत्र-व्याकरण के सूत्रों को गुम्फित किया गया है। इसमे २३ श्लोक हैं प्रथम कुछ श्लोक देखिये जिनमे ग्रथित सूत्रो को रेखांकित किया गया है :

सिद्धोवर्णसमाम्नायः स्तव जिह्वे चिरन्तनः ।
शत्रुञ्जये श्रयल्लेभेऽनन्तसिद्धे यदास्पदम् ॥

दशार्हि तीर्थ व्ययक्षनभोगक्षयात्मिका स्यु ईविणे चतस्र ।
श्रद्धालुभिस्तत्र **चतुवर्शावौ स्वराः** कृतार्थी क्रियतेऽत्र शैले ॥
तल्लेप्य बिम्बसहित. शैलेऽत्र स पूज्यते त्रैलोक्यापि ।
अर्हन् **पूर्वो ह्रस्वः** क्रियते येन च भव **परो दीर्घः** ॥
लोकोपचाराद् ग्रहणसिद्धिः स्यात् क्वापि कस्यचित् ।
सिद्धान्तामृतपूरे तु स्नात्यस्य महिमागिरे ॥
आवृत्तकालापकनामसंधि-सूत्रै कवित्वेरिति पुण्डरीक ।
स्तुतो गिरिः सम्प्रति सन्निधाय मुदास्तुवे श्रीऋषभं जिनन्द्रं ॥

उन्ही से सम्बन्धित चार युगादिदेव स्तव है जिनमे एक अष्टभाषामय है। इसमे ४१ विविध भाषाओ के छन्द व्यवहृत हुए है। इस स्तोत्र का प्रारंभ इस सस्कृत आर्या से होता है—

निरवधिरुचिरज्ञान, दोषत्रयविजयिन सता ध्येयम् ।
जगदवबोध निबन्धनमादिजिनेन्द्रं नवीमि मुदा ॥

प्राकृत भाषा का प्रारम्भिक छन्द है .

तमकसिणसप्परवयमो रमोरउल्ला हु ते किलिस्सति ।
तुह सासणापिध जे कुणति विविहे तव किलेसे ॥ ५ ॥

मागधी भाषा का प्रारंभिक पद्य देखिये

तुहश्चस्तिदभावस्तं गदप्रंजेशमरपथवज्जं ।
ते यिणकुमदलक्खशवशे मिश्चादिस्टीपदे दिभवे ॥ ९ ॥

पैशाचीभाषा का प्रारम्भिक पद्य दृष्टव्य है

विबुधानरा चिन्नानत् अनज्ज सामज्जपुज्जतिसपज्ज ।
रतूणहितयके मे कतसिद्धि कुतं विनोपनय ॥१३॥

यह एक अन्य पद्य चूलिकापै-शाची का है :

काठंसि नेहफलिता तुहवतनं सेवतें लमा अनरवं ।
हातून फलं कुरु कुनंप्पुग्मं सकलंकमपि च बिधुं ॥१७॥

शौरसेनी भाषा का प्रारम्भिक पद्य है—

कुमुदमकधनिदानं ता इह धर्माण विज्जदे भगवं।
चिन्दाविदावनय्येव भोदि पावाण नाघ इमा ॥२१॥

पचीसवाँ पद्य समसंस्कृत का प्रथम श्लोक है—

हेमसरोरुहभासं कलिमलकमलालिमंघहिमभासं।
भवभयधूलिमहाबल नाभेय भवंतमभिवन्दे ॥

दस पद्य अपभ्रंश भाषा के हैं जिनमे प्रथम तथा क्रम से उन्तीसवाँ है—

तउ रेहइ अलि सामली चिहुरावलि भुवि पिट्ठि।
निज्जिय रिउबलक्खाणदुगसुहउहणं असिलट्ठि ॥२९॥

चालीसवे संस्कृत श्लोक मे कवि का प्राक्तन नाम शुभतिलक बडे ही कलात्मक ढग से गुंफित है। देखिये—

नन्दासोरुविशुद्धयोगरसभोन्मीलत्ॅ प्रतोपोन्वितं,
शस्तं सौष्ठवभग्नमोहरचनं स्त्वं कं जहस्तच्छवि.।
रुच्याभाश्करति³ग्म सिद्धरमणी सक्लृप्तभाव. परं,
रता ज्ञानरमा शमास्तरुष मे तन्या सुविद्यां चिरम् ॥

अवचूरिकार ने आचार्य का प्राकृत नाम शुभतिलक दिया है। भाषा की विविधता के साथ सहजगंभीर भाव की दृष्टि से यह स्तोत्र जिनप्रभसूरि के स्तोत्र-साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

युगादिदेव ऋषभदेव से सम्बन्धित एक अन्य महत्त्वपूर्ण स्तोत्र शार्दूलविक्रीडित छन्द मे विरचित है। इसमें ३३ श्लोक हैं। प्रथम श्लोक देखिये—

मेरौ दुग्धपयोधि वा. प्लवमिषाज्जन्माभिषेके ध्रुवं
यत्कीर्तिप्रकराः प्रसस्तुरभितो लोकत्रयीं लङ्घितुम्।
नैव क्वापि कदापि युष्मदपरं स्वामी करिष्याम (?) इ-
त्यङ्गस्पर्शनतः प्रणीतशपथास्तं नाभिसूनुं स्तुमः ॥

इस स्तोत्र मे भी भावो की अद्भुत स्रोतस्विनी प्रवहमान है। स्वयं रचयिता ने अन्तिम श्लोक में इस भावगर्भित स्तोत्र को 'सुधीजनश्रोत्र-सुधासुगन्ध.' कहा है। देखिये—

सुधीजनश्रोत्रसुधासुगन्धः शार्दूलविक्रीडितवृत्तबन्ध.।
सतामयं भावरिपुद्विषेषु शार्दूलविक्रीडितमातनोतु ॥३३॥

शेष तीन ऋषभदेव से सम्बन्धित स्तोत्र छोटे है। प्रत्येक मे ११ पद्य हैं। इनमे एक पद्य 'अल्लाल्लाहि' शब्दो से प्रारंभ होता है और फारसी भाषा में है। प्रथम पद्य देखिये—

अल्लाल्लाहि तुराहं कीम्बरु सहियानु तुं मराख्वाद ।
दुनीयक समेदानइ बुस्मारइ बुध चिरा न हुश्र ॥ १ ॥

दूसरा प्राकृत भाषा में है । जिसका प्रथम पद्य देखिये—

नयगमभगपहाणा विराहि आराहि आवि सपमाणा ।
भवसिवदाणसमाणा जिणवरआणा चिरं जयतु ॥ १ ॥

अन्तिम पद्य में रचयिता ने अपना नाम भी दिया है—

इइ विण्णत्तो जिणपहु ! जिणपहसूरीहि जगगुरु पढमो ।
विण्णत्तीइ पसायं निव्विग्घं कुणउ अम्हाणं ॥ १ ॥

उक्त स्तव का नाम रचयिता ने ऋषभदेवाज्ञास्तव दिया है। अन्तिम युगादिजिनस्तव में भी ११ श्लोक है। ये सब अनुष्टुप् छन्द में है। इस स्तोत्र का यह प्रथम छन्द है—

अस्तु श्रीनाभिभूर्देवो विपत्त्रासनकर्मठ ।
पवित्रः पोषयेन्नाकं सुधर्माधिपति. श्रिये ॥

अजितजिन से सम्बन्धित केवल एक स्तोत्र मिलता है। संभव है जिनप्रभ के अप्राप्त स्तोत्रो के उपलब्ध होने पर और भी मिल सकें। इस स्तोत्र में २१ श्लोक है। प्रथम बीस वसन्ततिलका छन्द हैं और अन्तिम शार्दूलविक्रीडित है। यह स्तोत्र भी बड़ा चमत्कार पूर्ण है। इसमें प्रत्येक

दो-दो चरणों में तुक मिलाई गई है । अन्त्यानुप्रास का ऐसा सफल प्रयोग संस्कृत साहित्य में कम ही मिलता है । इस श्लोक का प्रथम श्लोक देखिये—

विश्वेश्वरं मथितमन्मथभूपमानं
देवं क्षमातिशयसंश्रितभूपमानम् ।
तीर्थाधिराजमजितं जितशत्रुजातं
प्रीत्या स्तवीमि यमकैर्जितशत्रुजातम् ॥

अन्तिम चार अक्षरो की आवृत्ति दूसरे चरण में होने के कारण यह यमक तो है ही । कही संपूर्ण प्रथम चरण तृतीय चरण में आवृत्त हुआ है जिसमे सभंगश्लेष की छटा अपूर्व है । तीसरा श्लोक देखिये—

आनन्दकंदलितमानसदैवतेन
स्तोतव्ययः सुरपुरन्ध्रिकटाक्षपाशः ।
आनन्दकं दलितमानसदैवतेन
त्वामेकवीरमपहाय न मन्मथोऽन्यम् ॥ ३ ॥

अष्टम श्लोक मे चारो चरणो में प्रथमचरण के शब्द ही दोहराये गए हैं फिर भी भावप्रेषण मे किसी प्रकार की कमी न आने पाई है। देखिये—

सत्यादराजितसमानवकामदारो
सत्यादराजितसमानवकामदारो ।
सत्यादराजितसमानवकामदारो
सत्यादराजितसमानवकामदारो ॥ ८ ॥

यमक का चरमचमत्कार वहाँ देखने को मिलता है जहाँ सारा १२ वाँ श्लोक पुनः तेरहवे के रूप में दोहराया गया है । दोनों श्लोकों का अक्षर विन्यास सर्वथा दर्शनीय है—

संपन्नकामलसदागमनाभिभूत
भावारितापचितिकारसभारती ते ।

भव्याय देहि तरसा तरसा प्रसिद्ध
भूमानमत्रभवती. कमलायताक्ष ।। १२ ।।

तथा—

संपन्न कामल सदागमनाभिभूत
भावारितापचिति का रसभा रती ते ।
भव्यायदेहितरसा तरसा प्रसिद्ध
भूमानमत्र भवती कमलायताक्ष ।। १३ ।।

अन्तिम श्लोक मे जिनप्रभ ने अपना नाम तो दिया ही है साथ ही 'आनन्दनिष्यन्दो' स्तोत्र को पापनाशक भी कहा है—

यं त्रैलोक्यपितस्तव स्तवमिमं सन्दृब्धवान् मुग्धधी—
रप्याचार्यजिनप्रभ श्रवणयोरान्दनिष्यन्दिनम् ।
भक्तिव्यक्तितरंगरगमनसा पुसामम् सादर
पापं पापठता प्रयाति विलयं संसारनामारिपु ।। २१ ।।

इसीतरह का एक अन्य चमत्कारपूर्ण स्तोत्र 'अरजिनस्तव' है । इसमे १४ छन्द है प्रथम तेरह पचदशाक्षरी श्लोक है । जिनमे ५ नगण एक साथ आये है अन्तिम शार्दूलविक्रीडित श्लोक है । लेखक ने पुष्पिका मे इस स्तव को केवलाक्षरमय कहा है जिसमे किसी भी प्रकार की मात्रा का प्रयोग नही हुआ है । बिना भाषा पर असाधारण अधिकार प्राप्त हुए ऐसा प्रयोग किया जाना असंभव है । माघव और भारवि ने एकाक्षर व द्वयक्षर श्लोक लिखे है परन्तु वे अर्थ की दृष्टि से अत्यन्त क्लिष्ट हो गए है । वहाँ जिनप्रभ का प्रयोग अद्भुत है जिसमे किसी भी तरह की अर्थ की हानि न होने पायी है । इसका प्रथम श्लोक है—

जय शरदशकलदशहयवदन
जय हतजगदसहनमदमदन ।
जय नतशमगतशमनजकदन
जय भगवदरपरमपदसदन ।। १ ।।

इस सारे स्तवों में अनुप्रासो का प्रयोग अपूर्व है। इस प्रकार का सफल प्रयोग कदाचित् मात्राओं के अभाव के कारण ही हो पाया है। अन्त्यानुप्रास की छटा भी निराली है। छेका, वृत्ति व अन्त्य अनुप्रासों को अपनी समस्त विशेषताओ के साथ नीचे के श्लोको मे देखिये—

नतशतमखतमखलजनमदर
गमयपरमपदमभयदसदर ।
नवनवभववनभवदशमगम
शकलनगजकलगतदनवगम ॥ ७ ॥

अनुप्रास के साथ यमक का प्रयोग इस श्लोक में दर्शनीय है—

समतसतममहपरमतकलस
गणधरगणधरशमरसकलस ।
भवदभवदपदलयलसदवम्
वनमवनमयसहनमहनवम ॥ १३ ॥

नेमिनाथ से सम्बन्धित भी एक ही स्तोत्र है। यह भी बडा ही चमत्कारपूर्ण है। इसमे २० विविध प्रकार के छन्द व्यहृत हुए है। प्रथम छन्द आर्या है। दूसरे से २० वे तक क्रमश वंशस्थ, सुनन्दिनी, रथोद्धता, उपजाति, अनुष्टुप्, स्रग्विणी, द्रुतविलम्बित, रुचिरा, वसन्ततिलका, मृदंग, स्वागता, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा, वियोगिनी, औपच्छन्दिक, पुष्पिताग्रा तथा मालिनी है। इस स्तोत्र का नाम क्रियागुप्त नेमिजिनस्तव है। इसके नाम से ही प्रकट होनेवाली विशेषता यह है कि इसके प्रत्येक श्लोक मे कोई क्रिया गुप्त रक्खी गई है जिसका रचयिता ने अलग से उल्लेख कर दिया है। इसका प्रारम्भ निम्न आर्या छन्द से होता है—

श्रीहरिकुलहीराकर, वज्रमणिर्वज्रपाणिनाप्रणत ।
त्ववद्यमुक्तनेमे, प्रणमुषा शेमुषीमशुभाम् ॥

इस श्लोक मे आया हुआ 'अवद्य' शब्द अगले श्लोक की क्रिया के साथ प्रयुक्त होता है पर वह वहाँ लुप्त है। देखिये—

।।अवद्य।। मयिप्रसाद प्रवण कृपानिधे
विधेहि शैवेय निजं मनस्तथा ।
यथाजगन्नाथमधुव्रतव्रतं
भवे भवे तारक पादपद्मयोः ।।

उक्त श्लोक का भवे रूप अगले श्लोक की क्रिया के साथ प्रयुक्त होता है जहाँ वह लुप्त है—

।।भवे।। नयेन नेमे यदुवंशमौक्तिक-
श्रिया निवासस्तव पादपंकजम् ।
दुःखोर्मिसंघट्टविघट्टितात्मना
तेनाति गभीरतमे भवाम्बुधौ ।।

इसका 'आति' अगले श्लोक की क्रिया के साथ प्रयुक्त होता है। इसी तरह क्रम चलता गया है। संस्कृतप्रेमी राजाओ की विद्वन्मडली मे इस प्रकार के शब्द-चमत्कार बहुधा दिखाये जाते थे। जिनप्रभ ने उसी को लेकर एक स्तोत्र की रचना कर दी। यद्यपि रसवादी आलोचकों को इस प्रकार के चमत्कार कभी प्रिय नही रहे। फिर भी यह कहना ही पडता है कि बिना भाषा पर असाधारण अधिकार प्राप्त किए कोई भी लेखक इस प्रकार के चमत्कारों की सृष्टि नही कर सकता। इस स्तोत्र का अन्तिम श्लोक देखिये जिसमे 'अय' क्रियाश गुप्त है जो इसके पहले वाले श्लोक में आया है—

।। अय ।। निखिलजगता गोप्ता गुप्तक्रियास्तव सूत्रणा-
दितिकृतनुति सानन्द श्रीजिनसूरिभि ।
भवतु भवता भेत्तुं भूयो भवभ्रमसंभवं
भयमभयदो भीम श्रीमच्छिवातनयः प्रभुः ।। २० ।।

चन्द्रप्रभ स्वामी से सम्बन्धित ३ स्तोत्र प्राप्य है। जिनमे एक अत्यन्त छोटा है जिसमें ५ अनुष्टुप् छन्द हैं। प्रत्येक दूसरे व चौथे चरण में अन्त्यानुप्रास का सफल प्रयोग मिलता है। यमक व अन्त्यानुप्रास का समन्वित-रूप छोटा होते हुए भी स्तोत्र को चमत्कारपूर्ण बना देता है। पहला श्लोक यह है—

देवैर्यं स्तुष्टुवे तुष्टैः सोमलाञ्छितविग्रहः ।
दद्याच्चन्द्रप्रभः प्रीतिं सोमलाञ्छितविग्रह. ।।

इस स्तोत्र का अन्तिम श्लोक देखिये—

पातु गीर्वाः कृताविद्यो परमा कमलासना ।
यत् प्रभो वा जनैर्लेभे परमा कमलासना ।। ४ ।।

दूसरा स्तोत्र चन्द्रप्रभ स्वामी के चरित्र को चित्रित करता है। यह प्राकृत भाषा में लिखा गया है। इसमें २२ प्राकृत पद्यों में चन्द्रप्रभ का जीवन चरित उपस्थित किया गया है। इस स्तोत्र का प्रथम पद्य है—

चंदप्पह ! चंदप्पह ! पणमिय चरणारविंदजुयल ते ।
भविय सवणामयपिवं भणामि तुह चेव चरियलवं ।।

चन्द्रप्रभ के जन्मस्थान व मातापिता का नाम इस पद्य में मिलता है—

तत्तो इह भरहद्धे चविडं चदाणणाय नयरीए ।
महसेनराय-पणयिणि-लक्खणदेवीई कुच्छंसि ।। ४ ।।

चन्द्रप्रभ से सम्बन्धित तीसरा स्तोत्र षड्भाषामय है। इसमें विविध-भाषामय १३ पद्य हैं। प्रथम दो संस्कृत श्लोक हैं। स्तोत्र का प्रारंभ निम्न श्लोक से होता है तथा प्रथम व द्वितीय तथा तृतीय व चतुर्थ चरण मे तुक मिलाई गई है—

नमो महसेननरेन्द्रतनूज जगज्जनलोचनं भृङ्ग सरोज ।
शरद्रवसोमसम द्युतिकाय दयामय तुभ्यमनन्तसुखाय ।।

इस प्रकार की तुक अन्य भाषाओं के पद्यों में भी मिलती है। तीसरा व चौथा पद्य प्राकृतभाषा के हैं। उनमें तीसरा देखिये—

जय निरसियतिहुयणजन्तु भति जय मोहमहीरुहदलनदति ।
जय कुन्दकलियसमदंतपंति जय जय चन्दप्पहुवंदकंति ।।

पाँचवाँ पद्य शौरसेनीभाषा का है—

विगददुहहेदु मोहारिकेदुदयं
दलिदगुरुदुरिदमव विहिदकुमदक्खयं ।
चावलं नमदि जोसदहनदवत्सल
लहदि निच्चदि गति सोददं निम्मलं ।।

छठा पद्य उक्त समस्त विशेषताओं से समन्वित मागधी भाषा का है—

असुल सुलविसलनयनाय सेविनपदे
नमिल जय जंतु तुदि दिन्नसिवपुलपदे ।
चलन पुलनिलद ससालिसलसीलुदे
देहि महसामि त सालि सासदपदे ।।

सातवाँ पैशाचीभाषा का पद्य है—

तलिताखिलतोसतया सतनं, मदनानलनीलमनानगुणं ।
नलिनारुण पाततलां नमने, जिन नो इध तं स शिवं लभते ।।

आठवाँ चूलिका पैशाची भाषा का पद्य है—

कलनालिकनातुलतप्पहलं, चलनीकल चालुयशप्पसलं ।
ललनाचनकीतकुनलुचिल, चिनलावमहसमलामि चलं ।।

नवें व दसवें पद्य अपभ्रंश भाषा के है । ये हिन्दी भाषा के सोरठे के पूर्वरूप हैं । हिन्दी का प्रारम्भिक रूप भी इनमे देखा जा सकता है । एक पद्य देखिये—

सासयसुक्खनिहाणु, नाह न दिट्ठो जेहिं नऊं ।
पुन्न विहूणउ जाणु, निफल जम्मु तिह नरपसुहं ।।

शेष तीन पद्य सम सस्कृत भाषा के है । अन्त्यानुप्रास के सौन्दर्य की दृष्टि से ही नही, प्रवाह की दृष्टि से भी इनकी भाषा द्रष्टव्य है । एक श्लोक देखिये—

हारिहासहरहास कुन्दसुन्ददेहाभय
केवलकमलाकेलिनिलय मंजुलगुणगणमय ।

कमलारुणकरचरणचरणभरधरणधवलबल—
सिद्धिरमणिसंगमविलासलालसमलमवदल ॥११॥

प्रवाह की दृष्टि से इसकी भाषा जयदेव की प्राजल सुमधुर पदावली की याद दिलाती है। जयदेव के गीत गोबिन्द की भाषा को देखने से विश्वास होता है कि इस प्रकार की ललितभाषा की अवश्य ही कोई सुदीर्घ परम्परा रही होगी। जिनप्रभ के सारे स्तोत्र मिल सकें तो अवश्य ही कुछ उनमे ऐसे मिल सकते हैं जो इस परम्परा की शृंखला मे कडी का काम दे सकें।

शान्तिनाथ से सम्बन्धित तीन स्तोत्रो से हम परिचित हैं। इनमे एक 'शान्तिनाथाष्टक' फारसी भाषा मे लिखा गया है। इनमे ९ पद्य है। इसका प्रथम पद्य देखिये—

अजिकुहकाफुजनूविशहरिहथिणापुरगो—
वनिपात साहि विससेणु खिम्मिति ओ राया जेवनि
कौम्यो ऐरादेवि तविहि सीतारामानइ
जुजिय किसू हरिषासदिगरहियपियरादान इ
आदिगरिरोजिषु फूसिषु सेदरिनिगार खानंनिपो
छारिदहव्वावि अह संदिबइ आखरि सौविन इह मो।

छप्पय छन्द मे फारसीभाषा का उक्त प्रयोग अनूठा है। अन्तिम पद्य मे जिनप्रभ ने समकालीन दिल्लीश्वर मुहम्मद (तुगलक) का नाम भी दिया है, जिसपर जिनप्रभ का अत्यन्त प्रभाव पडा था—

अशितेरीषमुहम्मद सनखमसचति सईन सित्तमिय।
फितरीदीशशिमिसराकउदा सुदौलति वामी ॥

दूसरे 'शान्तिजिनस्तवन' में २१ श्लोक हैं। जिनमें प्रथम २० अनुष्टुप् छन्द है व इक्कीसवां शार्दूलविक्रीडित है। प्रत्येक छन्द के द्वितीय चरण को चतुर्थ में दोहराया गया है। इस प्रकार यमक व अन्त्यानुप्रास का प्रयोग हुआ है। प्रथम छन्द देखिये—

श्री शान्तिनाथो भगवानष्टापदसमानरुक् ।
बिभ्रद् गुणान् मया स्तोता-नष्टापदसमानरुक् ।।

भावगौरव की दृष्टि से अन्तिम छन्द भी द्रष्टव्य है—

स्तुत्वा त्वामिति मार्गये मुहुरिदं श्रीनर्तकीनर्तने
नाटयाचार्य जिनप्रभंजनमहाविघ्नाम्बुदाच्छादने ।
धत्ता संततमेव तावकगुणग्रामाभिरामस्तव-
प्रज्ञापारमितामपारमहिम प्राग्भारमद् भारती ।। २० ।।

तीसरा स्तोत्र अभी तक नही मिल सका । इसमे २४ श्लोक है । यह भी बडा चमत्कार पूर्ण है । इसका प्रारभ 'शृगार भासुर सुरासुर' अक्षरो से होता है ।

एक स्तोत्र मुनिसुव्रत से सम्बन्धित है । यह सस्कृत भाषा मे है । इसमे इकतीस श्लोक है । अभी तक मिला नही है । प्राप्य सूचनानुसार यह भी बडा ही चमत्कारपूर्ण है । इसका प्रारभ 'निर्माय निर्माय गुणर्द्धि' शब्दो से हुआ है ।

आचार्य जिनप्रभ द्वारा रचित ३ गौतम स्वामी से सम्बन्धित स्तोत्र है । इनमे से एक 'गौतमाष्टक' है जिसमे ९ अनुष्टुप् छन्द प्रयुक्त हुए हैं । इसका प्रथम श्लोक निम्न है—

ॐ नमस्त्रिजगन्नेतु वीरस्याग्रिमसूनवे ।
समग्रलब्धिमाणिक्यरोहणायेन्द्रभूतये ।

दूसरे 'गौतमस्तवन' मे २१ विविध प्रकार के सस्कृत छन्द व्यवहृत हुए है । इसमे पहला शार्दूलविक्रीडित है । दूसरे से सतरहवें तक उपजाति छन्द है । अठारहवॉ वियोगिनी, १९वाँ वसन्ततिलका, २० वाँ रथोद्धता व २१ वाँ शिखरिणी छन्द है । इस स्तोत्र का प्रारभिक श्लोक देखिये—

श्रीमन्तं मगधेपु गौर्वर इति ग्रामोऽभिरामोऽस्ति यः
तत्रोत्पन्नमसन्नचित्तमनिशं श्रीवीरसेवा विधौ ।

ज्योति संश्रय गौतमान्वयवियत्प्रद्योतनद्योमणिम्
तपोत्तीर्ण सुवर्णवर्णवपुषं भक्त्येन्द्रभूतिं स्तुवे ॥

तीसरा 'गौतम स्तोत्र' प्राकृत भाषा के २५ पद्यो में निबद्ध है। इस स्तोत्र मे गौतम स्वामी का जीवन चरित बडे ही सुन्दर शब्दो में उपस्थित किया गया है। भाषा बडी ही सुन्दर व सरस है। भावगर्भित भाषा का परिचय इन प्रारभिक दो पद्यों में मिलेगा—

जम्मपवित्तियसिरिमगहदेस अवयस गुब्बरगामं।
गोयमगुत्त सिरिइंदभूइगणहारिण नमिभो ॥
वसुभूइ कुलविभूषण! जिट्ठाउड्डुजाय! कवणच्छाय।
पुहवीउअरसरोरुहमराल! तं जयसु गणनाह ॥

अन्तिम पद्य मे जिनप्रभ ने अपना नाम भी दिया है—

नमिरसुररायसेहरचुबिअपय! संथुओसि इअ भयवं।
जिणपह मुणिंद। गोयम मह उवरि पसीअ अविसाम ॥२५॥

आचार्य जिनप्रभ ने एक स्तोत्र अपने गुरु जिनसिंहसूरि की स्तुति मे भी लिखा है। इस स्तोत्र को लेखक ने 'यमकस्तवकित' कहा है। अनुप्रासो की छटा तो दर्शनीय है ही। कही प्रथम चरण के शब्दों की आवृत्ति तृतीय चरण मे हुई है तो कही द्वितीय चरण को चतुर्थ में दोहराया गया है। प्रथम श्लोक देखिये—

प्रभु प्रदघान्मुनिपक्षिपंक्ते-
नागारिरागोपचितिं सदानः।
समुद्वहन् श्रीजिनसिंहसूरि-
र्नागारिनागोपचितिं स दानः ॥

एक अन्य श्लोक देखिये जिसमे प्रथम चरण के अक्षरों की आवृत्ति तृतीय चरण में हुई है—

योगेन धीरोचित माननीय
श्रियस्तवोघे शशिनोपमानम्।

योगेन धीरोचित माननीय
प्रख्यातमूर्खं तमुदाहरामः ॥१०॥

अन्तिम छन्द भी द्रष्टव्य है—

श्रीमज्जिनेश्वरयतीश्वरपादपद्म
शृंगारभृङ्गकरणिर्जिनसिंहसूरि ।
इत्थं स्तुतोऽस्तु यमकैः शमकैरवेन्दु-
रानन्दकन्दलनदुर्ललितो नतानाम् ॥१३॥

एक अन्य स्तोत्र **सुधर्म स्वामी** से सम्बन्धित है। इसमे २१ विविध प्रकार के छन्द है। वे क्रमश स्वागता, इन्द्रवज्रा, शार्दूलविक्रीडित द्रुत-विलम्बित, उपचित्रा, वैश्वदैवी, रुचिरा, शालिनी, शिखरिणी, गीति, इन्द्र-वंशा, आर्या, अनुष्टुप्, वसन्ततिलका, चण्डवृष्टिदण्डक, मजुभाषिणी, माल-भारिणी, अपरान्तिका, रथोद्धता, स्रग्धरा व हरिणी है। स्तोत्र का प्रारभ इस श्लोक से हुआ है—

आगमत्रिपथगा हिमवन्त संसृतेर्नत समूहमवन्तम् ।
नौ समानमभिनौमि सुधर्म-स्वामिन महति मोहपयोधौ ॥

जिनप्रभ केवल छोटे श्लोक लिखने मे ही सिद्धहस्त न थे वरन् बडा से बडा छन्द भी साधिकार लिखने में समर्थ थे। उनके २७ अक्षरो के चण्डवृष्टिदण्डक को देखने से इस विषय मे कोई सन्देह नही रहता।

जनुरभजत फाल्गुनीपूत्तरासु प्रधानद्विजश्लाघनीयाऽग्निवैशायना-
भिजनजलधिचन्द्रमाश्चण्डमार्तण्डतुल्यप्रतापाभिभूताभियातप्रभ. ।
अधिगतवति वर्द्धमाने जिनेन्द्रे शिवश्री परीरम्भलीला च य पादपो-
पगमनमुपगम्य वैभारशैले द्विपक्षीमवापाप्वर्गं स जीयाद्भवान् ॥१५॥

एक स्तोत्र मगलाष्टक के नाम से है जिसमे ८ अनुष्टुप् छन्द है। प्रत्येक श्लोक के चतुर्थ चरण के अन्त में 'मंगलम्' शब्द आया है जो वल्लभाचार्य के मधुराष्टक के 'मधुरं' शब्द से किसी भी तरह कम प्रभाव-

शाली नहीं है। इस स्तोत्र में बड़े ही विनयपूर्वक श्रद्धानत होकर जिनप्रभ के भक्ति-आपूरित हृदय ने इष्टदेव को भावसुमन अर्पित किए हैं। किसी तरह का चमत्कार न होते हुए भी भावगरिमा के कारण यह जिनप्रभ के श्रेष्ठ स्तोत्रों मे गिना जा सकता है। स्तोत्र का प्रारंभ इस श्लोक से हुआ है—

जितभावद्विषा सर्वविदा तत्त्वार्थदर्शिनम् ।
त्रैलोक्यमहिताह्रीणामर्हतामस्तु मंगलम् ॥

अन्तिम श्लोक में जिनप्रभ ने श्लेष का आश्रय लेकर अपना नाम उल्लिखित किया है—

मंगलस्तोत्रमंगल्यप्रदीपस्यास्य दानतः ।
येऽर्चयन्ति जिनान् भक्त्या ते स्यु प्राप्तजिनप्रभा ॥

दो पचपरमेष्ठि स्तव हैं। प्रथम स्तोत्र में ५ अनुष्टुप् छन्द व्यवहृत हुए है। इस स्तोत्र का प्रारंभिक श्लोक यह है—

स्वः श्रियं श्रीमदर्हन्तः सिद्धा. सिद्धपुरीपदम् ।
आचार्यां पञ्चधाऽऽचार वाचका. वाचना वराम् ॥

उपर्युक्त स्तोत्र के अन्तिम श्लोक की तरह इस स्तोत्र के अन्त मे भी जिनप्रभ ने श्लेष का आश्रय लेकर अपना नाम उल्लिखित किया है—

मन्त्राणामादिमं मन्त्रं तन्त्रं विघ्नौघनिग्रहे ।
ये स्मरन्ति सदैवेनं ते भवन्ति जिनप्रभा. ॥ ५ ॥

दूसरे पचपरमेष्ठि स्तव मे ७ आर्या छन्द प्रयुक्त हुए है। इस स्तोत्र को प्रथम आर्या है—

परमेष्ठिन· सुरतरुनिवनुतविदितत्रिविष्टपावस्थान् ।
पचापि सदा पन्नान् सुमनःप्रियसौरभान् सफलमुक्तीन् ॥

एक 'पचनमस्कृतिस्तव' है। जिसमें ३३ श्लोक प्रयुक्त हुए हैं। प्रथम ३१ अनुष्टुप् छन्द हैं तथा अन्तिम २ शार्दूलविक्रीड़ित छन्द हैं। इस स्तोत्र

मे 'पचनमोकार' मंत्र व प्रक्रिया की महत्ता बतलाई गई है। स्तोत्र का प्रारभ इस श्लोक से होता है—

प्रतिष्ठितं तम. पारेवाग्वर्तिवैभवम्।
प्रपंचवेदस पंच नमस्कारमभिष्टुम ॥

'पंचनमोकार' की महत्ता के कुछ अन्य श्लोक देखिये—

अहो पंचनमस्कार. कोऽप्युदारो जगत्सु य।
सम्पदोऽष्टौ स्वयं धत्ते दत्तेऽनन्तास्तु ता· सताम् ॥ २ ॥
स्मृत्वा पंचनमस्कारं प्रविष्टायास्तमोगृहम्।
घटन्यस्तो महासत्या पन्नग पुष्पमाल्यभूत् ॥२५॥
एष माता पिता स्वामी गुरुनेत्रं भिषक् सखा।
प्राणत्राणं गतिर्द्वीप शान्तिर्पुष्टिर्महन्मह ॥२८॥

एक 'पञ्चकल्याणकस्तव' है जिसमे ८ श्लोक है। इस स्तोत्र का प्रारंभिक वशस्थ छन्द यह है—

निर्लिपलोकायितभूतलं श्रिया
नयन्मुदं नैरयिकानपि क्षणम्।
त्रिलोकलोकस्य रतेः प्रपंचकं
जिनेन्द्रकल्याणकपंचमं स्तुमः ॥

अन्तिम श्लोक मे लेखक ने अपना नाम बडे ही कौशल से गुंफित किया है—

इत्याहतस्त्रिभुवनप्रभुसत्क पंच-
कल्याणवज्रकवचं हृदि यो बिभर्त्ति।
शस्त्राणि ते जिततराण्यपि मोहराजः
सौभाग्यभाग्ययुजि न प्रभवन्ति तस्मिन् ॥ ८ ॥

एक अन्य स्तोत्र 'द्वित्रिपंचकल्याणकस्तव' है। इसमें १५ श्लोक है। सभी अनुष्टुप् छन्द है। इसका प्रथम छन्द है—

पद्मप्रभप्रभोर्जन्म गर्भाधानं च नेमिनः।
भवार्तिं कार्तिक श्याम द्वादश्या लुम्पता मम ॥

इस प्रकार पञ्चकल्याणमहोत्सवो की तिथियो के नामो की गणना हुई है। अन्तिम श्लोक मे लेखक का नाम भी दिया गया है।

एक स्तोत्र का नाम अर्हदादि स्तोत्र है। इसमे ८ श्लोक है। जिनमे प्रथम दो मन्दाक्रान्ता छन्द हैं। पहला श्लोक देखिये—

मौनेनोर्वी व्यहृत परितो वत्सराणा सहस्र
यो निर्माणश्चरणयुगल भव्यमालोपकारी।
अर्हन्नुत्तारयतु हृदयात्स स्वकीय कलाना
यो निर्माणश्चरणयुगल भव्यमालोपकारी॥

इस श्लोक मे सम्पूर्ण द्वितीय चरण की आवृत्ति चतुर्थ चरण मे हुई है। प्रसन्न यमक का अन्यत्र भी प्रयोग द्रष्टव्य है—

शिवरतोवरतोषवशान्नतो-मघवताऽप्रवतामतिदूरग.।
अमदनो मदनोदनकोविद. शममल मम लभयताज्जिन ॥ ६॥
अविकलं विकलकधिया सुख विदधत दधत जगदीशिता।
अकलहं कलहसगति श्रये जिनवर नवरगतरगित.॥ ७॥

एक अन्य स्तोत्र 'वीतरागस्तव' हैं। इसमें १६ उपजाति छन्द प्रयुक्त हुए है। इस स्तोत्र का प्रारंभिक श्लोक है—

जयन्ति पादा जिननायकस्य
दोषापहा ध्वस्ततमोविकारा·।
रवेरिवाश्चर्यमतापकाश्च
न कौशिकक्लेशकरा· खराश्च॥

किसी प्रकार के चमत्कार का आवरण न होने पर भी 'वीतरागस्तव' भाव की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट स्तोत्रों में गिना जाता है। अन्तिम श्लोक में लेखक का नाम भी है।

एक अन्य स्तोत्र का नाम प्राभातिक नामावली है। इसमें पहला श्लोक वसन्ततिलका है जिसमे जिनसिंहसूरि की स्तुति है। स्तोत्र के शेष अंश मे जिनाचार्यों व तीर्थंकरों के नाम गिनाए गये है। नामो मे ५ पाण्डवो व सीता आदि सतियों को भी गिनाया गया है। प्रथम श्लोक यह है—

सौभाग्यभाजनमभंगुरभाग्यभंगी
संगीतधाम निजधाम निराकृतार्कम्।
अर्चामि कामितफलं हृति-कल्पवृक्षं
श्रीमन्तमस्तवृजिनं जिनसिंहसूरिम् ॥

अन्त मे अपने गुरु परम्परा पट्टावली दी है।

एक स्तोत्र वीरजिन की 'विज्ञप्ति' के रूप मे इसी नाम से मिलता है। यह प्राकृत भाषा मे लिखा गया है। इसमें कुल ३५ पद्य है। भावो की दृष्टि से यह बडा ही मधुर व मनोरम स्तोत्र है। इसका प्रथम पद्य यह है—

सिरिवीरराय देवाहिदेव
सव्वनु जणिय जय रिक्ख।
विन्नवणिज्ज जिणेशर
विन्नति मुझ निसुणेसु ॥

एक स्तोत्र, जिसे स्वतंत्र ग्रन्थ भी गिनाया गया है, हीयाली है। 'हीयाली' शब्द का तात्पर्य दृष्टिकूट या पहेली है। स्तोत्र-साहित्य में इस प्रकार का प्रयोग अनूठा है। यह अपभ्रंश भाषा मे है। अभी तक यह अधूरा ही मिला है। पूरा प्राप्त होने पर अमीर खुसरो की पहलियो की परम्परा की एक कडी मिल सकती है। इसका पहला पद्य देखिये—

अकुलु अमूलुअ जोणी संभवु निर्मल वण्णु सो दीसइ।
हरिहर बंभु न सिद्धिनु गोरखु इंदु चंदु न सलीसइ ॥

इस प्रसंग में चार पद्य हैं। आगे एक अपूर्ण पहाड़ीराग में हीयाली और मिलती है जिसका प्रथम पद यह है—

चारि चलण चउ सवण चउरभुज बंधुन करइ पचारि ।
बूझहु सकल सयाणा पंडित कासु कहउँ सा नारि ॥

यह आदिकालीन हिन्दी भाषा का रूप समझने के लिए भी अधिक प्रामाणिक सिद्ध हो सकती है ।

जिनप्रभसूरि द्वारा विरचित ६ स्तोत्र ऐसे हैं जिनमें विभिन्न तीर्थ स्थानों के नाम आये है । उनमें एक 'तीर्थमालास्तव' प्राकृत में है जिसमें १२ पद्य है । सारे स्तोत्र में अनेक जैनतीर्थों के नाम गिनाए गये हैं । इस स्तोत्र का प्रारंभिक पद्य यह है—

चउविसपि जिणिंदे, सम्म नमिऊणाइसरणत्थं ।
जत्ताऽऽराहिय तित्थं नाम संकित्तणं कुणमह ॥

दूसरा 'तीर्थयात्रास्तोत्र' है जिसमें २७ जैन तीर्थ स्थलो के नाम आये हैं । कुल ९ पद्य है । भाषा इसकी भी प्राकृत ही है । प्रथम पद्य देखिये जिसमें शत्रुंजयतीर्थ व उज्जयत शैल के नाम आये हैं—

सिरि सत्तुंजयतित्थे रिसहजिण पणिवयामि भत्तीए ।
उज्जितसेल सिहरे जायवकुलमडणं नेमिं ॥

तीसरा मथुरा-यात्रा स्तोत्र है जिसमे मथुरा-क्षेत्र के तीर्थस्थलो व जैन विग्रहो का उल्लेख आया है । इसमे १० उपजाति छन्द व्यवहृत हुए हैं । प्रथम छन्द देखिये—

सुराचलश्रीजितिदेवनिर्मिते स्तूपेऽभिरूपे वरदो कृतास्पदौ ।
सुवर्णनीलोपलकोमलच्छवि सुपार्श्वपार्श्वौ मुदिता स्तविमि वाम् ॥

चतुर्थ स्तोत्र मे श्रीदेव द्वारा विनिर्मित मथुरास्तूप की स्तुति है । इसमे केवल चार श्लोक हैं । प्रथम श्लोक है—

श्रीदेवनिर्मितस्तूपशृंगारतिलकश्रियौ ।
सुपार्श्वपार्श्वतीर्थेशौ क्लेशं नाशयता सताम् ॥

दो स्तोत्रो का नाम 'स्तुतित्रोटक' है । दोनों अपभ्रंश भाषा में लिखे

गये है। एक में ५ पद्य है तथा दिवराय, विमलगिरि, उज्जिलगिरि, दिल्ली आदि स्थानो के नाम प्रयुक्त हुए है। प्रथम पद्य यह है—

नियजंमु रावणह सुय दिवराय जुतित्थहं जत्त कियं।
निच्चलवणि वेचिउ नियधण विमलगिरि वंदिउ आदिजिण ।।

दूसरे स्तुतित्रोटक मे चार पद्य है और फलवर्द्धिपुर के पार्श्वविग्रह का वर्णन व स्तुति की गई है। प्रथम पद्य देखिये—

ते धन्नपुन्नसुकयत्थनरा जे पणमहि सामिउं भत्तिभरा।
फलवद्धिपुरट्टियपासजिण, अससेणह नन्दण भयहरण ।।

उक्त सभी स्तोत्र 'विधिमार्ग-प्रपा' नामक ग्रन्थ मे भी आये है।

एक अन्य स्तोत्र का नाम 'आगम स्तवन' है। जिसमे ४५ आगम ग्रन्थो के नाम प्रयुक्त हुए है। स्तोत्र मे कुल ११ आर्याछन्द है। भाषा प्राकृत है। प्रथम छन्द यह है—

सिरिवीरजिणं सुयरयरोहण पणमिऊणभत्तीए।
कित्तेमि तप्पणोय सिद्धन्तमह जगपईवं ।।

'वर्धमान विद्यास्तवन' वर्धमान-विद्याकल्प नामक ग्रथ मे आया है। यह भी प्राकृत भाषा मे विरचित है। इसमे १७ पद्य व्यवहृत हुए है। इम स्तोत्र के पठन का फल अन्तिम पद्य मे मंगल कल्याण का आवास होना बताया गया है। प्रथम पद्य देखिए—

आसि किलट्ठत्तरसय पयविन्नासो हुइज्ज पोढमि।
तत्तो उद्धरियाओ वायगसिरिचन्दसेणेणं ।।

पद्मावती चतुष्पदिका

पद्मावती चतुष्पदिका का उल्लेख अन्यत्र स्वतंत्र ग्रंथ के रूप मे किया जा चुका है, किन्तु यह इतना छोटा है कि इसे एक बड़ा स्तोत्र कहना अधिक सगत है। भाषा अपभ्रंश है, परन्तु कही कही उसमे आदिकालीन हिन्दी भाषा का रूप भी देखा जा सकता है। इस विस्तृत स्तोत्र में ३७

चतुष्पदियो में पद्मावती-देवी की स्तुति की गई है। भाषा-संगठन व भाव-विन्यास दोनों ही दृष्टियों से यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्तोत्र है। इसके प्रथम दो पद्य देखिए—

जिणमासणु अवधारि करेवि
झायहु सिरि पउमावइदेवि
भवियलोय आणदपरे !
दुलहउसावयजम्मुल्हेवि, मनरिमित्थसुर अणुसरहु ॥१॥ ध्रुवकम

इसकी प्रथम दो पक्तिया चौपई छन्द (हिन्दी) के दो चरण हैं अंतिम चरण गाने की टेक की तरह है। दूसरा पद्य और देखिए—

पास नाह पयपंकयभुसलि, संघविग्धनिन्नासणिकुसलि।
ससिकर निम्मलगुणगणपुन्न, पउमएवि मम होहि पसन्न ॥

इसी तरह सारे पद्य चौपई छन्द है जिसके प्रत्येक चरण मे १५ मात्राएं होती हैं और अन्त मे ह्रस्व स्वर व्यवहृत होता है। १८वे पद्य में जिणदत्तसूरि का व ३६वें में जिनप्रभ के गुरु जिनसिंहसूरि के नाम भी आये है। अन्तिम पद्य मे लेखक ने अपना नाम भी दिया है—

पउमावइ चउपईय पढनु, होइ पुरिस तिहुयण सिरिवंतु।
इम पभणइं नियजस पप्पूरि, सुरहिय भवणु जिणप्पहसूरि ॥

इस स्तोत्र का न केवल भाव व भाषा की दृष्टि से ही महत्त्व है वरन् इसका ऐतिहासिक दृष्टि से भी उल्लेखनीय स्थान है। जायसी व तुलसी की दोहा-चौपाई शैली की प्राचीन परम्परा अप्राप्य है। यह तत्कालीन लोकभाषा (अपभ्रंश-हिन्दी का पूर्वरूप) मे चौपई छन्द में लिखी हुई रचना है। यह और इसी तरह की अन्य चौपई व चौपाई छन्दो की रचनाएं मिले तो इस त्रुटित परम्परा का पता लग सकता है।

कालचक्रकुलकम्

इसका नाम भी अन्यत्र एक स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में प्रकरणग्रंथ में

गिनाया गया है। किन्तु इसे भी एक बड़ा स्तोत्र कहना अधिक उपयुक्त है। यह भी प्राकृत भाषा मे विरचित है। कुल ३५ छन्द प्रयुक्त हुए है। सुख-निर्वाण के लिए इसका पठन फलदायक माना गया है। इसकी भाषा प्राचीन अपभ्रंश के अधिक निकट है उससे प्रस्फुटित होने वाली तत्कालीन हिन्दी के नही। भावों की दृष्टि से यह बडा ही गभीर स्तोत्र है। इसके प्रारम्भिक दो छन्द देखिये—

> अवसप्पिणि उसप्पिणि भेएण होइ दुविहउ कालो।
> सागर कोडाकोडीउ वीसा एसो समप्पेइ।
> सुससमुसमादि सुसमा सूसमा दुसमा य दुसमसुसमाय।
> पचमिया पुण दूसम तह दूसमदूसमा छट्ठो॥

शब्द चमत्कार भी दर्शनीय है। जैसा कि 'कुलकम्' नाम से ही स्पष्ट है एक छन्द के भाव दूसरे से सग्रथित है स्वतंत्र नही है। इस कुलक के रूप में कालचक्र की गाथा की रचना जिनप्रभ ने अबोध व्यक्तियो के बोधनार्थ की है जैसा कि अन्तिम छन्द से विदित होता है—

> अबुहजणबोहत्थं ·· ·······अप्पणो समासेण।
> कालचक्कस्स गाहा जिणपहसूराहि सठविया।

दार्शनिक स्तोत्र

दो स्तोत्र जैनदर्शन के सिद्धान्तो से सम्बन्धित है। इसलिए इनका परिचय स्वतन्त्र रूप से दिया जाना ही अधिक उपयुक्त होगा। दोनो ही विस्तृत आकार वाले हैं। इनमे से एक नितात महत्त्वपूर्ण 'सिद्धान्तागम' स्तव है। प्रस्तुत स्तोत्र मे ४५ आगम ग्रन्थो के सिद्धान्तो एवं वर्ण्य विषयो का विवेचन किया गया है। यह ४६ संस्कृत श्लोको में निबद्ध है। अनुष्टुप्, आर्या, आर्यागीति, उपजाति, इन्द्रवंशा, रथोद्धता, वंशस्थ, प्रहर्षिणी, रुचिरा, वसन्ततिलका, हरिणी, स्रग्धरा आदि विविध छन्द प्रयुक्त हुए है। साथ में इस पर लिखी हुई एक अवचूरि (टीका)

भी मिलती है। अवचूरि के इस अंश से ही उनके प्रतिदिन स्तवनिर्माण प्रतिभा का पता लगता है—

"पुरा श्रीजिनप्रभसूरिभि. प्रतिदिनं नवस्तवनिर्माणपुरस्सरं निरवद्याहारग्रहणाभिग्रहवद्भि प्रत्यक्षपद्मावतीदेवीवचसामभ्युदिन श्रीतपागच्छं विभाव्य भगवता श्रीसोमतिलकसूरीणा स्वशैक्षशिष्यादिपठनविलोकनाद्यर्थं यमकश्लेषचित्रच्छन्दोविशेषादिनवनवभंगीसुभगा सप्तशतीमिताः स्तवा उपदीकृता निजनामांकिता। तेष्वयं सर्वसिद्धान्तस्तवो बहूपयोगित्वाद्विव्रियते।—

स्तोत्र के प्रथम श्लोक में गुरु व गणधर सुधर्मा के साथ आचार्य बड़े ही विनीत होकर श्रुतदेवता—सरस्वती को भी प्रणति निवेदन करते हैं। देखिए—

नत्वा गुरुभ्य. श्रुतदेवतायै सुधर्मणे च श्रुतभक्तिनुन्न.।
निरुद्धमानावृजिनागमाना जिनागमाना स्तवनं तनोमि॥

आगे प्रत्येक श्लोक मे जिनागमो का वर्णन मिलता है। स्तोत्र की विषय स्थापन शैली के लिए कुछ श्लोक व उनकी अवचूर्णि द्रष्टव्य है।—

सामायिकादिकषडध्ययनस्वरूप-
—मावश्यकं शिवरमावदनात्मदर्शम्।
निर्युक्तिभाष्यवरचूर्णि विचित्रवृत्ति-
स्पष्टीकृतार्थनिवहं हृदये वहामि॥

"अवश्यकरणादावश्यकम्। सामायिकादिकानि सामायिक-चतुर्विंशतिस्तव-वन्दनकतिक्रमण-कायोत्सर्ग—प्रत्याख्यानरूपाणि यानि षडध्ययनानि तत्स्वरूपम्। शिवरमाया (मोक्षलक्ष्म्या.) वदनात्मदर्श दर्पणतुल्यम्। पुन. किंविशिष्टम्। निर्युक्ति श्री भद्रबाहुकृता एकत्रिशच्छतप्रमाणा। भाष्यं सूत्रार्थप्रपंचनम्। वरावचूर्णिरष्टादशसहस्रप्रमाणा पूर्वर्षिविहिता। विचित्रवृत्तिरनुगतार्थकथनं द्वाविंशतिसहस्रप्रमाणम्। एताभिः स्पष्टीकृतोऽर्थनिवहो यस्य तथाविधं हृदये वहामि स्मरामि।"

प्रवचननाटकनान्दी प्रपंचितज्ञानपंचकसतत्त्वा ।
अस्माकममन्दतम कन्दलयतु नन्दिरानन्दम् ॥

"प्रवचनं जिनमतमेव नाटक तत्र नान्दी द्वादशतूर्यनिर्घोष. तन्मूलत्वा-न्नाटकस्य । प्रपंचित प्रकटीकृत ज्ञानपंचकस्य मतिश्रुतावधिमन पर्यय केवलज्ञानरूपस्य सतत्त्वं स्वरूप यया सा नन्दिरस्माकममन्दतमं बहुतर-मानन्दं कन्दलयतु वर्धयतु ।"

अन्तिम श्लोक मे जिनप्रभ ने अपना नाम देने के साथ साथ स्तोत्र को कण्ठस्थ करने का फल श्रुतदेवता—सरस्वती के द्वारा सन्तुष्ट होकर वर प्रदान करना कहा है—

इति भगवत सिद्धान्तस्य प्रसिद्धफलप्रथां
गुणगणकथा कण्ठे कुर्याज्जिनप्रभवस्य य ।
वितरतितरा तस्मै तोपाद्वरं श्रुतदेवता
स्पृहयती च सा मुक्तिश्रीस्तत्समागमनोत्सवम् ॥

जिनागम सिद्धान्तो का एकस्थ-विवेचन करके आचार्य ने निश्चय ही जिज्ञासुओ के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया है । इसे एक तरह की अनुक्र-मणिका या कोष कहना अधिक संगत होगा ।

'सिद्धान्तागमस्तव' की तरह ही दूसरा महत्त्वपूर्ण स्तोत्र 'परमतत्त्वा-वबोध द्वात्रिंशका' है । इसमें ३२ अनुष्टुप् छन्द है । इस लघुकाय स्तोत्र मे, छोटे-छोटे श्लोको मे बडे ही सरल शब्दो मे साथ ही रोचक ढग से आचार्य जिनप्रभ ने 'परमतत्त्व' का विशद विवेचन किया है । जैनधर्म की सबसे बडी विशेषता यह है कि वह व्यावहारिक है । इसी व्यावहारिकता ने उसे मनोविज्ञान व विज्ञानसम्मत बना दिया है । नैतिकता पर जैनधर्म मे सबसे अधिक बल दिया गया है । नीति और व्यवहार के अद्भुत मिश्रण के साथ उच्चकोटि के दार्शनिक विवेचन को हम इस स्तोत्र के अन्दर पाते है । परमसुख की प्राप्ति के लिए इस स्तोत्र के ३२ श्लोक

जैसे ३२ चिन्तामणि मौक्तिक हैं जिनके चिन्तन का फल अमोघ व सद्यः साध्य है। प्रथम श्लोक देखिए—

धर्माधर्मान्तरं मत्वा, जीवाजीवादितत्त्ववित्।
ज्ञास्यसि त्वं यदात्मानं, तदा ते परमं सुखम्॥

इन सीधे सादे श्लोकों में चाणक्य के सूत्रों की तरह का महान् ज्ञान भरा हुआ है। बिहारी के दोहों की तरह ये भी नाविक के तीर से उपमेय हैं जो छोटे दीखने पर भी हृदय मे गंभीर घाव कर जाते हैं। आगे के २ श्लोक देखिए—

यदा हिंसां परित्यज्य कृपालुस्त्वं भविष्यसि।
मैत्र्यादिभावना-भव्यस्तदा ते परम सुखम्॥
न भाषसे मृषा भाषा विश्वविश्वासघातिनीम्।
सत्य वक्ष्यसि सौहित्यं तदा ते परमं सुखम्॥

अर्थात् जब हिंसा को छोड़ कर के कृपालु बन जाओगे, मैत्रीभावना बढा कर भव्य बन जाओगे, विश्वविश्वासघातिनी झूठ न बोलोगे और सुन्दर हितकारिणी सत्य वाणी बोलोगे तभी परम सुख की प्राप्ति होगी।

जैन समाज की भाषागत प्रसिद्ध प्रार्थना 'बारहभावना' के अन्तर्गत इस प्रकार के भावों के लिए ही तो आकांक्षा प्रकट की गई है। गीता की समत्वभावना भी स्तोत्र में प्राप्य है—

स्वरे श्रव्ये च वीणादौ खरोष्ट्रीणां च दुःश्रवे।
यदा सममनोवृत्तिस्तदा ते परमं सुखम्॥
इष्टेऽनिष्टे यदा दृष्टे वस्तुनि न्यस्तशस्तधीः।
प्रीत्यप्रीतिविमुक्तोऽसि तदा ते परमं सुखम्॥
घ्राणदेशमनुप्राप्ते यदा गन्धे शुभाशुभे।
रागद्वेषौ न चेत्तत्र तदा ते परमं सुखम्॥
यदा मनोज्ञमाहारं यद्वा तस्य विलक्षणम्।
समासाद्य तयोः साम्यं तदा ते परमं सुखम्॥

सुखदु खात्मके स्पर्शे समायाते समो यदा ।
भविष्यसि भवाभावी तदा ते परमं सुखम् ॥

गीता व स्तोत्र के इस श्लोक मे कितनी समता है देखिए—

यदा सहरते चाय कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतीष्ठिता ॥

गीता—२/५८

तथा—

अगोपागानि संकोच्य कूर्मवत्सवृतेन्द्रिय ।
यदा त्व कायगुप्तोऽसि तदा ते परम सुखम् ॥

और भी देखिए—

यदामित्रेऽथवा मित्रे स्तुति निन्दा विधातरि ।
समानं मानसं तत्र तदा ते परम सुखम् ॥
लाभालाभे सुखे दुःखे जीविते मरणे तथा ।
औदासीन्यम् यदा ते स्यात्तदा ते परमं सुखम् ॥
यदा यास्यसि निष्कर्मा साधुधर्मधुरीणताम् ।
निर्वाणपथसंलीनस्तदा ते परमं सुखम् ॥

यहाँ तो गीता की नैष्कर्म्य-भावना और भी स्पष्ट हो जाती है। स्पष्ट है कि स्तोत्र रचना करते समय आचार्य जिनप्रभ गीता से प्रभावित हुए थे। या यो कहना अधिक संगत होगा कि जिस तरह तुलसीदास ने रामायण मे 'नानापुराणनिगमागमसम्मत' ज्ञान भर दिया, जिनप्रभ ने भी अनेक दार्शनिक व धार्मिक ग्रंथो का व्यावहारिक ज्ञान प्रस्तुत स्तोत्र में समन्वित रूप मे उपस्थित कर दिया। स्पष्ट है कि सदाचार व उच्च भावनाओं के लिए विशेष धर्म का बन्धन नही है। वे सभी स्थानो पर समान रूप से मिल सकती है। महामुनि याज्ञवल्क्य ने धर्म की यथेष्ट परिभाषा देने पर भी सन्तोष न होने पर इतना कह दिया है और वही चरम ज्ञान है कि—

एष. तु परमो धर्मः यद्योगेनात्मदर्शनम् ।

'अर्थात् योग द्वारा सर्वत्र आत्मदर्शन ही परमधर्म है ।' कुछ ऐसी ही बात जिनप्रभ ने भी अन्तिम श्लोक में कहकर विरति ग्रहण की है—

आत्मपद्मवनं ज्ञान-भानुना बोध्य लप्स्यसे ।
यदा जिनप्रभां वर्यां तदा ते परमं सुखम् ।।

अर्थात् जब आत्मारूपी पद्मवन को ज्ञानभानु की प्रभा से आलोकित कर श्रेष्ठ जिनप्रभा को प्राप्त कर लोगे तभी परमसुख की प्राप्ति होगी । यह जिनप्रभा की प्राप्ति सर्वत्र आत्मदर्शन का दिव्यज्ञान—दिव्य दृष्टिकोण ही है ।

निश्चय ही प्रस्तुत स्तोत्र जिनप्रभाचार्य के स्तोत्र साहित्य मे भावो की दृष्टि से सबसे गभीर और महान् सन्देश से ओतप्रोत है। भाषागत चमत्कार प्रदर्शन करने मे ही जिनप्रभ सिद्धहस्त नही थे वरन् मौलिक, समन्वित व सयत विचार देने में भी उन्हे कृपण नही कहा जा सकता । यह बात इस स्तोत्र को देख कर समझी जा सकती है । यह स्तोत्र साधारण व्यक्ति के लिए भी बोधगम्य है ।

वाणीवन्दना

जिनप्रभाचार्य के प्राप्य स्तोत्रो का परिचय दो अन्य स्तोत्रो के विना अधूरा ही रह जायगा । ये स्तोत्र केवल स्तोत्र की दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण नही है वरन् ये रचयिता के विचारौदार्य को भी प्रकट करते है । दोनो में वाग्देवी सरस्वती की वन्दना अत्यन्त भावप्रवण हृदय से की गई है । इनमे एक छोटे स्तोत्र का नाम 'सरस्वत्यष्टक' है । जिसमें ९ रथोद्धता छन्द प्रयुक्त हुए हैं । कही-कही यमक और अनुप्रास की छटा भी मिलती है परन्तु रचयिता की दृष्टि चमत्कार की ओर कदापि नही रही; भावों की सहज-मधुर सरणि ही उसमें विद्यमान है । स्तोत्र का प्रारंभ प्रणवमंत्र (ॐ) से होता है—

ॐ नमस्त्रिदशवन्दितक्रमे
सर्वविद्वद्वनपद्मभृंगिके ।
बुद्धिमान्द्यकदलीदलीक्रिया
शस्त्रि तुभ्यमधिदेवते गिराम् ॥

भारती की महिमा के कुछ श्लोक देखिए—

दत्तह्रीन्दुकमलश्रियो मुखं
यैर्व्यलोकि तव देवि सादरम् ।
ते विविक्तकवितानिकेतनं
के न भारति भवन्ति भूतले ॥
श्रीन्द्रमुख्य विबुधाचितक्रमा
ये श्रयन्ति भवती तरीमिव ।
ते जगज्जननि जाड्यवारिधिं
निस्तरन्ति तरसा रसा स्पृश ॥

तथा—

विश्वविश्वभुवनैकदीपिके
नेमुषा मुषितमोहविप्लवे ।
भक्तिनिर्भरकवीन्द्रवन्दिते
तुभ्यमस्तु गीर्देवते नम ॥

यह अष्टक सरस्वती के 'ॐ ह्रीं श्रीं' बीजनिर्मित मंत्र से गर्भित है। स्वयं जिनप्रभ ने अन्तिम श्लोक में इसे स्पष्ट किया है—

उदारसारस्वतमंत्रगर्भितम्
जिनप्रभाचार्यकृत पठन्ति ये ।
वाग्देवाया. स्फुटमेतदष्टकं
स्फुरन्ति तेषा मधुरोज्जला गिर. ॥

वाग्देवी सरस्वती की वन्दना करते समय जिनप्रभ उतने ही प्रणत व भावप्रवण दिखाई पड़ते हैं जितने ऋषभदेव या अन्य किसी तीर्थंकर की

स्तुति करते समय। इनके दूसरे स्तोत्र का नाम 'शारदास्तव' है। इसमें १२ उपजाति व १ बसन्ततिलका छन्द प्रयुक्त हुए हैं इसमें केवल प्रणति निवेदन ही नहीं है शब्द चमत्कार भी उसी मात्रा में प्रस्तुत है। विषम संख्या के छन्दों के दूसरे चरण की चौथे चरण में आवृत्ति की गई है। इसका प्रारंभिक श्लोक यह है—

वाग्देवते भक्तिमता स्वशक्ति-
कलापवित्रासितविग्रहे मे।
बोधं विशुद्धं भवती विधत्तां
कलापवित्रासितविग्रहा मे॥

इसी तरह सम संख्या के छन्दो में प्रथम चरण की आवृत्ति तृतीय चरण मे हुई है। दूसरा श्लोक देखिये—

अंकप्रवीणाकल हंसपत्रा-
कृतस्मरेणानमता निहन्तुम्।
अंकप्रवीणा कलहंसपत्रा
सरस्वती शश्वदपोहृताद्वः॥

यमक के चमत्कार ने इस श्लोक से भाव को किस तरह प्रभावप्रेषणीय बना दिया है—

सिताशुका ते नयनाभिरामां
मूर्ति समाराध्य भवेन्मनुष्य।
सितांशुकांते नयनाभिरामां-
-धकारसूर्यः क्षितिपावतंसः॥

अन्तिम श्लोक में भक्तहृदय की प्रणतिपुरस्सर श्रद्धांजलि देखिये, जिसमे कवि ने अपना नाम को गुम्फित किया है—

क्लृप्तस्तुतिर्निबिडभक्तिजडत्वपृक्तै-
र्गुम्फैर्गिरामिति गिरामधिदेवता सा।
बालोऽनुकम्प्य इति रोपयतु प्रसाद-
-स्मेरां दृशं मयि जिनप्रभसूरिवर्ण्या॥

इस प्रकार इन सभी प्राप्य स्तोत्रों का संक्षिप्त परिचय व सामान्य विशेषताओं का उल्लेख करने के बाद सारे स्तोत्र-साहित्य पर समष्टि रूप से विचार कर लेना असंगत न होगा।

जिनप्रभ-स्तोत्र-साहित्य की सामान्य विशेषताएँ

भक्ति, विनय व औदार्य

जिनप्रभसूरि के सारे स्तोत्र धार्मिक गीतिकाव्य की महती सम्पत्ति हैं। वे मुक्तक है इस लिए उनके भावपक्ष पर विचार करते समय उनके स्तोत्रों में व्यंजित भक्ति, विनय तथा औदार्य पर सर्व प्रथम हमारा ध्यान जाता है। जैन-धर्म एक व्यावहारिक-धर्म है और भक्ति स्वयं धर्म का सबसे अधिक व्यावहारिक पहलू है। विगत दो सहस्राब्दियो मे उठे हुए भक्ति के विभिन्न आन्दोलनो ने इस पहलू को प्रभूत विकसित बना दिया है। विष्णु के विभिन्न अवतारो व विग्रहों की कल्पना, नवधा विभक्तीकरण, प्रत्येक प्रकार की भक्ति की अनेक भूमिकाएँ आदि देखकर उसके विकसित स्वरूप का अनुमान लगाया जा सकता है।

इन भक्ति सम्बन्धी आन्दोलनो ने जैन धर्म पर भी प्रभाव डाला। श्रद्धाप्रधान होने से भक्ति जैन-धर्म के अनुकूल थी और प्रत्येक जैन व्यावहारिक दृष्टि से साधक होने पर भी भक्त प्रथम था। हाँ, सभी तीथकर जिन थे। अतएव सभी जैनसाधक उस अवस्था की प्राप्ति के प्रयत्न मे उनके सेवक थे। इसलिए जैनधर्म मे दास्य-भक्ति ही प्रमुख रही। सख्य भक्ति को उसमे किसी भी प्रकार का कोई स्थान नही। हाँ श्रवण, कीर्तन, स्मरण, भजन, पूजन, वन्दन व आत्मनिवेदन का दास्यभक्ति से कोई विरोध नही है इसलिए इनको भी उतना ही महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

भक्ति के उपजीव्य जैनधर्म के अनुसार केवल चौबीस तीर्थङ्कर ही नही हैं। उनके जीवन से सम्बन्धित ग्रन्थ व तीर्थस्थल भी भक्ति के उपजीव्य रहे हैं। इसलिए जैनधर्मानुयायी स्त्री-पुरुष तीर्थों व ग्रन्थो की भी

तीर्थङ्करों के साथ स्तुति करते हैं। आचार्य जिनप्रभसूरि ने भी इन सभी के लिए स्तोत्र लिखे।

जैनधर्म में भक्ति नवधा के स्थान पर षडधा मानी गई है। भक्ति की परिभाषा देखिए—

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वाना वन्दे तद्‌गुणलब्धये॥

अर्थात् मोक्षमार्ग के नेता (हितोपदेशी), कर्मरूपी पर्वतो का भेदन करने वाले (वीतराग) और विश्व के तत्त्वों को जानने वाले (सर्वज्ञ) आप्त (अर्हंत) की भक्ति, उन्हीं के गुणों को पाने के लिए करता हूँ।

स्पष्ट है कि विशिष्ट गुणवालो (अरिहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु) के गुणो में अनुराग करके उनका सान्निच्य प्राप्त करने की क्रिया ही भक्ति है। जो जैनधर्म के अनुसार ६ प्रकार की मानी जा सकती है—

१ नामभक्ति—नाम व गुणो का स्मरण।
२ स्थापना भक्ति—मूर्तियो का स्थापन, पूजन व दर्शन।
३ दृश्य भक्ति—अरिहंत तथा सिद्धपुरुष के स्वरूप का चिन्तन।
४ भावभक्ति—अरिहंत तथा सिद्ध भावों का विचार करना।
५ क्षेत्रभक्ति—तीर्थस्थानों के सहारे वहाँ जन्म व निर्वाण प्राप्त करने वाले महान् पुरुषो का स्मरण।
६. कालभक्ति—जिन कालो मे महान् पुरुषों ने जन्म, तप ज्ञान व निर्वाण प्राप्त किया उनके सहारे उन महान् पुरुषों के स्मरण द्वारा भक्ति।

यदि भक्ति के उक्त प्रकारों को ध्यान मे रखकर आचार्य जिनप्रभ के स्तोत्र साहित्य का विहगावलोकन किया जाय तोपता चलता है कि आचार्य ने इन सभी दृष्टिकोणो से भावविभोर होकर अपने इष्टदेव के प्रति प्रणति निवेदन की है।

केवल काल (समय) को लेकर आचार्य ने 'कालचक्रकुलकम्'

नामक स्तोत्र लिखा है। उनके विभिन्न तीर्थमालास्तव तथा किसी विशिष्ट तीर्थस्थल के नाम से संलग्न तीर्थङ्कर सम्बन्धी स्तोत्र क्षेत्र-भक्ति के अच्छे उदाहरण हैं। अरिहंत व सिद्ध भावों का दर्शन उनके दार्शनिक स्तोत्रों में होता है जो भावभक्ति के उदाहरण है। 'परमतत्त्वावबोधद्वात्रिंशिका' इस प्रकार के स्तोत्रो का चूडामणि कहा जा सकता है। दृश्यभक्ति के उदाहरण तीर्थंकरों के विग्रहों का चित्रोपम वर्णन करने वाले स्तोत्र बन सकते हैं। नाम और स्थापन भक्ति के उदाहरण तो सभी बन सकते है। यही नही जिनप्रभ ने अपने गुरु को भी बडे ही प्रणत भाव से श्रद्धाजलि अर्पित की है जो नामभक्ति के उदाहरण के रूप में उपस्थित की जा सकती है।

विनय और भक्ति का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। इष्टदेव अथवा महान् पुरुष की महत्ता और अपनी लघुता विनय को जन्म देती है। विनय के अभाव में कोई भक्त भक्त नही रह सकता। आचार्य ने अपने सभी स्तोत्रो में विनयशीलता का अच्छा परिचय दिया है। कही-कही तो वे इतने भाव बिह्वल हो जाते है कि उनके स्तोत्रो का पाठ करने वाले तक के चक्षु आर्द्र और कण्ठ वाष्परुद्ध गद्गद हो जाते है। तुलसी का विनय दीनता मिश्रित है किन्तु आचार्य जिनप्रभ के विनय में एक सिद्धिपथ के पथिक की विनम्र-दृढ़ता व अथक विश्वास के दर्शन होते हैं। सभी स्तोत्रो मे आचार्य आत्मविश्वासी रहे है और उनकी ज्ञान-गरिमा तो सर्वत्र झलकती ही है।

आचार्य जिनप्रभ मोहम्मद तुगलक के संपर्क में आये थे और उसके पास सुदीर्घ काल तक रहे भी थे अतएव उनमें धार्मिक उदारता होनी ही चाहिए। केवल शारदा स्तवन मात्र से ही उनकी यह उदारता प्रकट नही होती, फारसी जैसी विदेशी भाषा को स्तोत्र रचना के लिए अपना कर भी उन्होंने अपनी उदारता की पुष्टि की हैं। ऐसी पाडित्यमण्डित उदारता निश्चय ही बहुत ऊँची वस्तु है और आचार्य जैसे निस्पृही, सर्वस्व-त्यागी में ही मिल सकती है।

भाषा

आचार्य जिनप्रभ अनेक भाषाओं के पण्डित थे। संस्कृत, समसंस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश, पैशाची, फारसी आदि अनेक भाषाओं में उन्होंने अपने भावप्रसून इष्टदेव को समर्पित किए हैं और सभी पर उनका असाधारण अधिकार प्रकट होता है। अनुप्रास, यमक, श्लेषादि शब्दालंकारों से उनकी भाषागत सामर्थ्य झलकती है। प्रासाद व माधुर्य गुणयुक्त प्राजल पदावली के दर्शन सर्वत्र होते हैं। भाव-प्रवणता के कारण उसमें ओज व सहज--गाम्भीर्य का प्रवेश हो गया है। प्रवाह कही टूटने नही पाता।

षड्भाषा-गर्भित व अष्टभाषा गर्भित स्तोत्र उनके साधिकार-भाषा-प्रयोग के उदाहरण हैं। कातंत्रसंधिसूत्रगर्भित, षड्ऋतुगर्भित, उपसर्गहर--स्तोत्र पादपूर्तिमय, विविधछन्दोनामगर्भित, लक्षण-प्रयोगमय आदि अनेक स्तोत्र अर्थगाम्भीर्य की पुष्टि करते है। चित्रकाव्यमय स्तोत्र मे यही बात और भी सफलतापूर्वक देखी जा सकती है। इतना अवश्य है कि इन प्रयोगों के उपरान्त भी भाषा बोधगम्य बनी रहती है।

यही नही, उनकी भाषा में गंभीर से गंभीर दार्शनिक भावों को सरलतम ढंग से व्यक्त करने की क्षमता भी विद्यमान है। इसी तरह की शक्ति, प्रवाह, गम्भीरता व विशदता संस्कृतेतर भाषाओं के प्रयोग में भी समान रूप से मिलती है।

शैली

स्तोत्र ललित-साहित्य की एक-विधा है। साथ ही वे मुक्तक-काव्य होने से पूर्वापर सम्बन्धनिरपेक्ष सहज रसपेशल भी होते हैं। उनमे किसी तरह का कथा प्रवाह नहीं होता। हाँ, भावों का प्रवाह उतना ही अनिवार्य है। आचार्य ने अपने स्तोत्रों को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए सार्थक शब्दो का प्रयोग किया है। इसी तरह छन्द प्रयोग भी भावगुरुता की दृष्टि से हुआ है। छोटे अनुष्टुप् या आर्याछन्द से लेकर बड़े-बड़े दण्डक छन्दों

का प्रयोग भी जिनप्रभ ने किया है। वह योग्यता-प्रदर्शन मात्र के लिए न होकर भावाभिव्यक्ति के सौकर्य्य के कारण ही हुआ है। आचार्य को अपने इस उद्देश्य मे अतीव सफलता मिली है। कही-कही चमत्कारो के कारण भावग्रहण मे कठिनाई अवश्य होती है। फिर भी आधिक्य को प्रमाण मान कर उनकी शैली को प्रसन्नगम्भीर कहा जा सकता है जिसमे कही-कही सहजप्रसन्नता कुछ क्षणो के लिए विलुप्त प्राय भी देखी जा सकती है। प्रसग व भावानुभूतियो की सघनता पर केन्द्रित कही माधुर्य की, कही प्रसाद की और कही ओज की छटा देखने को मिलती है। सरलता, स्पष्टता व परिवतनशीलता उनकी शैली की विशेषता है।

वर्णन वैचित्र्य विविध प्रयोग

जैनाचार्यो को कभी चमत्कार प्रदर्शन का लोभ नही रहा। कहा जाता है कि राजा भोज ने एक बार मयूरभट्ट के 'सूर्यशतक' और बाणभट्ट के चण्डीशतक' के भावनिधि पर मुग्ध होकर उसकी प्रशसा करते हुए जैनाचार्य मानतुग से भी इस प्रकार का चमत्कार-प्रदर्शन करने के लिए कहा। आचार्यजी ने केवल आत्मा के परम चमत्कार को ही सर्वोत्तम बताकर प्रदर्शन से इन्कार कर दिया। कहते है कि राजा भोज ने आचार्य को बदीघर मे बन्द करके ४६ ताले लगवा दिये और आचार्य ने भक्तामर स्तोत्र' की रचना करके बन्दीगृह से मुक्ति पाई। कदाचित् उक्त घटना को जिनप्रभ ने ध्यान म रक्खा और भाषा व भावसम्बन्धी सबसे अधिक प्रयोग करके पाठको के लिए आश्चर्य की स्थायी सम्पत्ति छोड गए।

आचार्य जी के स्तोत्रो मे पद-पद पर भाषा तथा भाव सम्बन्धी चमत्कारो के दर्शन होते है। उनके कोई स्तोत्र यमक, श्लेष अनुप्रासादि से ओत प्रोत है तो किसी अन्य रचना को गुम्फित देखा जा सकता है। यमक प्रयोग भी अनेक प्रकार से हुआ है—कही एक चरण को दूसरे में दोहराया गया है तो कही चारो चरण एक ही हैं। शब्द-यमक से तो कदाचित् किसी स्तोत्र का कोई स्थल अछूता न होगा। एक स्तोत्र में

कातंत्र व्याकरण का संधिसूत्र गुम्फित है तो दूसरा उपसर्गहर स्तोत्र की पादपूर्ति से युक्त है, एक अन्य पंचकल्याणकमय है, तो दूसरा लक्षण प्रयोग-मय है। एक षड्ऋतु-वर्णनमय है तो अन्य नवग्रहगर्भित है। क्रियागुप्त रचना तो एक नितान्त अद्भुत प्रयोग है। अनेक भाषाओं का एक साथ प्रयोग तो है ही। हीयाली यद्यपि अपूर्ण प्राप्त है फिर भी इतना पता चल जाता है कि इसमें अनेक प्रहेलिकाएँ हैं। कहो आगमों के नाम स्तोत्रों में गुम्फित है तो किसी मे आगम-सिद्धान्तों का उल्लेख है। कहीं छन्दों के नाम भी स्तोत्रों में आये हैं तो अन्य अनेक स्थानों पर आचार्य ने अपना नाम ही अनेक प्रकार के कलात्मक ढंगों से गुम्फित किया है। छोटे-से छोटे व बडे से बड़े छन्दों का प्रयोग भी कम चमत्कार जनक नही है। राजा भोज इन विविध प्रकार के चमत्कारो को देखा होता तो उसका गुणग्राही मन विभोर हुए बिना न रहता।

प्राप्य स्तोत्रो के आधार पर कुछ चमत्कारों का नामोल्लेख मात्र यहाँ किया गया है। यदि ७०० स्तोत्रों की रचना करने की बात सत्य हो, तो पता नही लुप्त या अप्राप्य स्तोत्रो मे कितने चमत्कार भरे पड़े होंगे। जो हो, प्राप्य स्तोत्रो व उनकी विशेषताओं के आधार पर ही हम आचार्य जिनप्रभ की प्रतिभा के प्रति नत होने को बाध्य है।

चित्र काव्य

प्राप्य स्तोत्रो में एक स्तोत्र चित्रकाव्यमय भी है। यद्यपि चित्रकाव्य को काव्यालोचको ने अधमकोटि का काव्य कहा है; किन्तु फिर भी इतना मानना पडेगा ही कि बिना भाषा पर असाधारण अधिकार प्राप्त किए कोई भी कवि चित्रकाव्य की सृष्टि नही कर सकता। आचार्य जिनप्रभ ने अपने 'वीरजिनस्तव' मे इस प्रकार का प्रयोग किया है और वे इसमें सफल भी हुए हैं। इस कार्य में उनकी सफलता को देख कर यह सोचने के बाध्य होना पडता है कि इस प्रकार के प्रयोग के बिना कदाचित् उनके

स्तोत्र-साहित्य का एक अंग विच्छिन्न रह जाता। चित्रकाव्य की रचना करने से अधिक सफलता उन्हें उसी क्रम से स्तोत्र में अपना नाम गुम्फित करने मे भी मिली है।

उपसंहार

जिनप्रभाचार्य की इन विशेषताओ पर विचार करने के बाद हम निस्सन्देह कह सकते है कि न केवल जैन साहित्यकारों मे वरन् भारतीय स्तोत्र-साहित्य में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। सफल भाषा प्रयोग, उच्च-कोटि के भावों का उद्भावन, अनुभूति की सघनता, विविधचमत्कारिक प्रयोग किसी भी दृष्टि से देखा जाय उनका स्थान अपने सहयोगी जैन-साहित्यकारों मे शीर्ष-कोटि का है। उनके सम्पूर्ण स्तोत्र प्राप्त होने पर निश्चय ही वे उत्तरकालीन साहित्य की परम्पराओं के उद्भावक व अनेक शृंखलाओ को जोड़ने वाली कड़ी के रूप में चिरउल्लेखनीय गौरव के अधिकारी समझे जायेंगे। हम निस्सन्देह उन जरामरण भयरहित यश-सिद्धकवीश्वर के समक्ष श्रद्धानत है।

माघ शुक्ल पूर्णिमा : २०१७
३१–१–६१ : कोटा

जिनप्रभसूरि गुणवर्णन छप्पय

—:०:—

तिम्हि वार सुलितानु जासु पुच्छवि हक्कारइ,
नियकरि कर सगहइ अप्प सरखइ बइसाण्इ।
अतीत अनागत वर्तमान पूछै जं भावइ,
हसि हसि उत्तर देइ सुगुरु रायहं रंजावइ।
असपत्ति राउ ढिल्ली तणउ, जसु एवडु आयरु करइ।
भट्टारक सूरि जिणप्पह हं सूरि न को सरभरि करइ ।। १ ।।

रयणपाल निम्मल-विसाल-कुलि-कमल-दिवायर,
हीर-खीर - डिंडीर - विमल - गुणमणि - रयणायर।
तिहुयण - जण - लोयण - चकोर-उल्हासण-ससहर,
विसम - विषय - जाला - कराल - दावानल - जलहर।
खेतल्लएवि-वर कुक्खिसर, रायहंस सुंदर चरिय।
तुव सरिसु जिणपहसूरि गुर, गछि गछि नहु आचरिय ।। २ ।।

तां तिसरु तडपडइ जाम सिन्चाणु पयट्टइ,
ता कुरंगु मयमंतु जाम चित्तउ संघट्टइ।
मयंगलु तामउ करइ जाम नवि केहरु पिक्खइ,
तां पव्वय उत्तुंगु जाम गिरि मेरु न पिक्खइ।
पंडियहं ताम गव्वु वहइं जां जिनप्रभ न वसि पडइं।
बहु सत्थ हत्थि अवहत्थियह वा अम्गल तीसउं झडइं ।। ३ ।।

को जग्गावइ काल-सप्पु सुत्तउ निद्दहं भरि,
कवण होइ दप्पिट्ठु पिट्ठु अग्गेसरि केसरि।

झलहलंत अगार कवण निय सीसि वहिज्जइ,
कवण कुंत लोयणह खग्ग खंडण भणि दिज्जइ।
इत्तडिहिं पयारिहिं जो रमइ भमइ जीउ संसय ठिउ।
सो अडइ जिणपहसूरि सिउ वाय करिवि अइ दिढ हिउ ॥ ४ ॥

मग्गिहं मेरु जिम धीरु रग्गिहं रायहं मनुरंजणु,
सग्गिहं सत्थ पारीण वग्गिहं वाइग मउ-भंजणु।
धग्गिहं धम्मि अनुरत्तु तग्गिहं तपतेय-दिवायरु,
गग्गिहं गच्छ खरतरहं पग्गिहं पयडउ गुणसायरु।
दादाग्गिहं दानि सुरतरु सरिसु जिनतिलकसूरि पट्टिहिं जयउ।
जिनराजसूरि सूरिहिं तिलउ, राजहंस गणि जंपियउ ॥ ५ ॥

सयल कला सुज्जाण सरसवचनेहिं सुमिट्ठउ,
सोहगि जंबुकुमारु दाण-गुणि करण गरिट्ठउ।
आगम गंथ पुराण वेद व्याकरण बहु जाणइ,
मधुर सधीर गंभीर वईण नव रस वक्खाणइ।
खरतरहं गच्छि जिनतिलकगुरु, निय पट्टिहिं थिरु थप्पियउ।
जिनराजसूरि जयवंत चिरु, नयतिलक्क गणि जंपियउ ॥ ६ ॥

ओवलिख्वा मदि रिसह नाह वंदिगो वगोयं,
महावीर मखदूम तु दिलइ कीव गोयं।
दस्तिमवारण सिर निहाद बुजरु कोविदादं,
पजम गणहर सुहसामि रात खूविदादं।
जंबुकुमार मुणि सुब्वयहं, पभव सजंभवादिहं।
जिनदत्तसूरि सिरिताज सिरि, एलिमाल जुमलइ अह ॥ ७ ॥

पइं पयडिउ जिणधम्मु मिच्छरज्जिहि ढिल्लियपुरि,
पइं रंजिउ सुरताणु नाणि विन्नाणि विविह परि।
पइं वाइय निज्जिणि असेस जयपत्तु वि लद्धउ,
तुह वाइय-गय-सिंह विरुद जाणियइ पसिद्धउ।

पउमावइ-देविय पत्तवर, तुव चरित्त कित्तिय भणउं।
सिरि सूरि जिणप्पहु अगण गुण, इक्क जीह किम करि थुणउं ॥ ८ ॥

सरसइ-कंठाभरण पवर वाइय-गय-संकल,
विज्जा-सत्तागार वाइगय-अंकुस निम्मल।
सयल वाइ-गय-गंधहत्थि वाइय विद्दारण,
जिणसासण-वण-सिंह वाइ-गय-घड-पंचाणण।
हम्मीर वीर वंदिय चलण, मिच्छरज्जि अक्खलिय-पसर।
जिणपहु-मुणिंद इत्तिय विरुद, तुव छज्जइ पर हत्थु धर ॥ ९ ॥

लोह न कंचण सरिस मेरु सम अवर न भूधरु,
गरुड सरिस न हुँ पंखि इंद सम अवरि न निज्जरु।
रवि सम इयर न खयरु न मणि चिंतामणि संनिहु,
कप्पुरुक्ख सम सरिस इयर न हु दीसइ भूरुहु।
जिणसिंघसूरि सीसप्पवर, भुवब्भुय गुण उक्करिस।
सिरि सूरि जिणप्पहसूरि तलि, सूरि न दीसइ तुव सरिस ॥१०॥

अंब निंब अतरउ जेम अंतरु बक हंसह,
जक्ख घणह अंतरउ जेम नारायण कंसह।
चिंतामणि पाहणहं जेम अंतरु ससि तारहं,
रयणायर सरवरहं रंक अंतरु जिम रायहं।
इयरे वि सूरि चाउद्दिसिहिं, सीह सरस जिम अंतरउ।
भट्टारक सूरि जिणप्पह हुं, न लहवडउ पट्टंतरउं ॥११॥

—अपूर्ण—

[श्री साराभाई नवाब संग्रह, वि० सं० १५५८ राजसुंदर लिखित गुटके के आधार से साभार उद्धृत]

छप्पय क्रमांक ५ एवं ६ प्रक्षिप्त मालूम होते हैं।

जिनप्रभसूरि षट् पद–

जुग्गिनि पुरि विस्तरउ सयल संसारिह जाणिउ ।
सुगुरु सूरि जिनप्रभु साहि बुलाइ सभापिउ ।
पूछइ खुंदालम्मं सुणि नितूं वातह म्हारी ।
इसि देवहिं क्या शक्ति, दूनी पूजइ विशयारी
त च साहि महमद (को) पीउ चडि पोसालइ आईयउ ।
पद्मावति समरि जिनप्रभुसुरि, श्री महावीर बोलावीउ ॥१॥
शक्ति करइ सुलताण, दुनी आलम ए का (य) म ।
इह खालि कु विशयासह स.,ऐक दीम दायम ।
हाजतिअ-वहु भवइ, जिके तुम्ह भावन भाविहं ।
पुज्जइ मनि घरि स्वामि, मन वाछित फल पावइं ।
तिहाँ मीरू मलिका इमरा, खडा जावन किसिहि अबीउं ।
श्री महावीर अतिसय कीउ, जिन शासनि छत्र चढाईउं ॥२॥
काजी उर मुख इम कुटिल्ल जमि लें हुक्कारियाँ ।
तुम्ह हु रोग गद्गद दुनी, ए जम विशयारियाँ ।
इह जिन खानी खास नेक मनि जरं दीदं ।
खालिक जबाक राख जिमिइ अडरूने को दीद ।
तब साहि महमद प्रज्वलू जइ खुदाइ न हु डर करउ ।
अति वास मेति काजी, मुला बदि मोलिघर घारी करउ ॥३॥

इति षट् पद समाप्त

(१६ वी शती, गुटका विनयसागरजी संग्रह)

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१७	प्रभावगा	पभावगा
	२२	साहित्कारों	साहित्यकारों
२	१४	अत्याश्यक	अत्यावश्यक
२	२४	विद्वता	विद्वत्ता
६	११	असन्तुष्ठ	असन्तुष्ट
११	११	बनइं	बनाईं
१२	६	प्रवल	प्रबल
	९	है।	हैं।
	१५	अम्मोहर	अम्भोहर
१४	२	चायोत्कट	चापोत्कट
१५	३	करडो हड्डी	करडी हट्टी
१६	१५	बहुश्चुत	बहुश्रुत
	२६	६२००	६२०००
१७	७	अनुत्तरौपपातिक०	अनुत्तरोपपातिक
	१६	सेठी नदो	सेढी नदी
१८	२	आगामो	आगमो
	१८	है।	है।
	२०	हो गये।	हो गये थे।
१९	१७	चित्रकूटीय बीरचैत्य प्रशास्त	चित्रकूटीय वीरचैत्य प्रशस्ति
	१७	भवारिवारण स्तोत्र	भावारिवारण स्तोत्र
	२५	स्वप्नसवृत्तिका	स्वप्नसप्ततिका
२०	३	हुम्ब	हुम्बड

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०	४	शुक्ल १	शुक्ला १
२०	१०	यह	×
	१६	बिक्रमपुरा	विक्रमपुर
	२२	मन्नवादी	मन्त्रवादी
२१	२२	सर्वाधिष्टात्री	सर्वाधिष्टायी
२२	५	आघ्यात्मगीतानि	अध्यात्मगीतानि
	११	भादो	भाद्रपद
	१९	गच्छनामक	गच्छनायक
२३	५	भादो	भाद्रपद
	६	मालप्रदेश	मालप्रदेश
२४	२	निजपतिसूरि	जिनपतिसूरि
	३	प्रतिमा	प्रतिमा
	२४	पृ० २५३४	पृ० २५ से ३४
२५	४	वृहद्वार	वृहद्वार में
	५	ने किया	ने शास्त्रार्थ किया।
	१३	प्रतिमा	प्रतिभा
२६	३	दो	द्वितीया
२६	४	वोरप्रभा	वीरप्रभ
	५	आषाठ	आषाढ
	६	बृहद्वारा	वृहद्वार
	११	सर्वदेवसूरि नामकरण किया गया।	सर्वदेवसूरि ने जिनपतिसूरि की आज्ञानुसार इनको आचार्य-गण-नायक पद प्रदान कर जिनेश्वरसूरि नामकरण किया।
२६	१९	शत्तुजय	शत्रुञ्जय
२७	२	बावरी	बाचरी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२७	१८	गलितकोटकपुर	गलितकोटकपुर,
	२०	के	का
	२१	पंचशती	पंचशती में
२८	२	सेतलदेवी	खेतलदेवी
	१०	द्वितीय आचार्य जिने-श्वरसूरि	आचार्य जिनेश्वरसूरि (द्वितीय)
	१८	रमणपाल	रयणपाल
	२०	ख० पट्टावली ३० पाच पुत्र में तृतीय नंबर	ख० पट्टावली ३ के अनुसार पाँच पुत्रों में से तीसरे।
	२३	पंच	पंचशती
	२४	बल्लभभारती	वल्लभभारती
३०	४	यह	×
	७	मूलगच्छा	मूलगच्छ
	८	जिनचन्द्रसूरि	जिनसिंहसूरि
३१	१	प्रभावती	पद्मावती
	२५	मोहिलवाणी	मोहिलवाडी
३२	२६	पंच	पंचशती
३३	१६	१४१८	१३१८
	१९	१३४७	१३४१
३४	९	प्राप्ति का	प्राप्ति का।
	१३	अष्टभाषाम	अष्टभाषामय
	१३	'निरवधिरुचिर ज्ञानमय,	'निरवधिरुचिरज्ञानं'
	१६	नन्दाप्तोरुविशुद्धयोग	नन्दाप्तोरुविशुद्धयोग-
	१७	शास्तं	शस्तं
	१९	दन्ताज्ञानरमां	रन्ता ज्ञानरमां
३५	१२	ग्रन्थों का निर्माण किया।	ग्रन्थों का किया।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३६	१९	पद्मदेवसूरि	पद्मदेवसूरि,
	२०	निम्नग्रन्थ	निम्न ग्रन्थ
३७	८	ये न ज्ञान कला-	येन ज्ञानकला-
३७	१९	देनेन्द्रसूरि	देवेन्द्रसूरि
३८	१३	१०९७	१३९७
	१३	काम्बोजकुलीयठ	काम्बोजकुलीय ठ०
	१४	अभ्यर्थतया	अभ्यर्थनया
३९	५	सहाय्योद्भिन्नसौरभ	साहाय्योद्भिन्नसौरभ ।
	७	प्रशाप्ति.	प्रशस्ति.
	१३	महावीरप्रतिभाकल्प	महावीरप्रतिमाकल्प
	१५	देवगिरि	देवगिरि,
४०	१६	वैभारागिरि	वैभारगिरि
	१८	शुद्धदेह	शुद्धदेही
४१	११	शेगेषक	शेरीषक
	१४	आशापल्ली	आशापल्ली,
	१५	१३६९	१३६९ मे
	१६	१३९१	१३९१ में
	१६,१७	नाभि नदनजिनोद्धार प्रबन्ध	नाभिनन्दनजिनोद्धारप्रबन्ध
४२	३	३१८	३२८
	५	लिखित	लेखित
	८	उत्रवशे	उत्र वशे
	१०	प्रसाद	प्रसाद-
	११	मासाद्यसद्गुण-	मासाद्य सद्गुण-
	१३	लिखित	लेखित
	१६	सूरिजिनप्रभाडिकमले	सूरिजिनप्रभाङ्घ्रिकमले

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	१८	विलपवनं	विलवपनं
	१९	समाजस्तु ताथ	समाजस्तुताम्
४३	४	पुराश्रीजिनप्रभसूरिभिः	पुरा श्रीजिनप्रभसूरिभिः
	४	पुरसारं	पुरस्सरं
	७	चित्रद्धान्दो	चित्रच्छन्दो
	१३	तपोरमतकुट्टनशतं	तपोटमतकुट्टनशतं
	१७	२९ वी	२० वी
	२०	समुदाय पिष्ट	समुदाय की दृष्टि
४४-४,६		गुच्छाग्रह	गच्छाग्रह
	८	रुद्रपल्ल	रुद्रपल्ली
	१५	सोमसुदर	सोमतिलक
४५	१	प्रतिरोध	प्रतिबोध
४६	१०	आचार्य ही ने	आचार्यश्री ने
	११	रखकर	रचकर
	२५	जिनदेवसूरि	जिनदेवसूरि[१]
४७	९	की	के
	२२	रजित	रचित
	२३	अमरनाम	अपरनाम
४८	६	(युगप्रवरागम जिनपति सूरि के चाचा)	युगप्रवरागम जिनपतिसूरि के चाचा,
	७	सङ्घेप	सङ्घे
	९	बाणष्ट	बाणाष्ट
	१५	विद्यमधुर	विक्रमपुर
	१८	उपरयुक्त	उपर्युक्त
	१९	कन्यानयनवर्त मान कालानूर	कन्यानयन वर्तमान कानानूर

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४८	२१	किन्तु समय	किन्तु उस समय
	२३	सिंघि	सिंघी
	२५	बागुड	बागड
	२६	उल्छेख	उल्लेख
४९	१५	फरयान	फरमान
	१७	नबाहा	नवहा
	२४	महावीर पुत्र	महावीर प्रभु
५०	२	निकाला	निकला
	४	पहुंचा	पहुंचा।
५१	१५	निश्चितया	निश्चिततया
	१८	सेवागड	से बागड
	२४	युगप्रभ रागम	युगप्रवरागम
५२	११	५४	९४
	१४	मृगाकगं, यो	मृगाङ्कगं यो,
५३	६	अधिष्ठापक	अधिष्ठायक
५४	५	वृत्तान्त होने	वृत्तान्त ज्ञात होने
	९	आर्शीर्वाद	आशीर्वाद
	१२	जैन-सध	जैन-संघ
५५	९	जिनप्रभ शाही	जिमप्रभ ने शाही
	११	सिद्धातवाचना	सिद्धान्तवाचना
५६	७	आया	हो आया
	१०	पाण्डित	पाण्डित्य
५९	५	सरिजी	सूरिजी
	११	शासन भावना	शासन प्रभावना
६०	५	सघवात्मलादि	संघवात्सल्यादि
	२०	जयपुरस्तोत्र	गजपुरस्तोत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६०	२२	पृथक्कें विषयों कंमिते[12]	पृथक्कैंविषयोंकंमिते[12]
	२४	यात्रोत्सवोपतत'	यात्रोत्सवोपमत
६१	२०	प्रभावती देवी	पद्मावती देवी
६४	२	यह	×
६५	१	मुहम्मदशाह्	महम्मदशाह्
	१	सत्कार	सत्कृत
	२	राघवचैतन्य	राघवचैतन्य
	५	भी	ही
	८	प्रभावती	पद्मावती
	२३	शाकं भरीश्वर	शाकम्भरीश्वर
	२४	द्विजागुणी	द्विजाग्रणी
	२६	टशे	हृशे
६६	१७	कर्तव्य	आश्चर्य
६९	१९	बिया	दिया
७१	२०	दें	वाछित दें
७३	२४	वैठ	बैठ
७४	५	देने का	देने को
	१२	नागरिको	नागरिकों ने
	२६	करे ।	करें ।
७६	६	१७४	? १३७४
	७	लेरस्सए	तेरस्ससए
७७	१	तथा	तपा
७८	३	जिनप्रभ	जिनप्रभ ने
	२४	शिलोञ्छा	शिलोञ्छ
७९	१	कर्म	कई
	८	वाचनार्थ	वाचनाचार्य

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७९	२०	नानानाटकहाटका भरगिरि	नानानाटकहाटकामरगिरिः
	२३	सरोरूह–	सरोरुह्
८०	८	विपक्षवादिद्विपञ्चवक्त्र.	विपक्षवादिद्विपपञ्चवक्त्रः
	११	तजित–	तर्जित-
	१३	जिनमेरुसूरि	जिनमेरुसूरि.
	१५	गुणगणभणि–	गुणगणमणि
८१	३	विपक्षवादिद्विपञ्चवक्त्र	विपक्षवादिद्विपपञ्चवक्त्रः
८३	४	अरउक्कमल्ल	अरडक्कमल्ल
	१९	राघवलक्ष	राघवलक्ष
८४	१	उ०	ठ०
	१९	वाणेन्दु	बाणेन्दु
८५	११	समच्यर्थिता	समभ्यर्थिता
	२०	न्यूनघम.	न्यून धर्म.
	२४	स चरित्रभू.	सच्चरित्रभू.
८६	३	अरउकमल्ल'	अरडकमल्लः
	११	अरउक्कमल्ल	अरडक्कमल्ल
	२३	अरउक्कमल्ल	अरडक्कमल्ल
८७	६	र्माघद्वै (?) रि	र्माघद्वैरि-
	१८	अरउक्कमल्ल	अरडक्कमल्ल
८९	४	स० १४	सं० १४····
	१४	सीतालती	सीता सती
	१९	सागरतिलक से	सागरतिलक के
९१	३	वीरस्तोत्र टीका	वीरस्तोत्र टीका[७]
९२	६	पडिवद्धा	पडिबद्धा
	९	जिणदत्तसूरिसंलाण	जिणदत्तसूरिसंताण
	१०	ढाणप्पमिए	ट्ठाणप्पमिए

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९२	१३	सिरिजणवल्लह-	सिरिजिणवल्लह
	१७	पसाया ओं	पसायाओं
	१९	ससिसूरपई वा	ससिसूरपईवा
९३	७	पच्चक्खाणठाइं	पच्चक्खाणठाणाइं
	९	सुबहुबिट्ठाणेसु	सुबहुविहाणेसु
९४	३	षद्पदकाव्यटोका	षट्पदकाव्य टीका
	९	समर्पिता	समर्थिता
	१४	श्रीजिनप्रभसूरोकृत	श्रीजिनप्रभसूरिकृत
	१५	भाषाकाव्यावचूरी:	भाषाकाव्यावचूरिः
९५	४	सुगता हि सेवा-	सुगताह्सेवा-
	६	विधा	विधाय
	२६	समर्पित.	समर्थित.
९६	१	अश्वानबोधतोर्थकल्प	अश्वावबोधतोर्थकल्प
	१२	चतुरशोतिमहातीर्थ-नामङ्ग्रहकल्प,	चतुरशीतिमहातीर्थनामसग्रहकल्प
	१६	मृदुविशदयदा-	मृदुविशदपदा-
	१८,२१,	जिणपट्टसूरीहिं	जिणप्पहसूरीहिं
	२०	पूसक्कवारसीए	पूसक्कबारसीए
	२३	चिट्ठसिय-	जिट्ठसिय-
	२४	शशधरहृषोकाक्षि-	शशधरहृषीकाक्षि-
	२७	रितिविरचया चक्षु	रिति विरचयाचक्रुः
९७	२	आमरकुण्ड-	अमरकुण्ड-
	१०	पृषत्कविषयिकिमिते	पृषत्कविषयार्कमिते
	११	यात्रोत्सबो-	यात्रोत्सवो-
	११	जिनप्रभोस्य	जिनप्रभाख्यः

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९७	१२	वीजं	बीजं
	२४	हरिसागरसूरि	हरिसागरसूरि ज्ञान भण्डार,
९८	४	च्छान्दोविशेषादि-	च्छन्दोविशेषादि-
	२१	निर्लोहितशठकमठं	निर्लोठितशठकमठं
९९	४	ऋषभनाथमनाथ	ऋषभनाथभनाथ
१००	२	गुणार्द्धि	गुणर्द्धि
१००	१६	दोसाबहार दक्खो	दोसावहारदक्खो
१०१	१२	धन्नपुन्नसुकपत्थनरा	धन्नपुन्नसुकयत्थनरा
	२४	अवधावि	अवधारि
१०२	६	वर्गीकरके	वर्गीकरण करके
	१८	मन्दोहमोहावतमस-तरणि	सन्दोहमोहावनमसतरणि
	२२	आकाव्य	आ काव्य
१०३	६	दमदमभोजसा	दमदममोजसा
	७	ह्यकामचदामय	ह्यकामयदामय
	१०	आचाममाचाममभि-भाश्व	आचाममाचामभिभाश्व-
	१८	व्राहम्यै	ब्राहम्यै
१०४	२३	श्लाषा	श्लाघा
१०५	१	इसमे मत्,	इसमे अस्मद् के मत्,
१०६	१२	और	और भी
	१९	विष्ठप-	विष्टप-
१०८	९	रिप्पनकं	टिप्पनकं
११०	९	अभयदेवसूरि शि०	(अभयदेवसूरि शिष्य)
	२५	१२१	१२०
११२	७	श्रीचन्द्रसूरी	श्रीचन्द्रसूरि
	१३	विपय	विषय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११२	१८	कथादप्रकोष	कथारत्नकोष
	२१	ह० ५६२	ह० ५६२
	२५	लालक	लालचंद
११३	९	८ गाथा, ११	८ गाथा, पृष्ठ ११
	१०	गा० ९।१५	९ गाथा, पृष्ठ १५,
	११	गा० ५ १०३	५ गाथा, पृष्ठ १०३
	१२	गा० ६ १०३	६ गाथा, पृष्ठ १०३
११४	३	प्रतिष्ठाविधान	प्रतिष्ठाविधान का
११७	९	वर्धमानविधकल्प	वर्धमानविद्याकल्प
	२०	वर्धमानविधाकल्प	वर्धमानविद्याकल्प
११८	८	में गायत्री आचार्य	में आचार्य
१२०	१९	'संदेह 'विषौषधि'	'संदेहविषौषधि'
१२१	११	१२६४	१३६४
१२३	११	तात्वज्ञ	तत्वज्ञ
	२५	इसमें	इनमें
१२४	११	चतुर्विशति	चतुर्विंशति
	१५		
१२५	९	सपूहयोदय·	समुहयोदय.
	१०	नवमामल	नयमासल
	१९	भवनाथनिभानन	भनाथनिभानन
	२४	के	की
१२६	९	रतिर्जयिनं	रतिपतेर्जयिनं
	१९	बंधनंधा:	वन्द्य नम्चाः
	२२	अष्टम छन्द	२८ वां छन्द
१२७	१८	यस्मादधीत्ये–	यस्मादधीत्ये–
	२४	प्रणम्यादिजिन	प्रणम्यादिजिनं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२८	१९	पार्श्वजिनस्तव	पार्श्वजिनस्तव शीर्षक पंक्ति २३ में 'द्व्याश्रयकाव्य जैसा बन गया है।' इसके पश्चात् पैराग्राफ छोड़कर पढ़ें।
१२९	१२	स्तोत्र	स्तोत्रं
	२६	सियपक्खाणदयरं	सियपक्खाणंदयरं
१३०	१२	फणीन्द्र	फणीन्द्र·
	१२	रुद्यद्योतिताशा	रुद्योतिताशा
१३१	१५	महिमश्रियाह्	महिमश्रियामह्
	१६	कमरुदर्पकोपिणाम्	कमठदर्पकोषिणम् ।
	१८	श्रवणस्तवोत्तमा	श्रवणतस्तवोत्तमा
	२०	नाकिनामकयुगेन	नाकिनायकयुगेन
	२१	मुह्ये	मुक्तये
	२२	हैं	हैं
	२६	सुरनपूइया	सुरनरपूइय
	२७	सघवण	संथवण
१३२	९	ते लुक्क	तेलुक्क
	१४	ढालिय–	टालिय–
१३४	१२	भव्यानऽवस्तु	भव्यानवतु
	२२	दृष्टव्य	द्रष्टव्य
	२५	स्पृहामवृजिनप्रमवाय	स्पृहामवृजिनप्रभवाय
	२६	लक्ष्मीविभर्ति	लक्ष्मीर्बिभर्ति
१३५	१६	दुगधामपि	दुराराधामपि
१३६	२	प्रतिलोमानुलोमार्द्यं	प्रतिलोमानुलोमाद्यैः
	५	ननानेननननोनम	ननानेननननोनन
	१०	जिनेश्वरवरो भव्याब्ज-	जिने[१]श्वरवरो भ[४]व्याब्ज–
	१२	सुख[२]प्रदाः	सुख[३]प्रदा.
	२०	छन्दोभिर्विविधैरधीर	छन्दोभिर्विविधैरघोरघी-

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	२३	दूयभानः	दूयमानः
१३७	४	सेव्यांऽह्रिशा	सेव्यांऽह्रिम्
१३८	१५	तमकसिणसप्परवयमो	तमकसिणसप्पखयमो
	१८	तुहश्चस्ति	तुहशुस्ति–
	२२	रत्तूणहितयके	रत्तूणहितपके
१३९	२	कुमुदमकथनिदानं	कुमुदमकयनिदानं
	१३	नन्दाप्तोरुविशुद्धयोग–	नन्दाप्तोरुविशुद्धयोग–
	१५	सिद्धरमणी	सिद्धिरमणी
१४०	१०	न ह्यत्र	नह्य
	१५	जिणयहसूरीहि	जिणपहसूरीहि
१४२	१९	माघव	माघ
१४३	१	स्तवों	स्तव
	८	गतदनवगम	गलदनवगम
	१२	लसदवम्	लसदवम
	१५	व्यहृत	व्यवहृत
	२५	त्ववद्यमुक्तनेमे	त्वमवद्यमुक्तनेमे
१४४	२१	श्रीजिनसूरिभिः	श्रीजिनप्रभसूरिभिः
१४५	१	देवैर्य	देवैर्यः
	४	कृताविद्यो परमा	कृताविद्योपरमा
	१२	चविड चंदाणणाय	चविउं चंदाणणाए
	१५	पद्य है।	पद्य हैं।
	१८	जगज्जनलोचनं भृङ्ग सरोज	जगज्जनलोचनभृङ्गसरोज
१४६	७	सेविनपदे	सेवियपदे
	१३	नमने	नमते
	२५	हारिहास–	हारिहार–

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४७	१२,१३	हथिणापुर गो- वनिपात साहि	हथिणापुरगोवनि, पातसाहि
	१९	दिगरहिय	दिगरिहय
	२१	अशितेरीष	अजितेरीष
	२१	सनखमसवति सईन	सन खमस वतिसईन
१४९	२	तपोत्तीर्ण	तापोत्तीर्ण
	८	नमिभो	नमिमो
	१९	प्रदघान्	प्रदद्यान्
१५०	२०	चण्डमतिण्ड	चण्डमार्तण्ड
१५१	१५	वाचना	वाचना
	१९	सदैवेनं	सदैवैन
१५२	३	प्रतिष्ठित तम	प्रतिष्ठित तम पारे
	१०	गुरुनेत्रं	गुर्नेत्रं
	२०	इत्याहत	इत्यादृत
	२३	श्लोक हैं ।	श्लोक हैं ।
१५३	२	लुम्पता	लुम्पता
	१३	मघवताऽघवता	मघवताऽघवता
१५४	३	जिनाचार्यो	जैनाचार्यों
	१५	जिणेशर	जिणेसर
	२३	सिद्धिनु	सिद्धू न
१५५	१	बधुन	बंघण
	४	चउविसपि	चउवीसंपि
	२०	स्तविमि	स्तवीमि
१५६	१	दिवराय	दिवराय (बलिनाम)
	३	नियजमु	नियजंमु सफलु
	९	ग्रथ मे भी आये है ।	ग्रथ में प्रकाशित हो चुके हैं ।
१५७	६	आणदपरे	आणदयरे

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५७	१०	पयपंकय भुसलि	पयपंकयभसलि
	१७	पप्पूरि	कप्पूरि
१५८	८	कोडाकोडीडं	कोडाकोडीउं
	१०	छट्ठी	छट्ठो
	१६	जिणपहसूराहिं	जिणपहसूरीहिं
१५९	२०	वन्दनकतिक्रमण	वन्दनकप्रतिक्रमण
१६०	११	कुर्याज्जिन	कुर्याज्जिन
१६०	१३	स्पृहयती	स्पृहयति
१६२	५	प्रतोष्ठिता	प्रतिष्ठिता
	१७	स्पप्ट	स्पष्ट
१६४	२	पद्मभूंगिके	पद्मभृंगिके
	२४	मधुरोज्जला	मधुरोज्ज्वला
१६५	७	विग्रहं	विग्रहा
	१६	श्लोक से	श्लोक के
	२६	नाम की	नाम भी
१६७	११	सान्निच्य	सान्निध्य
१७०	१७	४६	४४
	२३	किसी अन्य	किसी में किसी अन्य
१७१	२०	कौ	को
	२५	के बाध्य	के लिये बाध्य
१७२	१	विच्छिन्न	अपूर्ण

नोट—पृष्ठ ७९ पंक्ति ८ वाचनाचार्य चारित्रवर्द्धन शीर्षक से लेकर पृष्ठ ८८ पंक्ति १३ तक का अंश पृष्ठ ८९ पंक्ति ११ पर पढ़ें।

●

जैनप्रभीय प्रकाशित स्तोत्र-सूची

क्रमांक	स्तवनाम	आदिपद	पद्य सं०	मुद्रित स्थल
१.	पञ्चनमस्कृतिस्तव	प्रतिष्ठित तम छरे	३३	प्रकरणरत्नाकर भा० ४
२	पञ्चपरमेष्ठिस्तव	स्व श्रिय श्रीमदर्हन्त.	५	,, ,,
३	अर्हदादि स्तोत्र	मानेनोर्वी व्यहुतपरितो	८	जैन स्तोत्र सदोह भा० मे चन्द्रप्रभमूतिकृत है।
४.	प्राभातिक नामावली	सौभाग्यभाजन		विधिमार्गप्रपा
५	वीतरागस्तव	जयन्ति पादा जिननायकस्य	१६	प्रकरणरत्नाकर भा० ४
६	पञ्चकल्याणकस्तव	निलिम्पलोकामितभूतल	८	,, ,,
७.	चतुर्विंशतिजिनस्तव	कनककान्तिधनु शत-	२९	,, ,, काव्यमाला गुच्छक ७
८	,,	ऋषभनम्रसुरासुरशेखरं	२९	,, ,, जैन स्तोत्र समुच्चय
९.	,,	आनम्रनाकिपतिरत्न	२५	,, ,,
१०.	,,	पात्वादिदेवो दशकल्प-	२९	,, भाग २,
११.	,, (श्लेषमय)	य सततमक्षमालोप-	३०	

१२.	,,	तत्त्वानि तत्वानि भूतेषु	२८ प्रकरणरत्नाकर भा० ४
१३.	,,	प्रणम्यादिजिनं प्राणी	२८ ,, ,,
१४.	,,	जिनर्षभप्रीणितभव्य-	८ ,, ,,
१५.	,,	नतसुरेन्द्रजिनेन्द्रयुगादि-	९ पञ्चप्रतिक्रमण सूत्र (वीरपुत्र)।
१६.	पुंडरीकगिरिमण्डन ऋषभ-सिद्धो वर्णसमाम्नाय. स्तव-कातन्त्र सन्धिसूत्रगर्भित		२३ प्रकरण रत्नाकर भा० ३; जैन स्तोत्र संदोह भा० २ में निर्नाम।
१७.	युगादिदेवस्तव (८भाषा)	निरवधिरुचिरज्ञानं	४० प्रकरणरत्नाकर भा० २,
१८.	,,	अस्तु श्री नाभिभूर्देवो	११ ,, भा० ४; जैन स्तोत्र समुच्चय।
१९.	,,	अल्लाल्लाहि सुराह	११ जैन स्तोत्र समुच्चय, जैन साहित्य सशोधक खंड ३. अंक १.
२०.	ऋषभदेवाज्ञास्तव	नयगमभंगपहाणा	११ जैन स्तोत्र संदोह भा० १
२१.	अजितजिनस्तव	विश्वेश्वरं मथितमन्मथ-	२१ जैन स्तोत्र समुच्चय; चतुर्विंशति जिनानन्द स्तुति-मेरुविजयकृत।
२२.	चन्द्रप्रभजिनस्तव (षड्भाषा)	नमो महसेननरेन्द्रतनूज	१३ प्रकरणरत्नाकर भा० ४
२३.	,,	देवैर्यस्तुष्टुवे तुष्टैः	४ ,, ,,
२४.	शान्तिजिनस्तव	श्रीशान्तिनाथो भगवान्	२० ,, ,,
२५.	अरजिनस्तव	जय शरदशकलदशहृय.	१४ ,, ,,

२६	नेमिजिनस्तव (क्रियागुप्त)	श्रीहरिकुल हीराकर	२०	,
२७	पार्श्वजिनस्तव	कामे वामेय शक्ति	१७	काव्यमाला गुच्छक ७
२८	(फलवर्द्धि)	अधियत्पुनमन्तो	१२	
२९	(जीरापल्लि)	जीरिकापुरपति सदैव त	१५	प्रकरणरत्नाकर भा० ४
३०	, (८अतिशय)	त्वा विनुत्य महिमश्रिया-	१०	, ,,
३१	पार्श्वजिनस्तव	श्रीपार्श्वपादानतनागराज	८	प्रकरणरत्नाकर भा० ४
३२	,	पार्श्व प्रभु शश्वदकोपमान	८	,,
३३	,	श्रीपार्श्व परमात्मान	८	जैन स्तोत्र सदोह भा० २
३४		श्रीपार्श्व भावत स्तौमि	९	,, प्रकरण रत्नाकर भा० ४
३५	,, (नवग्रहगर्भित)	दोसावहारदक्खो	१०	पचप्रतिक्रमणसूत्र
३६	,, (फलवर्द्धि)	सयलाहिवाहिजलहर	११	प्रकरणरत्नाकर भा० ४
३७.	वीरजिनस्तव(चित्रकाव्य)	चित्रैं स्तोष्ये जिन वीर	२७	,, ,, जैन स्तोत्र समुच्चय
३८	,, (विविधछद)	कसारिक्रमनियदा	२५	काव्यमाला गुच्छक ७
३९	,,(पचवर्गपरिहार)	स्व श्रेयससरसीरुह	२६	प्रकरण रत्नाकर भा० ४
४०	,, (लक्षणप्रयोग)	निस्तीर्णविस्तीर्णभवार्णव	१७	,, ,,
४१	,,	असमशमनिवास	२५	,, ,,

४२. ,,	श्रीवर्द्धमानः सुखवृद्धये	९	,, ,,
४३. वीर निर्वाणकल्याणक स्तव	श्रीसिद्धार्थनरेन्द्रवंश	१९	,, ,, काव्यमाला गुच्छक ७,
४४. वीरजिनस्तव (५ कल्याणकमय)	पराक्रमेणेव पराजितोयं	३६	,, ,,
४५ ,,	श्रीवर्द्धमानपरिपूरित	१३	,, ,,
४६. तीर्थयात्रास्तव	सिरिसत्तुंजयतित्थे	९	विधिमार्गप्रपा
४७. मथुरायात्रा स्तोत्र	सुराचलश्रीजिति	१०	,,
४८. मथुरा स्तूप स्तुति	श्रीदेवनिर्मितस्तूप	४	,,
४९. स्तुति त्रोटक	नियजम्मु सफलु	५	,,
५०. ,,	ते धन्न पुन्न सुकयत्थतरा	४	,,
५१. गौतमस्तव	श्रीमन्त मगधेषु	२१	प्रकरण रत्नाकर भा० ४; काव्यमाला गुच्छक ७,
५२. ,,	जम्मपवित्तियसिरि	२५	जैन स्तोत्र सदोह भा० १,
५३. गौतमाष्टक	ॐ नमस्त्रिजगन्नेतु	९	,, ,,
५४. जिनसिंहसूरिस्तव	प्रभु. प्रदधान्मुनिप	१३	प्रकरण रत्नाकर भा० ४,
५५. सिद्धान्तागमस्तव	नत्वा गुरुभ्यः श्रुतदेवतायै	४५	काव्यमाला गुच्छक ७,
५६. शारदा स्तव	ॐ नमस्त्रिदशवन्दितक्रमे	९	जैन स्तोत्र सदोह भा० २,
५७. ,,	वाग्देवते भक्तिमता	१३	प्रकरण रत्नाकर भा० ४,
५८ पद्मावती चतुष्पदिका	जिणसासणु अवधारि	३७	भैरव पद्मावतीकल्प (नवाब)
५९. वर्द्धमान विद्यास्तव	आसि किल ठुत्तरसय	१७	वर्द्धमानविद्याकल्प
६०. चतुर्विंशति जिनस्तव	आनन्दसुन्दर	२९	जैनस्तोत्र समुच्चय में निर्नामक
६१. वीरजिनस्तव चित्रमय	विश्वश्रीविधुरच्छिदे	२१	जैन स्तोत्र समुच्चय

जैनप्रभीय अप्रकाशित स्तोत्र

क्रमांक नाम	आदि पद	पद्यसंख्या
१. मगलाष्टक	जितभावद्विषां	८
२. पञ्चपरमेष्ठिस्तव	परमेष्ठिनः सुरतरू-	७
३. द्विःत्रिपञ्चकल्याणकस्तव	पद्मप्रभ प्रभोर्जन्म	२५
४ युगादिदेवस्तव	मेरौ दुग्धपयोधि	३३
५. चन्द्रप्रभचरित्र	चदप्पह-चंदप्पह	२२
६ शान्तिनाथाष्टक (पारसीछपा)	अजि कुदु काफु जुनूवि	८
७ पार्श्वजिनस्तव	श्रीपार्श्व श्रेयसे भूयाद्व	४४
८. ,, (फलवर्द्धि)	जयामलश्रीफलवर्द्धि पार्श्व	२१
९. ,, ,,	श्रीफलवर्द्धि पार्श्व	९
१० ,, (षड्ऋतु वर्णन)	असमसरणीय जओ	७
११ ,, (उवसग्गहर-स्तोत्र पादपूर्ति)	पणमिय सुरनरपूइया	२२
१२. तीर्थमालास्तव	चउवीसंपि जिणिंदे	१२
१३. विज्ञप्ति	सिरिवीयरायदेवाहिदेव	३५
१४. सुधर्मस्वामी स्तोत्र	आगमत्रिपथगाहिमवन्तं	२१
१५. ४५ नामगर्भित आगमस्तव	सिरिवीरजिण सुयरयरोहणं	११
१६ परमतत्त्वावबोधद्वात्रिंशिका	धर्मधर्मान्तर मत्वा	३२
१७ कालचक्रकुलक	अवसप्पिणी उसप्पिणि	३४
१८. हीयाली	अंकुलु अमूलु अ	४

परिशिष्ट जिनप्रभसूरिपरपट्टागीत (जिनप्रभसूरिगीत, जिनदेवसूरिगीत)

●

(१) मङ्गलाष्टकम्

जितभावद्विषां सर्वविदां तत्त्वार्थदर्शिनाम् ।
त्रैलोक्यमहितांह्रीणामर्हतांमस्तु मङ्गलम् ॥ १ ॥
कृत्स्नकर्मक्षयावाप्तमुक्तिसाम्राज्यसम्पदाम् ।
गुणाष्टकैश्वर्ययुषां सिद्धानामस्तु मङ्गलम् ॥ २ ॥
पञ्चाचारसमृद्धाना सुतजीवातुवेदिनाम् ।
भवच्छिदामाचार्याणा श्रीमतामस्तु मङ्गलम् ॥ ३ ॥
वाचकाना जिनवचः-पीयूषरसतृष्णजः ।
भव्यान् सूक्तिसुधावर्षै. प्रीणतामस्तु मङ्गलम् ॥ ४ ॥
साधूनां सिद्धिसम्बन्धी-लीलालालसचेतसाम् ।
सम्यग्ज्ञानक्रियाबद्धो-द्यमनोमस्तु मङ्गलम् ॥ ५ ॥
जिनागमगजेन्द्रस्य स्याद्वादकरशालिनः ।
रहस्योत्सर्गदन्ताभ्या शोभितस्यास्तु मङ्गलम् ॥ ६ ॥
कुतीर्थिमत्तेभहरेः पूजितस्यार्हतामपि ।
चतुर्विधस्थानधस्य श्रीसंघस्यास्तु मङ्गलम् ॥ ७ ॥
मङ्गलस्तोत्रमंगल्य प्रदीपस्यास्य दानतः ।
येऽर्चयन्ति जिनान् भक्त्या ते स्यु. प्राप्तजिनप्रभाः ॥ ८ ॥

इति मङ्गलाष्टकम् ।

[अभयसिंह ज्ञान भंडार पो. १६. गु. २१८ पृ. २२३]

•

(२) पञ्चपरमेष्ठिस्तवः

परमेष्ठिनः सुरतरू-निव नुतविदितत्रिविष्टपावस्थान् ।
पञ्चापि सदा पत्रान् सुमनः प्रियसौरभान् सफलमुक्तीन् ॥ १ ॥

कल्याणमयशरीरा रुचिरचतु सख्यकान् ता सततम् ।
सर्वक्षमाभृदग्र्या मेरव इव सन्तु हृद्यकूटा न ।। २ ।।
विधुरवियक्तमविग्रह-मकर्मक सततगतमनाकल्पम् ।
अच्युतपदेतिरूढ नभ इव सस्तौमि सिद्धिनिकुरम्बम् ।। ३ ।।
असमानक्रममकरा मुक्तावासा सरस्वतीनिलया ।
आचार्या सज्जनद-त्तरङ्गका सागरा इव जयन्ति ।। ४ ।।
पान्तु विनीतागमदा अपव्यपाया अलकृतसुवर्णा ।
दर्शितनयनालीका शक्रा इव जययुता उपाध्याया ।। ५ ।।
विरचितकेसोद्धरणो जडाशयानामपास्तकालुष्य ।
अभ्युषितो यमकाष्ट साधुगुण कुम्भयोनिरिव जीयात् ।। ६ ।।
परमेष्ठिपञ्चकमिद जिनप्रभवशसनैकसर्वस्वम् ।
य पठति निर्मलमति सतत शिवसौख्यमश्नुते सततम् ।। ७ ।।

इति श्रीपञ्चपरमेष्ठिस्तोत्र कृत श्रीजिनप्रभसूरिभि ।।
[अभय जैन ग्रन्थालय ९५२३ प १ ले १७वी]

●

(३) द्वित्रिपञ्चकल्याणकस्तवः

पद्मप्रभप्रभोर्जन्म गर्भाधान च नेमिन ।
भवाति कार्तिकश्याम-द्वादश्या लुम्पता मम ।। १ ।।
दीक्षाऽस्य नमेर्ज्ञान श्रीमल्लेस्ते च जन्म च ।
मार्गस्य शुक्लैकादश्या-मथात्कल्याणपञ्चकम ।। २ ।।
ज्ञानश्रिया वासुपूज्यो जन्मना चाभिनन्दन ।
या पवित्रितवान माघ-द्वियीया सा शुचि श्रिये ।। ३ ।।
माघश्वेततृतीयाया ययोर्जन्ममहोऽजनि ।
प्रपद्ये शरण पादास्तयोर्विमलधर्मयो ।। ४ ।।

सुपार्श्वः प्राप कैवल्यं केवलं चन्द्रलाञ्छनः ।
यस्यां सा वः सुखायास्तु कृष्णाफाल्गुनसप्तमी ॥ ५ ॥
श्रीश्रेयासस्य जन्माभूत् ज्ञानं श्रीसुव्रतप्रभोः ।
यस्या सा बहुला दद्यात् फाल्गुनी द्वादशी मुदम् ॥ ६ ॥
मल्लिर्मुक्तिमुरीचक्रे दीक्षां च मुनिसुव्रतः ।
यत्र सा श्रेयसे भूयात् फाल्गुनद्वादशी सिता ॥ ७ ॥
अजित. संभवोऽनंत प्रापुर्यत्र परं पदम् ।
चिनोतु सावः शुचिता शुचिश्चैत्रस्य पञ्चमी ॥ ८ ॥
अनन्तस्य व्रतं ज्ञाने कुन्थोर्जन्ममहोत्सव. ।
वैशाखाद्यचतुर्दश्या नन्द्यात् कल्याणकत्रयी ॥ ९ ॥
वैशाखे विशदाष्टम्या सुमतेर्जननोत्सवः ।
अभिनन्दननाथस्य मुक्तिश्च कुरुता मुदाम् ॥१०॥
भाद्रस्यासितसप्तम्या मुक्तिश्चन्द्रप्रभप्रभो. ।
शान्तेश्च गर्भावतर तार वितरता सुखम् ॥११॥
नमेन्द्रचूडारत्नाशु–मञ्जरीपिञ्जरक्रमा ।
जयन्ति जिनशार्दूलास्त्रैलोक्याभयलग्नकाः ॥१२॥
अजरामरता यान्ति य–पि भव्यजन्तव ।
सा सर्वज्ञमुखाम्भोधि–निर्गतावाक्सुधाश्रिये ॥१३॥
विलेपनं ददानाह्नि—नखाशुघुसृणद्रवैः ।
नम्रामराङ्गनास्येषु त्रायता व. सरस्वती ॥१४॥
इति स्तुताः जिनाधीशाः कल्याणैर्द्वित्रिपञ्चभि. ।
भव्यात्मना प्रमोदाय श्रीजिनप्रभसूरिभिः ॥१५॥

इति द्वित्रिपञ्चकल्याणकस्तुतयः समाप्ताः ॥

[अभयसिंह ज्ञान भंडार, पो–१६ पु. २१८ प. १६६ ले. १६वी]

(४) युगादिदेवस्तवः

(शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः)

मेरौ दुग्धपयोधिवाःप्लवमिषाज्जन्माभिषेके ध्रुव
यत्कीर्त्तिप्रकरा. प्रसस्तुरभितो लोकत्रयी लङ्घितुम् ।
नैव क्वापि कदापि युष्मदपर स्वामी करिष्याम इ–
त्यङ्गस्पर्शनतः प्रणीतशपथास्त नाभिसूनु स्तुमः ॥ १ ॥
पुण्यश्रीसुरभेरभीप्सिततरा चारिं प्रदातु किमु
प्रत्याग्राहरितालिकाङ्कुरततिर्न्यस्ता तव सम्पदा ।
यस्याशस्थलयोश्चकास्ति चिकुरश्रेणी कृपाणी रुचि.
स श्रीमानृषभप्रभु प्रभवतु प्रद्रोग्धुमेनासि नः ॥ २ ॥
वस्तु प्राप्य किमप्यपूर्वमनधा दद्युर्गुरुभ्योऽङ्गजा.
प्रागित्यार्यकुलक्रमानुसरणाद्योऽनर्घरत्नोपम् ।
मात्रे कौशलिका व्यधत्त विविधक्लेशार्जित केवलं
सद्य सद्यतु नाभिनन्दनविभुर्विद्यामविद्या मम ॥ ३ ॥
मामेवैक्षत पूर्वमस्य जननी स्वप्ने गजादीन् पुनः
पश्चादित्यभजद् भवन्तभृषभ सौभाग्यदर्पा ध्रुवम् ।
जातस्थामतया धुरधरतया गत्याजितस्त्याजिता–
हङ्कार· शरणी चकार भगवस्त्वामेव चाङ्कच्छलात् ॥ ४ ॥
त्वा वीक्ष्योभयलोकभोग्यफलद स्व चैहिकर्द्धिप्रदं
पङ्क्ति· कल्पमहीरुहास्तव गुणाधिक्येन संप्रेरिता ।
एकैक निजपल्लव नखमिषात् कृत्वार्चनं त्वत्पदो–
र्मोघं मन्यतया जिन त्वदुदये जग्मुः किलादृश्यताम् ॥ ५ ॥
त्वत्सेवा विनमेर्नमेश्च करतोः पातालपातालस–
त्तोषः खेचरचक्रिता निरवपद्यस्मादसौ निश्चितम् ।
त्वा साक्षात्तदसिद्धयेप्युभयत· सङ्क्रान्तमेक्ष्यानुमां
दृद्या धत्त यदादिमध्यनिधने स्वाम्येव सेव्योऽनयोः ॥ ६ ॥

श्रेयांसप्रतिलम्भितैर्गजपुरे पीयूषपूरोपमैः-
स्त्वोक्षैरिक्षुरसैर्भरेण भरिते नाथ त्वदीयाञ्जलौ ।
चण्डांशुःप्रतिबिम्बितः करतलं प्राप्तः प्रभो केवला-
लोक. पारणयोद्धृते वपुषि ते द्योतिस्म सोसूच्यते ।। ७ ।।
यत् सर्वं महता महद्वच इदं सत्यापयन् वत्सरं
मानः संज्वलनोऽपि बाहुबलिनः पक्षायुरप्यस्फुरत् ।
तत्रास्कन्ददमूढलक्षतरता सार्वज्ञभाजस्तवो-
पेक्षापारमितैव हेतुपदवी कालादिसाचिव्यभाक् ।। ८ ।।
आषाढे त्रिदिवादभूदवतरस्तिष्यां चतुर्थ्यां शिता-
वष्टम्यां बहुले मधोस्तव जनुर्दीक्षा क्षणौ जज्ञतुः ।
कृष्णे फाल्गुनिकस्य तीर्थपतिथावेकादशे केवलं
देवैभिस्तु पवित्रता नवमहैर्नीता विनीतापुरी ।। ९ ।।
पूर्वाह्णे तपसस्त्रयोदशतिथौ शित्यां नगेऽष्टापदे
प्रायैः षड्भिरभीचिभे व्रतभृता पंक्त्या सहस्रैः समम् ।
पर्यङ्कासनि तस्थिवानुपगतस्त्व पूर्वलक्षा चतु-
र्युक्ताशीतिमितायुरव्ययपुरश्रीभर्तृभाव विभो ।।१०।।
जित्वा वा लवणोदधिं निजवपुर्लावण्यलक्ष्मीभरै-
र्ज्योतिर्द्योतिभुजाचतुष्टयचतुश्चक्रीपदेशेन या ।
तस्माद्दण्डपदेऽग्रहीद्ग्रहपुषानुच्चैश्चतुः संख्यकान्
सा त्वद्भक्तिकृतो भनक्ति विपदां चक्राणि चक्रेश्वरी ।।११।।
मामेकाक्ष मुदाहरन्ति मुनयः कस्मादितीव क्रुधा
रक्त लोलतरालितारमुदयच्चक्षु.सहस्रं नृणाम् ।
रक्ताशोकतरुः प्रसूननिकरव्याजेन संदर्शया-
मास व्याहरतो वृषं हृतनतारिष्टोपरिष्टात्तव ।।१२।।
नाहारस्तव संस्कृतोऽजनि गुणैरध्यूषुषो मन्दिरं
व्याहारस्तु सुसंस्कृतोऽजनि गुणैर्महे यतित्वेऽपि च ।

किन्तु द्वावपि मार्दवेन सहितौ सौहित्यदौ द्वावपि
द्वावप्यर्पयतः स्म चामृतसुखास्वाद सदा सेवितु ॥१३॥
दिग्यात्रासु चलद् यदीयपृतनोत्सर्पद्रजो गुण्डित
स्फूर्जत्तूर्यरवाकुलीकृतचतु सिन्धूच्छलद् वारिभि ।
द्यौरव्यन्तिकवर्तिभास्करकरोत्तप्तैं स्वमक्षालयन्
स श्रीमान् भरतस्त्वदङ्घ्रिकमले भक्त्यालिलीला ललौ ॥१४॥
द्रष्टव्यान्तररामणीयकमुदत्क्षेडापहारि स्फुरत्
सौन्दर्यामृतपूर्णयोर्भुजशिर सौवर्णसत्कुम्भयो ।
स्निग्धश्यामलकान्तिपन्नगपुग रक्षाधिकार त्वया
वेल्लन कुन्तलवल्लरीद्वयनिभान्मन्यामहे स्थापितम् ।१५॥
आदौ शिल्पशत द्विसप्ततिकला षष्ठिश्चतुर्भि समा-
युक्ता स्त्रैणगुणा प्रजाहितकृते नाथस्त्वयाविष्कृता ।
उत्पन्ने सति केवले तु सुधिया रत्नत्रय देशिन
स्वाथश्चेतसि गौण एव महता मुख्य परार्थ• पुन ॥१६॥
आरूढ-त कुञ्जर शुचिलसज्ज्ञानक्रियाचामरो
भावारीस्तरसा विजित्य शिरसिच्छत्र त्वदाज्ञा दधत् ।
शिष्याणुस्तव पुण्डरीकगणभृज्जीयात् क्षमाभृत्पति
श्री शत्रुञ्जयभूमिभृद्विरचितो यन स्वनामाङ्कित ॥१७॥
मारिर्वारिहुताशनो द्विरसनः पञ्चानन कानन
शाकिन्य पलभुक्कुल परबल पाटच्चर. सिन्धुर ।
कारागारगरग्रहामयमहीपाला कराला अपि
त्वत्पादस्मृतिमादरान् परवश नेतर्न नेतु क्षमा ॥१८॥
त्वद्देहप्रभया विजित्य कनक रम्यत्ववादस्थले
वर्णाधिक्यचिराधिरूढमिव तत् पानीयमुत्तारितम् ।
नून निष्कमिति प्रथा तदगमल्लोकेऽमुना हेतुना
क पाथ समुदाहृत तदभितो निष्क्रान्तमस्मादिति ॥१९॥

दीप्राक्षीयितनिश्चयव्यवहृतिर्भाति क्रियाज्ञप्तिस-
द्दंष्ट्राढ्यो नयकेसरप्रसरवान् स्याद्वादपुच्छच्छटः ।
प्रोद्यद्युक्तिनखः कुतीर्थिकरिणा जैत्रः स्फुरद्देशना-
जिह्वः सूरिमतिस्थलीषु विचरन् सिद्धान्तसिंहस्तव ॥२०॥

दिव्यालङ्कृतिभूषितं द्युपतिना क्लृप्ताभिषेकोत्सवं
त्वा वीक्ष्योद्गतविस्मयैर्मिथुनकैर्न्यस्तानि हस्तद्वये ।
पादावेव तवासिचन् पुटकिनी पत्राणि वा पूरिता-
न्याकारैक्यजपङ्कजभ्रमभुवः सा जात्यरागादिव ॥२१॥

यद्राज्य भरतेश्वराय ददुषी मह्यं तु निर्ग्रन्थता
तुष्टिस्ते ननु वल्लभोऽस्मि तव तन्मन्ये सुतादप्यहम् ।
सार वस्तु विभु. प्रियाय हि दिशेद्राज्य स्वसार यत-
स्तत्त्यक्त्वा तृणवद्भवानचकल नैर्ग्रन्थ्यमेव स्वयम् ॥२२॥

सान्द्रामोदविलासवासितदिगाभोगा नभोगामिभि-
र्मुक्तासुस्मितपुष्पवृष्टिररुचद्वयाख्यानभूमौ तव ।
त्वत्सत्रासजुषः प्रसूनधनुष· स्रस्तेव हस्तोदरात्
प्रासूनीशरसंहतिस्त्रिभुवन चक्रे यया प्राग्वशम् ॥२३॥

वाच्यावाच्यसदृग्विरूपसदसन्नित्यक्षयित्वात्मकं
सद्द्रव्यास्तिक-पर्ययास्तिकनयस्याद्वादमुद्राङ्कितम् ।
विश्व वस्तुनयप्रमाणघटयोत्पादव्ययध्रौव्ययुक्
त्वं ब्रूषे स्म सता यथा कुनयिभिः स्वप्नेऽपि नाप्त तथा ॥२४॥

यद्भानुर्दिनमात्रदीप्तिकलिता नक्तंदिवद्योतिना
स्पर्द्धा बन्धमय व्यधत्त भगवन् सार्द्धं प्रतापेन ते ।
गुप्त गुप्तिगृहे व्यधारि विबुधैर्भास्वन्मणीकुट्टिम-
व्याख्योर्वीप्रतिबिम्बकैतनधरस्तेनागसा मन्महे ॥२५॥

त्वामुच्चैरनमाननक्रमकरं शौर्याश्रयं मत्सर-
त्यक्तं सज्जनदत्तरङ्गमुदयन्मुक्तालयश्रीजुषम् ।

त्राणार्थं भुवनेश्वरं बहुलहर्यन्वास्यमानं जिना–
द्वार्यापत्सतकोटिपानचकितोऽभ्येति क्षमाभृद्गणः ।।२६।।

मुक्ताहारतया तवाब्दमधिक योऽभूद्विहार. क्षितौ
मुक्ताहारतया सहृद्युपदधे चारित्रलक्ष्म्या निजे ।
दुर्मेधान्यपि वत्सरेण भवता " जन्मदानैकधी–
रादाने पठिनीकृतो निजकरो दानप्रवृत्त्यै सताम् ।।२७।।

प्राप्त' पाणिरयं प्रतिग्रहमहाविद्याब्धिपारं प्रभो–
रद्येति प्रमदप्ररूढपुलकाकूरागश्रृङ्गारिभि ।
भावत्कादिमपारणावधिदिने भक्त्यासुरैर्भासुरैः
प्रादुर्भावितपञ्चदिव्यमिषतश्चक्रेऽत्त एवोत्सवः ।।२८।।

भेजुर्भद्रकता मृशोपि भवतो यन्मौनिनोपीक्षणा–
द्वीजाधानमभूच्च तेषु भवत. सद्देशना भो विना ।
सर्वोप्येष तवैव दैवतस्कृतश्लोकत्रिलोकप्रभो-
माहात्म्यातिशय सुधारसमय प्रध्वस्तपापोदय. ।।२९।।

त्वच्चैत्यप्रणिनसया तव पदन्यासैः पवित्रस्य ये
देवाष्टापदभूभृतोऽष्टपदिकाः क्रामन्ति पद्भ्या नराः ।
अष्टानामपि कर्मणा ददति ये पादं शिरस्सु ध्रुवं
जायेरन्नचिराच्च निर्वृतिपुरी साम्राज्यलक्ष्मीभुज. ।।३०।।

निर्वेदोऽ[प्य]सि नाभिभू' स्मरहरोऽप्यालम्बसे नोग्रतां
कंस नो पुरुषोत्तमोऽपि कलयस्यार्योऽपि नार्याद्दृत. ।
त्वं सोमोपि यमी कृतान्तजनक. श्रीदोऽपि वित्तापहृत्
जायास्तीर्थपते चिरायवि[ग]तच्छद्मापि मायानिधिः ।।३१।।

श्रीनाभेय विभु पदाननद्भु त्रैलोक्यरक्षणी प्रभुं
नीरन्ध्रावृजिनप्रभुं कृतशुभ श्रेय. श्रियो वल्लभम् ।
स्तुत्वेत्यादिकृतं मयार्जिसुकृतं यत्तुङ्गताऽलंकृतं
भव्यानामसमः समुज्ज्वलतमस्तेनास्तु सौख्यद्रुमः ।।३२।।

सुधीजनश्रोत्रसुधासुगन्धः शार्दूलविक्रीडितवृत्तबन्धः ।
सतामयं भावरिपुद्विपेषु शार्दूलविक्रीडितमातनोतु ॥३३॥
इति श्रीयुगादिदेवस्तवनं श्रीजिनप्रभसूरिविरचितम् ॥
[अभय जैन ग्रन्थालय ९५२१ पृ० १ ले० प्र० "सं० १४८६ वर्षे"]

●

(५) चन्द्रप्रभ-चरित्रम्

चंदप्पह ! चंदप्पह !, पणमिय चरणारविंदजुयलं ते ।
भविय सवणामयपवं भणामि तुह चेव चरियलवं ॥ १ ॥
धायइसंडे दीवे अहेसि तं मंगलावईविजए ।
मुणिरयण ! रयणसंचयपुरम्मि सिरिपउमनरनाहो ॥ २ ॥
सुगुरुजुगंघरपासे निक्खमिउ चिणिय तित्थयरनामं ।
तुममुप्पन्नो पुन्ननिहि ! वेजयते विमाणम्मि ॥ ३ ॥
तत्तो इह भरहद्धे चविउं चंदाणणाइ नयरीए ।
महसेनराय-पणयिणि-लक्खणदेवीइ कुच्छंसि ॥ ४ ॥
चित्तासियपचमि निसि तं चउदससुमिणसूइओ नाह ! ।
अवयरिओ तिन्नाणी सयलिदनिवेइयवयारो ॥ ५ ॥
पोसासियबारसि निसि विच्छियरासिमि सामि ! सोमंको ।
कासवगुत्ते जाओ तं . सारयससहरच्छाओ ॥ ६ ॥
छप्पन्नदिसाकुमारी-चउसट्ठिसुरिंदविहियसक्कारो ।
उज्जोइय-भुवणयलो तुह जम्ममहो य सक्कउहो ॥ ७ ॥
जणणी पइ गब्भगए अकासि जं चंदपाणदोहलयं ।
चंदप्पहु त्ति तं तुह विक्खायं तिहुयणे नामं ॥ ८ ॥
सङ्खधणुसयपमाणो अढ्ढाइय पुव्वलक्खकुमरत्तं ।
सङ्ढे छपुव्वलक्खे चउवीसंगे य रज्जसिरिं ॥ ९ ॥
परिवालिय लोयंतिय-विबोहिओ वरिसकयमहादाणो ।
सिविया मणोरमाए सहसंबवणम्मि छट्ठेणं ॥१०॥

नरवइसहस्समसहिओ चरमवए चरणमेगदूसेण ।
पोसस्स बहुलतेरसि अवरण्हे ते पवज्जेसि ॥११॥
तक्खणमणनाणजुओ अकासि त पउमसडनयरम्मि ।
वयबीयदिणे परमन्न-पारण सोमदत्तघरे ॥१२॥
वोसट्ठचत्ततणुणो नानादेसेसु विहरमाणस्स ।
भयव त मासतिग अहेसि छउमत्थपरियाओ ॥१३॥
सहसववण पडिमाठियस्स छट्ठेण नागतरुहिट्ठे ।
तुह फग्गुणाइसत्तमि पुवण्हे केवल जाय ॥१४॥
अहसढढदुल्लक्खमुणी वीससहस्सूण-लक्खचउ समणी ।
तिनवइ गणा गणहरा अढढाइयलक्खवरसढ्ढा ॥१५॥
इगणवइसहस्सअहिया लक्खा चउरो गुणढ्ढसढ्ढीण ।
इअ गुणरयणमहग्घो जाओ तुह चउव्विहो सघो ॥१६॥
दा-दस-चउदससहसा चउदसपुव्वधर-केवलि-विउव्वी ।
अट्ठमहस्सा पत्तय-मोहि-मणपज्जवनाणी ॥१७॥
वाईणमत्तसहसा छसयग्गा एस तुब्भ परिवारो ।
तह तुच्छे दुच्छयरा विजओ जक्खो सुरा भिउडी ॥१८॥
अणुराहरिक्ख चउकयकल्लाण गएसु चउजम घम्म ।
चउवीसगुण मय पज्जाउपुव्वलक्ख ते ॥१९॥
दसपुव्वलक्खमव्वाउ पालिउ मुणिमहस्ससहिओ त ।
करिउ णवोपगम मासियभत्तेण सम्मेए ॥२०॥
उदहीण नवकाडो सएसु विगएसु जिणसुपासाओ ।
भद्दवयकसिणसत्तमि सिव गओ सवणरिक्खम्मि ॥२१॥
इय तुह सुचरियलेस थो उ पत्थेमि तुममिम चेव ।
कुण गुणनिहि ! चदप्पह ! जिणप्पभत्ताण परमपय ॥२२॥

इति श्री चन्द्रप्रभस्वामिचरित्रम् ॥छ॥

[श्री पुण्यविजयजी सग्रह, नबर २३४८ पत्र ५ साइज ११½" × ४¾" शुद्ध ले० १६ वी]

[अभय सिंह ज्ञान भडार पो० १६ ग्र० २१८ प० ११०-१११] ●

(६) पारसी भाषा चित्रकेण

शान्तिनाथाष्टकम्

[१]

अजि कुद काफु जुनूवि शहरि हथिणापुरगोवनि
वजिपातसाहि विससेणु खिम्मिति ओ राया जेवनि
कौम्यो ऐरादेवि तविहि सीतारा मानइ
जुजि यकि सूहरि षास दिगरि हिम पियरा दानइ
आ दिगरि रोजि षुफ्लसि षुसे दर निगार रवानें निषो
छारिदह वाविअह सदिवइ आषरि सौ विनइ हमो।

[२]

नेकिस्पे नरगाउ पीलि दरियाउ निशाना
वा नर्गिसि पुरु हौदु कुम्कु उजुलू सदियाना
शमस कमर पुरु सुवो दिगरि मोंहरिसा तूदा
कसरि अजनित्फिमारिष्टिगा सेरि आतसि रुपसिदा
गह सुबुहु सुदा वेदार सुदु, रल्फु गुल्फु वरिसूइ षो
माविनी ष्वाव दीदौमि सौ चि सवइ षोदिह काम गो।

[३]

पातसाहि विससेणु पेसि अइरादिवि गोयइ
पिसरि तु हमची सवइ मुलुकि दुनिए उर जेवइ
विस्नी दो चो चिनी कवी षुसि सुदु दिलि षासा
दमलु नेकि परवरइ निको सीरति मे वासइ
चू हल्फु रोजि नूहु माहु सुदु, शव दुपास दरि षुल्फि गह
विहतरी वल्फि तालिहि निको, पिसरि जादु उ हम चु मह॥

[४]

दरं सहरि मक्कूर राख्सि शादी इवि कउदनि
कुव्वा जाइ पि जाइ तवल नुहु गाना विजनि
मीर मुकद्दम साहि दरां शादीहरिक्यामा
पातसाहि विससेणि दादु हमगा रा जामा
द्वाज्द हमि रोजि सुदु नामि उर, संतिनाथु ब्वामदि महं,
बुजुरुकु सुदे सिस्तो तख्ति, मुलुकु विरानइ दरिजहा।

[५]

गौहरि पाक दुहल्फु गंजि नुहु जरि पेरा वा
फंदलि कुननि फेरिष्टिगा शाजूदह जारि हमा वा
सस्तुष्यरि हज्जारि कौमि दरि हमि निकोतरि
लख हष्टादु छहारि पीलि व अस्पि व अस्तरि
शशिनवदु क्रोडि दिहहा मिही कियासि पयादा हम चुनी
अउलाति सी उदु हजारि ओ राया पि हम व हम दुनी ॥

[६]

रोजि दिगरि दानिस्तु नेसि हिचि दरी जमाना
हरि चि ईसाति नुमाइ अवियक साति न माना
सदका दादा गिरिल्फुजरी दीनार न नुकरा
यक कुरोडि लख हष्टि दिहइ हररोजि कदरे
से सदु व हष्टि हष्टा कुरोडि हष्टा लख यकि सालि दादु
ई चुनी मुलुकि दौलति चिनी, तरकि गिरिल्फा सेष सुदु ॥

[७]

हल्फु तवक आसमा जमी हूर हल्फु मुदौवारी
वीनइ हमचु चरागु हचि दरि दुनी मुनौवरि
मे दानै दरि गैवि हमा मुस्किल हल विकुनै
रहनुमाई गुमरहा तवह वजगारी विजनइ

ई चुनी सक्लित आषरि उमरि दरि सवावि साल्हा सुदु
अल उमरि चूकि पि तमामि सुदु, मिष्टि रल्फु एमिन्ना सुदु ।

[८]

नामि तुष्वामदि संतिनाह हरि कि से कि गोयदु
हमा चीजि उर सवह फुल्लुइव्वुनो बुगोयदु
अजि सेवस्तां गहिल कुंउ पंज्या उ सलामति
खाना विरसादारि पि हम इज्जति जरि दौलति
मिजुम्लै गनहा वकसिमे बुकु रहमलुरुफु इं कदरि
अजि अदावि दुनीए निगहदारि, मरा भिष्टि वरियो बुवरि ।

[९]

अजि तेरीष मुहम्मद सन खमस व तिसईन सित्त मिय ।
फितिरीदी शशिमिसरा कउदामु दौलती वामी ।।
इति पारशीभाषा चित्रकेण श्रीशान्तिनाथाष्टकम् ।
[अभय सिंह ज्ञान भंडार, पो. १६ प्र. २१८. पृ. १४३-१४२. ले. १६ वी]

•

(७) पाश्र्वस्तव:

श्रीपार्श्वः श्रेयसे भूयादलिताल्समानरुक् ।
अनन्ता संसृतिर्येन दलिताऽल्समानरुक् ।। १ ।।
अज्ञा न मे दुरध्वान्तकारिणस्त्वद्गुणानलम् ।
अज्ञानमेदुरध्वान्त--भानोऽभिष्टोतुमीश गीः ।। २ ।।
तथापि नुन्नोन्तर्भक्तिरंहसा महितायते ।
गुणलेशं स्तवीम्युच्चैरंहसामहिताय ते ।। ३ ।।
अपारे कामरागेण भ्रान्तोस्मि भववारिधौ ।
अपारेका मरागेण दर्शनेन विना तव ।। ४ ।।

प्राप्येदानी दर्शनं ते नरामरसभाजनम् ।
स्पृहयामि प्रभो राज्यं न रामरसभाजनम् ॥ ५ ॥
नेच्छा च मेऽप्सरोलोके सकाममनसं प्रति ।
रुचये मुक्तिकान्तापि सका मम न सम्प्रति ॥ ६ ॥
पुण्योदयादक्षमया मुक्तं त्वद्दर्शने सति ।
पुण्यो दयादक्ष मयास्वात्माय परिनिश्चत ॥ ७ ॥
जिनास्यसारससार किं नेदानीं वराक रे ।
जिनास्यसारसं सार-मद्य यद्वीक्षतं मया ॥ ८ ॥
धन्यास्ते प्रणतास्तुभ्य वासवाऽमेयशक्तय ।
त्रातुं जगत सर्वगुणा-वास वामेय शक्त ये ॥ ९ ॥
कल्याणगिरिधीरे मे त्वयि चेत परमेश्वर ।
कल्याणगिरि धी रेमे करस्था सवसम्पद ॥ १० ॥
तवाङ्गे लीनदृष्टित्वा-दूरीकृततमालभे ।
जीवन्मक्तिदशा कर्हिदूरीकृततमा लभे ॥ ११ ॥
कमलायतनेत्राभि-रक्षुब्धमनसस्तव ।
कमलायतनेऽत्राऽभिरमेता सदृशो मुखे ॥ १२ ॥
दृष्टे तवमुखे प्रीत्या रजनीश्वरकोमले ।
न निर्वाणपदे स्यास्तु-रजनीश्वर कोऽमले ॥ १३ ॥
अक्षोभ गभीरहित तवागाध्य वच प्रभो ।
अक्षोऽभग भीरहित निष्कर्मा लभते पदम् ॥१४॥
पीत्वा वचोऽमृत तेऽस्तकलि कामधुगर्हितम ।
मेने जनै स्वर्गतरो कलिकामधुगर्हितम् ॥१५॥

क्रमतामरसद्वन्द्व सेचने तव सादरम् ।
क्रमतामरसद्वन्द्व मामकीन मन सदा ॥१६॥
श्रियस्तवागमो दद्यात वितता नयशोभित ।
यस्तवेव विदोषत्वाद वितताम यशोऽभित ॥१७॥

अलं ते पदराजीवाऽभ्यर्चनैकरताः प्रभो ।
अलंते पदरा जीवा मुक्तिदुर्गस्वयं ग्रहे ॥१८॥
वशीचक्रे भवान् मुक्तिमहिला छिन्तविग्रह ।
स्वैर्गुणैस्त्रातराकालमहिलाञ्छितविग्रह ॥१९॥
सदानमस्तपापाय मत्या जितवते गजम् ।
सदानमस्तपापायमेघश्यामाङ्गकाय ते ॥२०॥
यस्त्वामेकाग्रधीः स्तौति देवपद्मावतीनतम् ।
इष्टार्थलाभैरऽचिरादेव पद्मा वतीन तम् ॥२१॥
सदानं दतिना मोघमाप्य चाश्वीयमत्र के ।
सदा नन्दंति नाऽमोघ त्वद्भक्तिकृतनिश्चया· ॥२२॥
ये नम्रास्त्वयि वन्ध्यार्मदनागविराज ते ।
तेषा च रूपर्द्धिरतिमदना गवि राजते ॥२३॥
अहीनेन सदारेण सेव्यमान कृपानिधे ।
अहीनेन सदा रेण दूनं पाह्यातरेण— ॥२४॥
हित्वा तरारीस्त्वदाज्ञाविद्यास्मरणभूषिता· ।
जयलक्ष्मी वय नाथ विद्यास्म रणभूषिता ॥२५॥
नमो हराजेनब्रह्मशक्रादीनपि जिष्णुना ।
न मोहराजेन ब्रह्मयोनये विजिताय ते ॥२६॥
यः स्यात् त्वत्पादपद्मार्चारुचिरंजितमानसः ।
सर्वत्र लभते सौख्यं रुचिरं जितमान सः ॥२७॥
सर्वकषायमोहेलापतये द्रुह्यतस्तव ।
सर्वं कषायमो हेलाग्रामराहूपमं वच. ॥२८॥
सरस्वती पातु तवोपदेशामृतपूरिता ।
यत्प्रभावाज्जनैर्मुक्तिपदेशामृतपूरिता ॥२९॥
कामदे हतमोहेऽलिनीलवर्णे नतास्त्वयि ।
कामदेह तमोहेलितुल्ये नाऽश्नुवते श्रियम् ॥३०॥

स्वर्गायति यशो विश्वप्रकाशं ते मरीचयः ।
यस्याग्रे नैव शीतांशोः प्रकाशन्ते मरीचयः ॥३१॥
दर्पकोपरताऽऽयासच्छिदे मुनिगणाय ते ।
दर्पकोपरतायास स्पृहयालुर्नकः खलु ॥३२॥
कल्याणाना पंचतयं मुद्यत्कुवलयद्यु ते ।
कस्य न प्रीतये जातमुद्यत्कुवलयद्युते ॥३३॥
कमलाक्ष तपस्त्यागश्रीभुजग जिनेश्वर ।
कमलाक्षतपस्त्या गस्तिमिरार्कपुनीहि माम् ॥३४॥
त्वदाननं जगन्नेत्रमुदारामघनोदकम् ।
निर्मिमीता मम प्रीतिमुदारामघनोदकम् ॥३५॥
यैस्त्व क्षतो मन कृत्वा प्रमदाभोगभागिनः ।
भवेयुर्दिवि ते दिव्यप्रमदाभोगभागिनः ॥३६॥
नाथ वाऽरितमोहंस मुक्तशर्मापि दुर्लभम् ।
नाथ वारितमोहसत्त्वेषामकलुषात्मनाम् ॥३७॥
युग्मम्

आनन्दतो यदऽच्छाय जन्तुजातं ननाम ते ।
आनन्द तोयदच्छाय मुक्तिश्रीस्तत्र रागिताम् ॥३८॥
येन त्वदागमः स्वामिन् स्याद्वादेनोपराजित ।
निर्णीत. स कुतीर्थ्याना स्याद् वादे नो पराजितः ॥३९॥
स्मरामि त्रस्यते भव्यसमूहायाऽभयप्रदम् ।
स्मरा मित्रस्य ते भव्यश्रियां धाम पदद्वयम् ॥४०॥
भव्यहृत्पक्षिणा वासक्षणदानाय काननम् ।
त्वा पर्युपासते धन्या. क्षणदानायकाननम् ॥४१॥
जननव्यसनाधीर श्रीवामेय भवे भवे ।
जननव्य सना धीर भूयाः स्वामी त्वमेव मे ॥४२॥
त्वद्गुणस्तुतिरंऽभोदकान्ते यमकहारिणी ।
भव्यानवतु विज्ञाना कान्त्येयमकहारिणी ॥४३॥

इति प्रभो ते स्तवनं पठन्ति ये मुक्तिश्रियः प्रेत्य लुठन्ति ते हृदि ।
जिन प्रभा चार्य्यमभाति शायिनी जागर्ति तेषामिह पण्डितव्रजेः ॥४४॥

इति श्रीपार्श्वनाथ स्तवनम् ॥

[अभय जैन ग्रन्थालय ९५२६ प० १. ले० १६वीं शुद्धतम]

●

(८) फलवर्द्धिपार्श्वस्तवः

जयामल श्रीफलवर्द्धिपार्श्व पार्श्वस्थनागेन्द्र पृथुप्रभाव ।
भावल्लरीचेष्टितदिग्वितान तानर्चयामः स्तुवतेऽत्र ये त्वाम् ॥ १ ॥
दूरस्थितोऽपि स्मृतिवर्त्मना त्व–मारोपितः सन्निहितत्वमुच्चैः ।
पिपर्षि चिन्तामणिवन्नराणां परः सहस्रा अभिलाषभङ्गी ॥ २ ॥
दुरुत्सहम्लेच्छहत प्रतापी कृतान्यतीर्थे कलुषैककोशे ।
कुतूहलोत्तालहृदस्त्वयैव कलौ कलामाकलयन्ति सन्त. ॥ ३ ॥
विस्फोटकश्लेष्मसमीरपितृ–लूताज्वरश्चित्रभगंदराद्याः ।
त्वद्ध्यानसिद्धौषधबुद्धबुद्धि न व्याधयो बाधितुमुत्सहन्ते ॥ ४ ॥
शुकच्छदाभैस्तव देहभासि—रालिङ्गिताङ्गीः प्रणता विभान्ति ।
सवीय वर्मा य समाहवो यो—धताः समं मोहमहीभुजे वा ॥ ५ ॥
केऽन्यसामान्यकृपाकृपाणी छिन्नातुरार्ति स्पृहणीयमूर्तिम् ।
त्वा मूर्भुवः स्वस्त्रयगीतकीर्ति सवासनोल्लासमुपासते न ॥ ६ ॥
सिंहोभ वैश्वानरवैरिवार दस्यूदकाशीविषजन्यजन्यै. ।
वैतालभूपालभवैश्च कश्चिन्न स्पृश्यते नान्यभयैः श्रियस्ताम् ॥ ७ ॥
त्वदाननेन्दुद्युतिसंप्रयोगाद् विवेकिनां लोचनचन्द्रकान्तौ ।
प्रमोदवाष्पोदकबिन्दुवृन्द—निष्पन्दभाजामुचित्तं भवेताम् ॥ ८ ॥
पश्यन्ति नश्यत् कलिकालखेलं निलिम्पलोकायितभूमिगोलम् ।
हर्षाश्रु वर्षामृतसिक्तगात्रा यात्रा महस्ते महनीयभाग्याः ॥ ९ ॥

सप्तोपरिष्टात्फणभृत्फणास्तै सता प्रवेशप्रतिषेधनाय ।
एकाग्रषण्णा नग्कावनीना द्वारापिधाना इव भान्ति सज्जा ॥१०॥
तवाङ्गरोचिर्जलदै कराह्विनखाशुशपास्फुरितै परीते ।
शचीशचाप रचयन्ति चित्रा फणामणीना घृणयोऽन्तरिक्षे ॥११॥
तव क्षण नोज्झति पादपद्म पद्मावती तावदिय निरूढि ।
तद्यस्य चित्ते वसति क्रवसा सान्निध्यमस्या तनुते न चित्रम् ॥१२॥
भव्याश्रभीक्ष्ण भवत प्रभावै—श्चमत्कृत यद्वनु ते शिरासि ।
अमान्तमन्त प्रमद शरीरे समापयन्ते तव वश्यमेते ॥१३॥
तवास्यपद्माद्भूरतो निपीय निपीय लावण्यरसोतिलौल्यान ।
भव्यात्मना लोचनचञ्चरीकै–र्मुदष्कदम्भादि न वम्यते न ॥१४॥
अहो मुखेन्दुस्तव कोऽपि दोषा निहन्ति यो यत्र विलोकिते च ।
पद्मानि काम दधति प्रबोध भवेन्न दीनोप्यपचीयमान ॥१५॥
जयत्यपूर्वोभवदाननेन्दुरालोकमात्रेण जिनेश यस्य ।
भवाम्बुराशि परिशोषमेति विकस्वरी स्यु–र्नयनाम्बुजानि ॥१६॥
तवापि माहात्म्यकलाविशेषा केषाचिदुच्चैस्तरपातकानाम् ।
मनासि नाथ व्यथयन्ति दन्ति-दन्तानिवाशुप्रकरा सुधाशोः ॥१७॥
घटा करीणामिव मिहनादात् प्रालेयपातादिव पङ्कजिन्य ।
त्वद्ध्यानमात्रादपयान्ति पीडा, प्रणेमुषा देहमन समुत्था ॥१८॥
अशान्तिभाजामपि शान्तिशान्त-व्यापादमापादितनेत्र शैत्यम् ।
चैत्य तवा तविमानमान–मानन्दयेत्क न समेतमेतन् ॥१९॥
तवैव वैवस्वतशासनाति-क्रान्तस्य कान्तस्य विमुक्तलक्ष्म्या ।
भवे भवेदास्यपद प्रपद्ये यथा तथा नाथ मयि प्रसीद ॥२०॥
इत्थ श्रीफलवर्द्धिपार्श्विभुवने विश्वेन्दिरा नर्त्तकी
नाट्याचार्यजिनप्रभ जनभुजामीशेन सेव्यक्रम ।
श्रेय श्रोपरिरम्भ सभवसुखव्याघातबद्धोद्यम
विघ्नौघ विनिगृह्य मह्यमुदय विश्राणय श्रेयसाम् ॥२१॥
इति श्रीफलवर्द्धिपार्श्वनाथस्तोत्र समाप्तम् ॥
[अभय सिंह ज्ञानभडार पोथी १६ ग्र० २१८ । प० १५९–१६०] ●

(९) फलवर्धिपार्श्वजिनस्तवः

श्रीफलवर्द्धिपार्श्व-प्रभुमोंकारं समग्रसौख्यानाम् ।
त्रैलोक्याक्षरकीर्तिं लक्ष्मीबीजं स्तुवेऽर्हताम् ॥ १ ॥
नमिऊण तुह पयजुयं भत्तीए पासनाह जोइ नरो ।
सिहणिज्ज संनिहाणो विसहरवसहस्स धरणस्स ॥ २ ॥
तुह उवरि जिण फुरंता फणिफणरयणिंकुराविरायति ।
पाववणडहणपजलिरज्झणानलफुडफुलिंगुव्व ॥ ३ ॥
मायाबीयं कम्मं खविउ पत्तस्स परमपयरज्जं ।
सिरिइंदविंदवंदिय अरहंत नमो नमो तुज्झ ॥ ४ ॥
इय मंतसरूओ तं जियचितारयणकप्पतरुदप्पो ।
हियरकुसेसेकोसे निवसंतो पूरसिमणिट्ठं ॥ ५ ॥
कलिकुंड-कुक्कडेसर, ससेसर-महुर-कासि-अहिछत्ता ।
थंभणय-अजाहर पवर नयर करहेड नागदहो ॥ ६ ॥
सेरीसअ-तरिरक्खमिणिचारुप्फलिपुरी पमुहा ।
दिट्ठा तित्थविसेसा पइ पहु दिट्ठे गुणगरिट्ठे ॥ ७ ॥
तुह नामक्खरजावेण पडिहया जंति विलयमुवसग्ग ।
किं गरुडपक्खवाएण पियाऊससंति फणी ॥ ८ ॥
विक्रमवर्षे करवसुशिखिकु १३८२ मिते माघवासितदशम्याम् ।
व्यधित जिनप्रभसूरिस्तवमिति फलवर्द्धिपार्श्वप्रभोः ॥ ९ ॥

इति श्रीफलवर्द्धिपार्श्वस्तवन समाप्तम् ।

[अभयसिंह ज्ञान भंडार पोथी १६ ग्र० २१८ पृ० २२१]

षड्ऋतुवर्णनागर्भित-

(१०) पाश्र्वस्तवः

असमसरणीय जओ निरंतरामोय सुमणमहमहिओ ।
भमरहिओ पियसुहओ जय इव संतुव्व पासजिणो ॥ १ ॥
परिवड्ढियभूमियसो अहराई उवचाया वचइकरणे ।
बभपहतत्तभूमी पासजिणो जयइ गिम्हु च ॥ २ ॥
पयडियविज्जुज्जोओ विरइय मे हुन्नइ हरिपमोओ ।
नद उदयाभिरामो पहुपासो पावसुव्वचिरं ॥ ३ ॥
उवसंतपकमग्गं विमलियभुवणासय अमलविसय ।
सियपक्खाणदयरं सेवह सरयं व पासजिण ॥ ४ ॥
परमहिमाकपिय जय जियभुवणाभोगसुहयर विमोह ।
निव्वाणलयघरारुह जयसि तुम पास हेमत ॥ ५ ॥
खवियारविंदवारो सयलागमपत्त गणहरो जयइ ।
सिसिरुव्व पासनाहो तण तेयप्पसर हरियासो ॥ ६ ॥
रिउछक्कवं न गेण जिणपहसूरीहिं संथुय पासं ।
जो सरइ हुति सययं छावि रिऊ तस्स अणुकूला ॥ ७ ॥

इति षट्ऋतुवर्णनागर्भितं श्रीपाश्र्वस्तवनं समाप्तम् ।
[अभयसिंह ज्ञान भंडार पो० १६ ग्र० २१८ पृ० २२३-२२४]

●

उवसग्गहरस्तोत्रस्य समग्रपादपूर्तिरूपं

(११) पाश्र्वजिनस्तोत्रम्

पणमिय सुरनरपूइया, पयकमल पुरिसपुंडरीयपासं ।
मथवण भत्तिचलणो भणामि भवभमणभीमभणो ॥ १ ॥

उवसग्गहरं पासं पणमह नट्ठट्ठकम्मदढपासं ।
रोसरिउभेयपासं विणहियलच्छीतणयवासं ।। २ ।।
जं जाणइ तेलुक्कं पासं वंदामि कम्मवणमुक्कं ।
जो झाइऊण सुक्कं झाणं पत्तो सिवमलुक्कं ।। ३ ।।
विसहरविसनिन्नासं रोसगइंदाइभयकयविमाणं ।
मेरुगिरिसन्निकास पूरिअआसं नमह पासं ।। ४ ।।
मरगयमणितणुभासं मंगलकल्लाणआवासं ।
टालियभवसंतावं थुणिमो पासं गुणपयासं ।। ५ ।।
विसहरफुलिंगमंतं सच्चं निच्चं मणे धरिज्जं तं ।
कुणइ विसं उवसंतं भवियाईय मुणह निब्भत्ता ।। ६ ।।
पयपणयदेवदणुओ कंठे धारेइ जो सया मणुओ ।
सो हवइ विमलतणुओ नामक्खरमंतमवि अणुओ ।। ७ ।।
तस्सग्गह रोगमारी पराभव न करेइ दिसभारी ।
जो तुह सुमरणकारी संसारी पत्त भवपारी ।। ८ ।।
तस्सइ सिज्झइ काम दुट्ठजरा जंतिउवसामं ।
सथुणइ जोयकामं अभिराम तुज्झ गुणगामं ।। ९ ।।
चिट्ठउ दूरे मंतो जो कायइ निच्चमेव एगंतो ।
तुह नाम मसंभंतो सो जाइ लच्छिमइभंतो ।।१०।।
न डसइ दुट्ठभोई तुज्झ पणाभो वि बहुफलो होइ ।
तुह नामेण वि जोई न हवइ न पराहवइ कोई ।।११।।
नरतिरिएसु वि जीवा भमति नरपयकायरा कीवा ।
सामि जिण समयदीवा जो हि तुह न नामिया गीवा ।।१२।।
रिद्धि आहेवच्चं पावंति न दुक्खदोगच्चं ।
जे तुह आणा सच्चं पालंती भावओ निच्चं ।।१३।।
तुह सम्मत्ते लद्धे जीवेण हवइ सासए सिद्धे ।
अणुवमतेयसमिद्धे अणंतसुहनाणसंबद्धे ।।१४।।

तुह सुरनरवरमहिए **चिंतामणिकप्पपायवब्भहिए ।**
पयकमले मलरहिए मइ वसलोव सड मह सुहिए ॥१५॥
पावंति अविग्घेण जीवा जइदुट्ठदोसवग्गेण ।
न मडिज्जतिय सिग्घेण भवपार विहितविग्घेण ॥१६॥
सासयसुक्खनिहाण **जीव, अयरामर ठाण ।**
लब्भति तुह पयाण जेसि वट्टइ मणे झाण ॥१७॥
इय सथुओ महायस कित्ति दित्ति धिय च महपयास ।
वयणस्य वि जिय पास निन्नासियदूरिय हयअयस ॥१८॥
कलिमलभयरहिएण **भत्तिब्भरनिब्भरेण हियएण ।**
थुणिओ हिय सहिएण मए तुम कम्मविहिएण ॥१९॥
ता दिव विज्जवोहि उवेमि ज मायमि तुह गेहू ।
कय पावस्सय सोहि कुणसु भवारणभवणोहि ॥२०॥
अवगय पवयणनिव्वद **भवे भवे पास जिणचद ।**
तुह पयपकयमयरद भवभसलत्त भवउ मह वद ॥२१॥
सिरिभद्द**बाहुरइयस्स जिणपहसूरिहि** म सपहाव ।
सथवणस्म समग्गस्स विहिय विवुहाणय पयस्स ॥२२॥

इति श्रीउपसर्गहरस्य स्तवन सपूर्णम् ।

[सवत् १७६४ वर्षे मिती श्रावण वदि १३ दिने लिपी कृत ॥ प० जीवराजवाचनार्थं ॥श्री ॥ अगरचदजी लिखित प्रेस कॉपी के आधार से ।

•

(१२) तीर्थमालास्तवः

चउवीसपि जिणिदे सम्म **नमिऊणाइसरणत्थ ।**
जत्ताऽऽराहिय तित्थ नाम सकित्तण **कुणमह ॥ १ ॥**

सेत्तुंज-रेवय-ब्बुय तारण-सच्चउर-थंमणपुरेसु ।
संखेसर-फलवद्धी मरूयच्छाएसु जिणा णमिया ॥ २ ॥
साकेय सत्ततित्थी रयणपुरे नागमहिय धम्मजिणो ।
उज्जेणी खउहंसे चक्केसरि उवरि रिसहजिणो ॥ ३ ॥
सावत्थि संभवपहु कोसबिपुरि पउमपहसामी ।
सीयलकुंथु-पभागे पासजिणो कन्नतित्थमि ॥ ४ ॥
पास-सुपासा वाणा-रसीय पाडलपुरम्मि नेमिजिणो ।
चंदापुरीय चदप्पहो य गंगानईतीरे ॥ ५ ॥
काकदि पुप्फदतो कंपिल्लपुरम्मि विमलजिणचदो ।
वैभार नग य देवा मुणिसुव्वयवद्धमाणाई ॥ ६ ॥
खत्तियकुंडग्गामे पावा नालिंद जभियग्गामे ।
सूयरगामि अवज्झा विहार नयरीय वीरजिणो ॥ ७ ॥
मिहिलाए मल्लिनमी उसभजिणो पुरिमतालदुग्गम्मि ।
चंपाइ वासुपूज्जो नेमिजिणो सोरियपुरम्मि ॥ ८ ॥
सिरिसंतिकुंथुअरमल्लि-सामिणो गयउरमिपुरमहिया ।
अहिछत्त महुर पासो बहुविहमाहप्पभावा सो ॥ ९ ॥
भद्दिलपुर सीहपुरऽट्ठावय सम्मेयसेलपमुहाइ ।
तित्थाइं बदियाइ निक्केवलभावजत्ताइं ॥१०॥
एए तित्थविसेसा जिणपहसूरिहिं बंदिया विहिणा ।
सव्वेवि निरुवसग्गं दिंतु सुहं सयलसंघस्स ॥११॥
जो धारइ रसणग्गे थवणमिण भावसिद्धिसंजणण ।
ठाणट्ठिउ वि पावइ सुतित्थजत्ताफलं विउलं ॥१२॥

इति श्री तीर्थमालास्तवन समाप्तम् ॥छ॥

[साराभाई नवाब सं० १५५८ लि० गुटके से]

(१३) विज्ञप्तिः

सिरिवीरराय देवाहिदेव सव्वनु जणिय जयरिक्ख ।
विन्नवणिज्ज जिणेसर विन्नति मुझ निसुणेसु ॥ १ ॥
सामिय समत्थु जय जतुसत्थनित्थारणे समत्थेण ।
भीभमि भवारन्ने किमह् वीसारिउ तुमए ॥ २ ॥

पहु कम्म पयावयणा चउगयभयचक्कमज्झयारंमि ।
मही पिंडव्व अह हा वहुरूवीकओ बहुसो ॥ ३ ॥
हा पहु मोहनिवेण पावेण पाडिऊण पहुरहिउ ।
अवहरिय सहमावसरिं भीमं भवचार ए खित्ते ॥ ४ ॥

वेसासिऊ ण सामिय सया विसयवासिएहिं विसएहिं ।
तह हं कइत्थिउ जह अज्जवि पउणो न हा होसि ॥ ५ ॥
हा हा कसायसुहडेहिं ताडिउ तह पभायदंडेण ।
तिजयपहु संयमं पि हु जह संठाण न हु लहेमि ॥ ६ ॥

तुह विरहे तिहुयणगुरु कयत्थिउ कत्थ कत्थ न हुएहिं ।
रागाइवेरिएहिं अणेग हा हा भवारन्ने ॥ ७ ॥
तुह सामित्ताभावे ज पहु पीडति महं महापावा ।
मिच्छा य पमाय रागा य वेरिणो तं न हु विरूव ॥ ८ ॥

जं पुण तुमंमि संते सरणागयरक्खणक्कमे नाहे ।
वाहिं ति व हुंता पहु हा सरण कस्स गच्छामि ॥ ९ ॥
अहवा को तुह दोसो पहुआणाभगधारण दट्ठुं ।
दट्ठुं रुद्धति ममं पहुमि चित्ते ठिया एए ॥१०॥

तुम्ह चिय किरिभिच्चा मोहाइ अन्नहा कहन्नाह ।
जो सासणे विवट्टइ तुम हं तं चेव निवडंति ॥११॥
अहह अणिज्झेण मए अकज्ज सज्जेण विगयलज्जेण ।
अवमाणिओ तुमंपि हु तिहुयणचिंतामणी देव ॥१२॥

एयावत्तं नीउजेहिं गुरु अंतरंगसत्तूहिं ।
पोसेमि सामि तं चिय हट्टी मह मूढया महई ॥१३॥
वसिउ सह गेहिं सयं वेसासिओ मुसंति तं चेव ।
स गिहाओ उट्ठिउसिहिं अहह कहं विज्झवेमि अहं ॥१४॥
जं तुण आणा रहिउ विवहाइ सामि वच्छम्मि ।
पंक्खाइ विणा मूढो तुमह उड्डेउ मिच्छामि ॥१५॥
मुंचामि नो पमायं पत्थेमि पुणो सुहं सव्वायं ।
भक्खिउ मिच्छामि अहं तुयरिओ कोपरणेमि अहं ॥१६॥
इक्कं अकज्जसज्जो अन्नं पुण पुक्करे पहु पुरओ ।
गामं पिपीलिवेउ छट्टो पगरेमि वाहरण ॥१७॥
मग्गामि तुम्ह सरणं वसामि मोहस्सरायहाणीए ।
अन्नस्स कडीचडिओ अन्नस्स वहेमि घणमाण ॥१८॥
मोहाएहि मुसिओ न नामि देहिं रक्खियं सक्को ।
णीया तुयगमेउ छड्डा विज्जइ कह खरेहिं ॥१९॥
पहुपसभा मय पाण तुमाउ पत्त गयं मह पमाया ।
सिरि सुत्तस्स य गच्छइं पहुणा विणयत्तिय अहवा ॥२०॥
अह किं पयासिएण तुह भव भावाविभावमाणस्स ।
माया मह गिह थुणणं किरउ किं माउ पुरउवि ॥२१॥
जयवि अहं उल्लंठो तहा वि मनु वक्खिउं तुह न जुत्तं ।
अम्माप्पिउणो किं पु पहु बाल उज्झंति कय हाण ॥२२॥
वम्मह सिरि वद्धाण मोहमहाराय पासवद्धाणं ।
रागाइनिरूद्धाण त चिय सरणं जए इक्को ॥२३॥
तारिक्खरूक्खहारिणिय अंतरंगारिगरूय सेनाउ ।
मुत्तूणं पुमं सामिय सरणं मे नत्थि कोइ जए ॥२४॥
जाणामि सामि सम्मं अभग्गसि सिहरो सहावि अहं ।
तह चिअ पहु देस सरणं मज्झ असरणस्स रहियस्स ॥२५॥

जय जिणनाह न हु तो तुमं असंबंधबंधबोधणियं ।
नो हं कस्स सयासे सरणं भुवणम्मि मग्गंतो ।।२६।।
पहु पाय पोय मुक्को अपारसंसारसायरे घोरे ।
जम्मजरमरणजलचरगमणाहं भक्खण जाओ ।।२७।।
हा नाह तारय रुदाओ भीमभवसमुद्दाओ ।
तारिउ को सक्को मुत्तूण तुम तिहुयणे वि ।।२८।।
भयव भवाडवीए मइ भमंतेण भूरि रिद्धीउ ।
लब्दा उ सुरावेण न चेव तुह दसणं पत्तो ।।२९।।
किमए तुम नं दिट्ठो दिट्ठोवि न वदिओ सहावेण ।
जेणज्जवि जगबधव बधस्स न होइ बुच्छ उ ।।३०।।
कप्पद्दुम्मस्स चितामणिस्स लभाउ अहिय हरिसेण ।
सपइ दिट्ठोसि तुम पुव्वज्जियपुन्नजोएण ।।३१।।
जाए तुह सेवाए सिवगण सामि तुह पयविउगो ।
अह न करेमि तय पहु पुण ससारो अहो कट्ठ ।।३२।।
मन्ने न नाह मुक्ख मुक्खेवि मुणिंद मुणिय परमत्था ।
पहु पायाण पुरउ जह जाए मे लुठंतस्स ।।३३।।
किं बहुणा भणिएण भवमयभीमो भणामि वयणमिण ।
काउ दय दयाउर जत्थ तुम तत्थ मन्नेसु ।।३४।।
इय विन्नत्तो सिरिजिणपहेण पाठेमि जेण परमपहू ।
तमि मणोमहलीण निच्च चिय कुणसु वे राया ।।३५।।

कृतिरिय श्रीजिनप्रभसूरीणा विज्ञप्तिका समाप्ता ।

[लि० प्र० "सवत् १५६६ वर्षे फागुण सुदि ५ बुधवासरे । श्रीमज्जवण-कपुरवरे । दोर्दण्डाखण्डलप्राज्यराज्य सुलित्राणशिकर । प्रभुविजये राज्ये । लिखित श्रीमत्खरतरगच्छे श्रीजिनसिंहसूरि । श्रीजिनप्रभसूर्यान्वये । श्री-जिनराजसूरिशष्यहेमकुजरमुनिना । श्रीमालान्वये श्रीभडारीयागोत्रे सा जिनदेव तत्पुत्र साह जाल्टा पुत्र पवित्रचतुरचित साह श्रीकरमसिंह । तस्यात्मज परमप्राज्य सकलकलासौन्दर्यसज्जन चतुर्दशविद्यानिधान । उपाग-विद्याप्रधान । परतक्षमदनावतार मूर्ति निजयशोधवलीकृतकीर्ति । संघाधिपति श्रीश्रीश्रीश्रीनथमल्लेन निजपठनार्थं लिखापित । छ । कल्याणमस्तु ।

(१४) सुधर्मस्वामि-स्तवनम्

(बहुविधच्छन्दोजातियुक्तम्)

आगमत्रिपथगा हिमवन्तं संस्तुतेर्नतसमूहभवन्तम् ।
नौ समानमभिनौमि सुधर्म-स्वामिनं महृति मोहपयोधौ ॥ १ ॥
स धर्मिलो नदितधर्मिलोक: सा भद्रिला भद्रनिधिर्मुदे नः ।
त्वा सद्गुरोऽजीजनता नताङ्घ्रि सुरासुरैरादरभासुरैर्यौ ॥ २ ॥
प्रादुर्भावक-दिव्यपंचकचमत्कुर्वाण सच्चेतसो,
वीरस्यादिमपारणेन बहुलाभिख्य द्विजाङ्घ्राविना ।
श्रीकोल्लाकनिवेशनं कथमपि ज्ञात्वेव पावित्र्यवद्,
तत् स्वामिन्निजजन्मनोऽधिकरणीभावं भवान्नीतवान् ॥ ३ ॥
इह भवत्यसुमान् खलु यादृश:
परभवेऽपि स तादृगुतान्यथा ।
इति जिन श्रुतिवाक्यविचारणा-
परशुना तत्र स शयमच्छिदत् ॥ ४ ॥
सा पूर्नन्दतु मध्यमपापा
यत्र जिनो महसेनवने त्वाम् ।
माधवधवलबलिन्दमतिथ्या
तथ्या सयममंपदमनयत् ॥ ५ ॥
बोध· प्रव्रज्यामान्तिषत्पञ्चशत्या
गाणेश्वर्यश्री· सूत्रण द्वादशाङ्या: ।
सद्योऽभूदृक्षं भाग्यसामग्र्यमग्र्यं
त्वादृक् कोऽन्यत्र क्वापि किं देद्युतीति ॥ ६ ॥
हलास्त्र हर्यरिधरवानमन्तराद्य--
नुत्तरान्तसुरतृतीयवर्ष्मणाम् ।
ययोत्तरं विलसति रूपवैभवं
ततोऽधिकं गणधरदेव तत्तव ॥ ७ ॥

त्वद्‌दृब्धैव द्वादशाङ्गी युगेऽस्मिन्
स्याद्वादेन प्रास्यमाना कुतीर्थ्यान् ।
त्रैलोक्यार्च्या दीप्यते दीप्रदीप-
प्रख्या मोहध्वान्तविध्वंशनेऽसौ ॥ ८ ॥
यथा पाश्चात्यो दुःप्रसहमुनिनाथ. किल युग-
प्रधानानां भावी जजनिथ तथा धस्त्वमुदयी ।
गुणाग्रामारामे विचतुरसहस्रद्वयमिता
स्तुते त्वय्येकस्मिन्नपि त इव सर्वेपि विनुताः ॥ ९ ॥
भाति ऋषिचक्रवर्तिन् षड्व्रत षट्खण्डभरतनेतुस्ते ।
निधिनवकं नवतत्त्वी रत्नानि चतुर्दशापि पूर्वाणि ॥ १० ॥
पुलाकलब्धि परमावधिर्मन –
पर्यायमाहारक - केवलश्रियौ ।
श्रेण्योर्द्वयं निर्वृतिसयमत्रिके
कल्पश्च जैनोयमनुद्यपारमन् ॥ ११ ॥
तमपश्चिमकेवलिन जम्बूनामानमानतमृषीन्द्रैः ।
स्वपदे न्यवीविशस्त्वं न परिद्रढयति हि पात्र क ॥ १२ ॥
युग्मम् ।
जैनत्वेऽपि तवास्थेयं वेदे कास्वपि यत्त्वया ।
'शतायुर्वै पुरुष' इत्युक्ति सत्यापिता प्रभो ! ॥ १३ ॥
पञ्चाशत तव समा. सदने निवास·
छद्मस्थता वरद षट्गुणसप्तवर्षान् ।
अब्दानि केवलिविहारवतस्तथाष्टौ
सर्वायुरित्थमभवच्छरद (दा) शत ते ॥ १४ ॥
जनुरभजत फाल्गुनीषूत्तरासु प्रधानद्विजश्लाघनीयाऽग्निवैशायना – भिजनजलधिचन्द्रमाश्चण्डमार्तण्डतुल्यप्रतापाभिभूताभियातप्रभः । अधिगतवति वर्द्धमाने जिनेन्द्रे शिवश्रीपरीरम्भलीला च यः पादपो– पगमनमुपगम्य वैभारशैले द्विपक्षीमवापाऽपवर्गं स जीयाद्भवान् ॥१५॥

अपरेऽवसानसमये निरन्वयाः
सुसदृग् गुणा अपि गणाधिपा दश ।
न्यसृजन् गणास्त्वयि यथायथं विभो !
सरितां व्रजा इव पयोनिधावपः ॥ १६ ॥

भगवन् ! गृहरत्नमेककस्त्वं
गणभृद् द्वीपपरम्परायतोऽभूत् ।
अपरे गणधारिणस्तु सूर्या-
नयदन्यत्र महः ससर्प तेषाम् ॥ १७ ॥

उन्नतिमन्तो विस्तृतशाखाः
सुमनःसेव्या अविकलफलदाः ।
येऽत्रक्षेत्रे सम्प्रति गच्छा—
स्तेषा मूलं त्वमसि बतैकम् ॥१८॥

ध्यायति प्रतिदिनं सपर्षदं
त्वा य उज्ज्वलसुवर्णरोचिषि ।
तस्य मंक्तु (मङ्क्षु) गणसपदेधते
लब्धिभि. स सकलाभिरीयते ॥१९॥

धर्मं शास्ति त्रियुक्त त्रिगुणदशसमायुक् सहस्रैकविंश–
त्यब्दे स्थायी यदीयो जगति सुरनृणा माननीयोऽन्ववायः ।
धीर. श्रीवीरपट्टोदयगिरिशिखरोत्सङ्गशृङ्गारभानु—
र्ज्ञानं स श्रीसुधर्मा वितरतु गणभृत् पञ्चमः पञ्चमं नः ॥२०॥

इति पदलुठत्सौधर्मेन्द्रः सुधर्मगणाधिप.
कृतगुणकणस्तोत्रः स्तोत्रं कुवादिगजव्यथे ।
उपचितयतु क्षेमस्थेमश्रियं मम निर्मम
प्रभुरभजतो दूरस्थ त्वं जिनप्रभवाघ्वन ॥२१॥

इति श्रीसुधर्मस्वामिस्तवनम् ॥छ॥

(१५) ४५ नामगर्भित-आगमस्तवनम्

(आर्याच्छन्द.)

सिरिवीरजिण सुयरय-रोहण पणमिऊण भत्तीए।
कित्तेमि तप्पणीयं सिद्धंतमहं जगपईवं ॥ १ ॥
पढमं आयारंगं सूयडं ठावणग समवायं।
भगवइ अंगं नाया-धम्मकहो-वासगदसा य ॥ २ ॥
अंतगडदसा-अणुत्तर-ववाइदसा वागरण नाम च।
सुहदुहविवागसुइं दिट्ठीवाय च अगाणि ॥ ३ ॥
ओवाई रायप्पसेणि तह जीवभिगम पन्नवणा।
जबूपन्नत्ती चद-सूरपन्नत्ति नामाओ ॥ ४ ॥
निरयावलिया कप्पा-वयसि पुप्फीय पुप्फचूलीय।
वण्हीदसाओ एए वारसुवगाणि नामाणि ॥ ५ ॥
दसवेयालिय तह ओह-पिंडनिज्जुत्ति उत्तरज्झयणा।
चत्तारि मूलगंधा नदी अणुओगदाराइ ॥ ६ ॥
चउसरण चंदविज्जग आउर-महपच्चखाण च।
भत्तपरिन्ना तदुल-वेयालिय च गणविज्जा ॥ ७ ॥
मरणसमाही देविंदत्थओ य सथार दस पयन्ना य।
वीरत्थय गच्छायार पमुह चउदससहस्सपुरा ॥ ८ ॥

[श्रीपुण्यविजयजी संग्रह, न २३४८ पत्र ५, साइज ११॥" × ४॥" शुद्ध, १६वी शती]

१. स्वागता, २. इन्द्रवज्रा, ३ शार्दूलविक्रीडित ४. द्रुतविलम्बित, ५. उपचित्रा, ६. वैश्वदैवी, ७. रुचिरा, ८ शालिनी, ९. शिखरिणी १०. गीति, ११ इन्द्रवंशा, १२ आर्या, १३ अनुष्टुप्; १४. वसन्त-तिलका, १५ चण्डवृष्टिदण्डक, १६ मंजुभाषिणी, १७. मालभारिणी, १८. अपरान्तिका; १९ रथोद्धता, २०. स्रग्धरा, २१. हरिणी।

निसीह तह कप्प-ववहार पंचकप्पो दसासुयक्खंधो ।
तह महानिसीह एए तत्थेवा जीयकप्पो य ॥ ९ ॥
पंचपरमिट्ठसामाइयाइं आवस्सयं च छक्कमेयं ।
निजुत्ति-चुन्नि-वित्ति विसेस आवस्सयाइं जुयं ॥१०॥
इय जिणपहेण गुरुणा रइया सिद्धंतमालनामेण ।
पणयालीसपमाण निय-नियणामेण णायव्वा ॥११॥

इति ४५ आगमस्तवनम् ॥

[अभय जैन ग्रन्थालय प्र० सं० ९५५० पत्र १ साइज १०' × ४'
ले० प्र० "पं० कनकसोमेन लिखितं" श्री० भरही पठनार्थं"
अनुमान १७ वी शती]

●

(१६) जिनप्रभ-रचिता

परमतत्त्वावबोधद्वात्रिंशिका

धर्माधर्मान्तिरं मत्वा, जीवाजीवादितत्त्ववित् ।
ज्ञास्यसि त्वं यदात्मान तदा ते परमं सुखम् ॥ १ ॥
यदा हिंसां परित्यज्य कृपालुस्त्वं भविष्यसि ।
मैत्र्यादिभावना भव्य-स्तदा ते परमं सुखम् ॥ २ ॥
न भाषसे मृषा भाषा विश्वविश्वासघातिनीम् ।
सत्यं वक्ष्यसि सौहित्यं तदा ते परमं सुखम् ॥ ३ ॥
परपीडां परिज्ञाय यदाऽदत्तं न लास्यसि ।
परार्थं हि परार्थाय तदा ते परमं सुखम् ॥ ४ ॥
यदा सद्धर्मसबनान्मैथुनात्त्वं विरज्यसि ।
ब्रह्मव्रतरतो नित्यं तदा ते परमं सुखम् ॥ ५ ॥
यदा मूर्च्छां विधायोच्चै-र्धनधान्यादिवस्तुषु ।
परिग्रहग्रहान्मुक्त-स्तदा ते परमं सुखम् ॥ ६ ॥

स्वरे श्रव्ये च वीणादौ खरोष्ट्रीणा च दु:श्रवे ।
यदा सममनोवृत्तिस्तदा ते परम सुखम् ॥ ७ ॥
इष्टेऽनिष्टे यदा दृष्टे वस्तुनित्यस्तशस्तधी ।
प्रीत्यप्रीतिविमुक्तोसि तदा ते परमं सुखम् ॥ ८ ॥
घ्राणदेशमनुप्राप्ते यदा गन्धे शुभाशुभे ।
रागद्वेषौ न चेत्तत्र तदा ते परम सुखम् ॥ ९ ॥
यदा मनोज्ञमाहारं यद्वा तस्य विलक्षणम् ।
समासाद्य तयो. साम्य तदा ते परमं सुखम् ॥१०॥
सुखदु:खात्मके स्पर्शे समायाते समो यदा ।
भविष्यसि भवाभावी तदा ते परम सुखम् ॥११॥
मुक्त्वा क्रोध विरोधं च सर्वसतापकारकम् ।
यदा शमसुधासिक्त-स्तदा ते परम सुखम् ॥१२॥
मृदुत्वेनैव मानाद्रि यदा चूर्णी करिष्यसि ।
मत्वा तृणमिवात्मान तदा ते परम सुखम् ॥१३॥
यदा मायामिमा मुक्त्वा परवचकतापराम् ।
विधास्यस्यार्ज्जव वर्य तदा ते परम सुखम् ॥१४॥
यदा निरीहतानावा लोभाभोधिं तरिष्यसि ।
सन्तोषपोषपुष्ट सन् तदा ते परमं सुखम् ॥१५॥
कषायविषयाक्रान्त भ्रमस्त्वा (?) तमनारतम् ।
यदात्मारामविश्रान्त तदा ते परम सुखम् ॥१६॥
यदा गर्वान्विता व्यर्थां विमुच्य विकथाकथाम् ।
वचोगुप्त्याथ गुप्तोसि तदा ते परमं सुखम् ॥१७॥
अंगोपागानि संकोच्य कूर्मवत्सवृतेन्द्रिय. ।
यदा त्वं कायगुप्तोसि तदा ते परमं सुखम् ॥१८॥
निर्वास्यसि घनघोर रागोरुगमहाविषम् ।
यदा सदागमास्वादात्तदा ते परमं सुखम् ॥१९॥

यदा कृपा कृपाणेन रागद्वेषौ विनापिहि।
हनिष्यसि सुखान्वेषी तदा ते परमं सुखम् ॥२०॥
यदा मोहमयीनिद्रा ध्रुवं विद्रावयिष्यसि।
अस्ततंद्रः सदाभद्र-स्तदा ते परमं सुखम् ॥२१॥
प्रमादं परिहृत्याशु यदा सद्धर्मकर्मणि।
समुद्यतोसि निश्शक-स्तदा ते परम सुखम् ॥२२॥
यदा कामं प्रकामं तु निराकृत्य विवेकतः।
शुद्धध्यानघनोषित्व तदा ते परमं सुखम् ॥२३॥
यदा हर्षं विषाद च करिष्यसि कदापि न।
सुखे दु.खे समायाते तदा ते परमं सुखम् ॥२४॥
यदा मित्रेऽथवामित्रे स्तुति-निन्दा विधातरि।
समानं मानस तत्र तदा ते परम सुखम् ॥२५॥
लाभाऽलाभे सुखे दु खे जीविते मरण तथा।
औदासीन्यं यदा ते स्या-त्तदा ते परमं सुखम् ॥२६॥
यदा यास्यसि निःकर्मा साधुधर्मधुरीणताम्।
निर्वाणपथसंलीन-स्तदा ते परमं सुखम् ॥२७॥
निर्ममो निरहंकारो निराकार यदा स्वयम्।
आत्मान ध्यास्यसि ध्याय तदा ते परम सुखम् ॥२८॥
निश्शेषदोषमोक्षाय यदिष्यसि यदा सदा।
परात्मगुणता यात-स्तदा ते परम सुखम् ॥२९॥
योक्ष्यसे सद्गुणग्रामैरात्मानं परमात्मना।
यदा त्वं तत्स्वरूप. सं-स्तदा ते परम सुखम् ॥३०॥
यदात्मज्ञानसम्पन्न. परमानंदनन्दितः।
पुण्यपापविनिर्मुक्त- स्तदा ते परम सुखम् ॥३१॥
आत्म-पद्मवनं ज्ञान-भानुना बोध्य लप्स्यसे।
यदा जिनप्रभा वर्यां तदा ते परमं सुखम् ॥३२॥

इति श्रीजिनप्रभसूरिकृता
॥ परमतत्त्वावबोधद्वात्रिंशिका ॥

शास्त्रसंग्रह छाणी की प्रति से

(१७) होयाली

अकुलु अमूलुअ जोणी संभवु निर्मल वण्णु सो दीसइ
हरिहर बंभु न सिद्ध तु गोरसु इंदु चंदु न सलीसइ ।। १ ।।
आ आ बूझहु पंडित विचारू । सनु निरंजनु थानु जु
भणियइ,तहि निवसइ निरधारु ।।आचली।।
फिरइ न मरइ न जीउ धरइ सो न पियइ नीक न जेमइं ।
हासण कर करिस विहूणउं घरण न जाई केमई ।। २ ।।
कदा कालि दृष्टि गोचरि आवइ ध्यानु जुगति नहु पारइ
अकलु सकलु अति रूपि मनोहरु देखत जन सुहकारइ ।। ३ ।।
इसउ पुरिषु तउ परओखलि लखिजइ जउगुरु करइ पसाउ ।
परमारथ थिति इकु पर जाणइ जिणप्रभसूरि मुणिराउ ।। ४ ।।

●

हीयाली

पहाड़िया रागः

चारि चलण चउ सवण चउरभुज बंधण करइ पचारि
बूझहु सकल सयाणा पंडित कासु कहउं सा नारी ।। १ ।।
संनेहा चे कारणियारे अति गाहइ अति लोगी
हुंकारइ पर हुइ न भुयंगी चारि

●

(१८) कालचक्रकुलकम्

अवसप्पिणि उसप्पिणि भेएणं होइ दुविहउ कालो ।
सागरकोडाकोडीउ वीसा एसो समप्पेइ ।। १ ।।
सुसमसुसमादि सुसमा सूसमदुसमा य दुसमसुसमा य ।
पचमिया पुण दूसम तह दूसमदूसमा छट्ठी ।। २ ।।

तत्थ चत्तारिसागर-कोडाकोडीउ सुसमसुसमा य ।
तिन्नि सुसमाइ नामं दुन्नेवय सुसमदूसमाए ॥ ३ ॥
दूसमसुसमा एगा-कोडाकोडीदूचत्तसहसूणा ।
इगवीसवरिस सहसा दूसहूं तह दूसमाणं तु ॥ ४ ॥

इय दसकोडाकोडी अमराणवसप्पिउपरिमाणं ।
एमेवोसप्पिणि पुण दुण्हं पि हु वीसकोडीउ ॥ ५ ॥
अवसप्पिणि छ अरया एमेवोसप्पिणं ईव चरीया ।
एवं वारस अरए विवट्टइ कालचक्कमिण ॥ ६ ॥

पढम दु तिरयाण ति-दु-इग पलिउव आउय कमसो ।
ति दु इय कोसुच्चत्तं ति दु इग दिवसाण आहारो ॥ ७ ॥
कप्पद्दुमफलाण सत्तं ठ्ठवगु इगुणसीई ७९ बालंमि ।
सोलसवग्गद्धढं पिट्ठीवसा मुणेयव्वा ॥ ८ ॥

मज्जंकघालपल्लंक तूरजोइयफुल्लभोयणयं ।
भूसणगेहागार वत्तगा दसविहा रुक्खा ॥ ९ ॥
चुलसीइ पुव्वलक्खा तिवरसद्धढमाससेसाओ ।
तइयर भरहपिया जाउ उसहो भरहवासे ॥१०॥

तेवीसं तित्थयरा अजियाईया चउत्थ अरयमि ।
तह बारस ए चक्की हरि-बल-पडिवासदेव नव ॥११॥
चउत्थारय धुरि पणसय धणूसया पुव्वकोडिवरिसाओ ।
अंते य सत्तहत्थी वरस सयाऊ नरा हुंति ॥१२॥
इगुणनवइ पक्खंसो चउत्थ अरयम्मि निव्वूओ वीरो ।
इगुणनवइपक्खंते नवमे अरये पउमजम्मो ॥१३॥

चुलसीयं च सहस्सा वासासत्तेय पंचमासा य ।
वीरमहापउमाणं अंतरमयं सुणेयव्वं ॥१४॥
वीरजिणे सिद्धिगए वारसवरसम्मि गोयमो सिद्धो ।
तह वीराउ सुहम्मो वीसहिं वरसेहिं सिद्धिगओ ॥१५॥

वीरजिणे सिद्धिगए चउसठिवरिसम्मिं जबुनामस्स ।
केवलनाणेण सम वुच्छिन्ना दस इमे ठाणे ॥१६॥
मण-परमोहि पुराए आहारग-खवग-उवसमे कप्पे ।
संजमतिय केवलि सिज्झाणाय जंबुम्मि वुच्छिन्ना ॥१७॥

चउदसपुव्वच्छेओ वरिससए सत्तरीय अहियम्मि ।
भद्दबाहुम्मि जाओ वीरजिणदे सिवं पत्तो ॥१८॥
पुव्वाण अणुओगे संघयण पयय संठाण ।
सुहम महापाणिणया बुच्छिन्ना थूलभद्दम्मि ॥१९॥

दसपुव्वि वि वुच्छेओ वयरे तह अट्ठकीलिसंघयणं ।
पंचहिं वाससएहिं चउरासी एस महिएहिं ॥२०॥
तह अज्जरक्खिनाहे वुच्छिन्ना सद्दनवय पुव्वाय ।
सुन्नमणि वेयसखाओ विक्कमकालाए जिणकालं ॥२१॥

इगुणवीसवरिससएहिं चउदसवरिसम्मि वीरनिव्वाणे ।
छासीइ वरिसे होही कक्की चंडो व पडिकूलो ॥२२॥
पाडलपुरम्मि कक्की चडालघरम्मि चित्तमासम्मि ।
अट्ठमि बुट्ठी जाओ चउम्मुहो बीय नामं तु ॥२३॥
कक्की हणिउ दत्त तत्पुत्तो भावगं करिवि इंदो ।
रज्जे ढविउ भो पुण पुरे पुरे चेइयं होही ॥२४॥
पंचम अरयस्सते दुहत्थमणुयाउ वीसवरिसाओ ।
इह छट्ठअट्ठमपर अट्ठमिंदो करावही ॥२५॥
दुप्पसहो फग्गुसिरी नायल सढ्ढोय सच्चसिरी सट्टी ।
तह विमलवाहण निवो सोहमो य अपच्छिमो मंती ॥२६॥
सोहम्मे दप्पसहो एगवयारी दसालिय धरो य ।
सोहम्मा उ सागर विमाणाउच्चुओसि सही भरहे ॥२७॥
पच्चूसे जिणधम्मो मज्झण्हेनासिहीनिवइ धम्मो ।
अग्गी विपच्छिमद्धे दुसभाए अंतसमयम्मि ॥२८॥

घोऽमुहमंसभक्खग कसिणा चिविडा अंति तिरिनरए।
छट्ठते इगहत्था विलवासी सोलवरिसाउ ॥२९॥
नव नव दु तडासन्ने रहचक्कवाहाण गंगसिधूणं।
सव्वे विलवाहभरि वेयड्ढे आरओ पुरओ ॥३०॥
छव्वरिस गब्भधरित्थी छ सत्त अरए तहेव अट्ठमए।
पुक्खलसवट्टयखीर अमियरसयं च मेह हमे ॥३१॥
इक्किक्को सत्तदिणे वरिसेहि तत्थडि बुई पुढवें।
पढमो बीओ धन्नं तेहं तइउ चउत्थो य ॥३२॥
पोसेइ उ सहिओ तह रस दव्वाइ पंचमं मेहो।
अह नवमे अरयम्मि य सलाण पुरिसाण ते वट्ठी ॥३३॥
अबुहजणबोहणत्थ(तहा अ) अप्पणो समासेण।
कालचक्कस्स गाहा जिणपहसूरीहिं संठविया ॥३४॥
इति कालचक्ककुलक समाप्तं

[ले० १७वी० 'सुखनिखान पठनार्थम्' अभयजैन ग्रन्थालय प्रति २१८४]

•

श्री जिनप्रभसूरि परंपरा गीतम्

खरतर गच्छि वर्द्धमान-सूरि, जिणेसर सूरि गुरो।
अभयदेव सूरि जिणवलह सूरि जिणदत्त जुगपवरो ॥ १ ॥
सुगुरू परंपर थुणहु तुम्हि, भवियहु भत्ति भरि।
सिद्धि रमणि जिम वरई सयंवर नव नविय परि ॥ आचली ॥
जिणचन्दसूरि जिणपतिसूरि, जिणेसर गुणनिधानु।
तदनुक्रमि उपनले सुगुरु, जिणसिंघसूरिजुगप्रधानु ॥ २ ॥
तासु पाटि उदयगिरि उदयले, जिनप्रभ सूरि भाणु।
भविय कमल पडिबोहवु, मिच्छत तिमिर हरणु ॥ ३ ॥

राउमहंमद साहि जिणि, निय गुणि रंजियऊ ।
मेढ मंडलि ढिल्लिय पुरि, जिण धरमु प्रकटु किऊं ॥ ४ ॥
तसु गछ धुर धरणु भयलि, **जिणदेवसूरि** सूरिराऊं ।
तिणि थापिउ जिणमेरुसूरि, नमहु जसु मनइ राऊ ॥ ५ ॥
गीतु पवीतु जो गायए, सुगुरु—परंपरह ।
सयल समीह सिझहिं, पुहविहिं तसु नरह ॥ ६ ॥

जिनप्रभसूरीणां गीतम्

के सलहउ ढीली नयरु हे, के वरनउ वखाणू ए ।
जिनप्रभसूरि जग सलहीजइ, जिवि रजिउ **सुरताणु** ॥ १ ॥
चलु सखि वदण जाण्ह गुण गरुवउ **जिनप्रभसूरि** ।
रलियइ तसु गुण गाहिं राय-रजणु पडिय-तिलउ ॥ आचली ॥
आगमु सिद्धतु पुराणु वखाणिइ, पडिवोहइ मव्वलोइ ए ।
जिणप्रभसूरि गुरु सारिखउ हो विरला दिसउ कोई ए ॥ २ ॥
आठाही आठमिहि चउथी, तेजवइ सुरिताणु ए ।
प्रह सितु मुख **जिनप्रभसूरि** चलियउ, जिमिससि इदुविमणिए ॥३॥
"असपति" "**कुतुबदीनु**" मनि रजउ, दीठेल जिनप्रभसूरी ए ।
एकति हि मन सासउ पूछइ, राय मणोरह पूरी ए ॥ ४ ॥
गाममूग्यि पटोला गज वल, तूठउ देइ सुरिताणू ए ।
सूरि **जिणप्रभगुरु** कंपि नई छइ, तिहुअणि अमलिय माणू ए ॥ ५ ॥
ढाले दमामा अरु नीसाणा, गहिरा वाजइ तूरा ए ।
इन परि जिणप्रभसूरि गुरु आवइ, संघ मणोरह पूरा ए ॥ ६ ॥

श्री जिनप्रभसूरि गीत

उदय ले खरतर गच्छ गयणि, अभिनवउ सहस करो ।
सिरी **जिणप्रभसूरि** गणहरो, जंगम कल्पतरो ॥ १ ॥
वंदहु भविक जन जिणसासण, वठ नव वसंतो ।
छतीस गुण सजूत्तो वाइय मयगल दलण सीहो ॥ आंचली ॥

तेर पंचासियइ पोस सुदि आठमि, सणिहिं वारो।
भेटिउ असपते **"महमदो"** सुगुरि **ढोलिय** नयरे ॥ २ ॥

आपुणु पास बइसारए, नमिवि आदरि नरिन्दो।
अभिनव कवितु बखाणिवि, राय रज्जइ मुणिंदो ॥ ३ ॥
हरखितु देइ राय गय तुरय, धण कणय देस गामो।
भणइ अनेवि जे चाह हो, ते तुह दिउ इमो ॥ ४ ॥

लेइ णहु किंपि **जिणप्रभसूरि**, मुणिवरो अतिनिरीहो।
श्रीमुखि सलहिउ पातसाहि, विविह परि मुणिसीहो ॥ ५ ॥
पूजिवि सुगुरु वस्त्रादि कहिं, करिवि सहिथि निसाणु।
देइ फुरमाणु अनु कारवाइ, **नव वसति** राय सुजाणु ॥ ६ ॥
पाट हथि चार्डिवि जुगपवरु, **जिणदेवसूरि** समेतो।
मोकलइ राउ पोसालहं बहु, मलिक परिकरीतो ॥ ७ ॥

वाजहिं पंच सबुद गहिर सरि, नाचहिं तरुण नारि।
इदु जम गइद सहितु, गुरु आवइ **वसतिहिं** मझारे ॥ ८ ॥
धम्म धुर धवल संघवइ सघल, जाचक जन दिति दानु।
सघ सजूत बहु भगति भरि, नमहिं गुरु गुणनिधानु ॥ ९ ॥

सानिधि **पउमिणि**-देवि रम, जगि जुग जयवन्तो।
नदउ **जिणप्रभसूरि** गुरु, सजम सिरि तणउ कतो ॥१०॥

जिनदेवसूरि गीत

निरुपम गुण गण मणि निधानु संजमि प्रधानु।
सुगुरु **जिणप्रभसूरि** पट उदयगिरि उदयले नवल भाणु ॥ १ ॥
बदहु भविय हो सुगुरु **जिणदेवसूरि ढिल्लिय** वर नयरि देसणउ।
अमियरसि वरिसए मुणिवरु जणु ऊनविउ ॥ आचली ॥
जेहिं **कन्नाणापुर** मडणु सामिउ **वीर** जिणु।
महमद राइ समप्पिउ थापिउ सुभलगनि सुभदिवा ॥ २ ॥

नाणि विन्नाणी कला कुसले विद्या बलि अजेउ ।
लखण छंद नाटक प्रमाण वखाणाग आगमिगुण अमेउ ।। ३ ।।
धन **कुलधर** कुलि उपनु इहु मुणिरयण ।
धणु **वीरिणि** रमणि चुडामणि जिणि गुरु उरि धरिउ ।। ४ ।।
धणु **जिणसिंघसूरि** दिखियाउ धनु चन्द्र गछु ।
धणु **जिणप्रसूरि** निज गुरु जिणि निज पाटिहि थापियउ ।। ५ ।।
हलि सख हाणउ सोहावणिय रलियावणिय ।
देसण **जिणदेवसूरि** मणिरायह जाणउँ नित सुणउ ।। ६ ।।
महि मडलि धरमु समधरए जिणसासणिहि ।
अणदिण प्रभावन करइ गणधरो अवयरिउ वयरिमामि ।। ७ ।।
वादिय मयगल दलणसीहा विमल सीलधरु ।
छत्रीस गणधर गुण कलिउ चिरु जयउ **जिणदेवसूरि गुरु** ।। ८ ।।

इति श्रीआचार्याणा गीतपदानि'

●